9.5

जून 1964

केंद्रीय हिंदी निदेशालय · शिक्षा-मंत्रालय · भारत सरकार

BHASHA QUARTERLY

ED. 305. 2. 6
1,300

उद्देश्य

- शिक्षा, कला, विज्ञान, अनुसंधान, क़ानून और शासन आदि के लिए अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण कर हिंदी की समृद्धि करना;
- हिंदी को सब प्रकार की अभिव्यक्ति का सशक्त और प्रभावशाली साधन बनाने के उद्देश्य से उसकी प्रकृति के अनुकूल प्रादेशिक भाषाओं का सहयोग लेना;
- समस्त भारतीय भाषाओं के बीच समानता की खोज करना और आदान-प्रदान का द्वार मुक्त करना।

*

संपादन :
तारा तिक्कू

कला :
मनोहरलाल ओबराय

मार्च, जून, सितंबर और दिसंबर में प्रकाशित

एक प्रति : एक रुपया या दो शिलिंग चार पेंस या छत्तीस सेंट ।
वार्षिक : साढ़े तीन रुपए या आठ शिलिंग दो पेंस या एक डालर छब्बीस सेंट ।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्

त्रै मा सि क

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

शिक्षा-मंत्रालय ● भारत सरकार

अनुक्रम

यदि लोग मुझे याद करना चाहें तो मैं चाहूँगा कि वे मुझे इस तरह याद करें, 'यह व्यक्ति तन-मन और दिल से भारत और भारतीय जनता को प्यार करता था; और वह, इसकी कमज़ोरियों के बावजूद, इसके प्रति गहरी ममता रखती थी। उसने बहुत खुले दिल से, जी भर कर इस पर अपना प्यार लुटाया।'

जवाहरलाल नेहरू
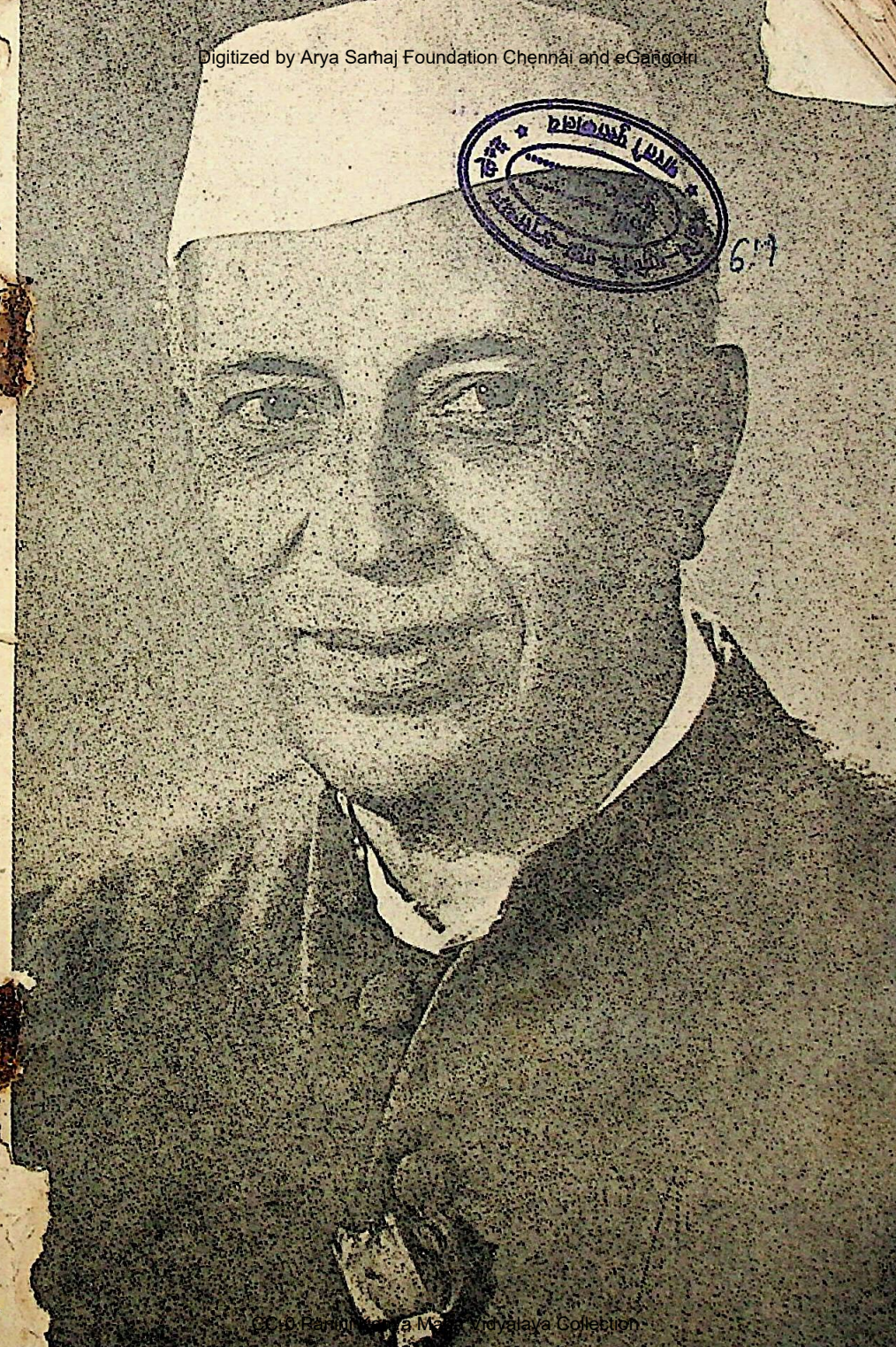
नेहरु की वसीयत

अंतिम आकांक्षा

मुझे, मेरे देश की जनता ने, मेरे हिंदुस्तानी भाइयों और बहनों ने इतना प्रेम और मुहब्बत दी है कि चाहे म जितना कुछ करूँ, वह उसके एक छोटे से छोटे हिस्से का बदला नहीं हो सकता। सच तो यह है कि प्रेम इतनी क़ीमती चीज़ है कि इसके बदले कुछ देना मुमकिन नहीं है। इस दुनिया में बहुत से लोग हुए जिनको अच्छा समझकर, बड़ा मानकर, उनका आदर किया गया, पूजा गया... लेकिन भारत के लोगों ने, छोटे और बड़े, अमीर और ग़रीब, सब तबक़ों के बहनों और भाइयों ने मुझे इतना ज्यादा प्यार किया कि जिसका बयान करना मेरे लिए मुश्किल है और जिससे मैं दब गया। मैं आशा करता हूँ कि मैं अपने जीवन के बाक़ी वर्षों में अपने देशवासियों की सेवा करता रहूँ और उनके प्रेम के योग्य रहूँ।

बेशुमार दोस्तों और साथियों के मेरे ऊपर और भी ज़्यादा एहसानात हैं। हम बड़े-बड़े कामों में एक-दूसरे के साथ रहे, शरीक रहे, हमने मिलजुलकर काम किए। यह तो होता ही है कि जब बड़े काम किए जाते हैं, उनमें सफलता भी होती है, नाकामयाबी भी होती है। मगर हम सब शरीक रहे, सफलता की खुशी में और नाकामयाबी के दु:ख में भी...

मैं चाहता हूँ, और मन से चाहता हूँ, कि मेरे मरने के बाद कोई धार्मिक रस्में न अदा की जाएँ। मैं ऐसी बातों को मानता नहीं हूँ और सिर्फ़ रस्म समझकर इनमें बंध जाना धोखे में पड़ना मानता हूँ। जब मैं मर जाऊँ तो मेरी इच्छा है कि मेरा दाह-संस्कार कर दिया जाए। अगर मैं विदेश में मरूँ, तो मेरे शरीर को वहीं जला दिया जाए, और मरी अस्थियाँ इलाहाबाद भेज दी जाएँ। इनमें से मुट्ठी भर गंगा में डाल दी जाएँ, और उनके बड़े हिस्से के साथ क्या किया ज़ाए, मैं आगे बता रहा हूँ। इनका कुछ भी हिस्सा किसी हालत में बचाकर न रखा जाए।

गंगा में अस्थियों का कुछ हिस्सा डलवाने की इच्छा के पीछे, जहाँ तक मेरा ताल्लुक़ है, कोई धार्मिक ख्याल नहीं है। इस बारे में मेरी कोई धार्मिक भावना नहीं है। मुझे बचपन से गंगा और यमुना से लगाव रहा है, और जैसे जैसे मैं

बड़ा हुआ, यह लगाव बढ़ता रहा। मैंने मौसमों के बदलने के साथ इनके बदलते हुए रंग और रूप को देखा है, और कई बार मुझे याद आई उस इतिहास की, उन परंपराओं की, उन पौराणिक गाथाओं की, उन गीतों और कहानियों की, जोकि कई युगों से उनके साथ जुड़ गई हैं और उनके बहते हुए पानी में घुल-मिल गई हैं।

गंगा तो विशेषकर भारत की नदी है, जनता की प्रिय है, उससे भारत की जातियाँ, स्मृतियाँ, उसकी आशाएँ और उसके भय, उसके विजयगान, उसकी विजय और पराजय लिपटी हुई हैं। गंगा तो भारत की सभ्यता का प्रतीक रही है, निशान रही है, सदा बदलती, सदा बहती, फिर वही गंगा की गंगा। वह मुझे याद दिलाती है कि हिमालय की वर्फ़ से ढकी चोटियों की और गहरी घाटियों की, जिनसे मुझे मुहब्बत रही है, और उनके नीचे उपजाऊ और दूर-दूर तक फैले मैदान जहाँ काम करते मेरी जिंदगी गुजरी है। मैंने सुबह की रोशनी में गंगा को मुस्कराते, उछलते-कूदते देखा है, और देखा है शाम के साए में उदास, काली-सी चादर ओढ़े हुए, भेद भरी, जाड़ों में सिमटी-सी, आहिस्ते-आहिस्ते बहती सुंदर धारा और बरसात में दहाड़ती, गरजती हुई, समुद्र की तरह चौड़ा सीना लिए और सागर को बरबाद करने की शक्ति लिए हुए। यही गंगा मेरे लिए निशानी है भारत की प्राचीनता की, यादगार की, जो बहती आई है वर्तमान तक और बहती चली जा रही है, भविष्य के महासागर की ओर। भले ही मैंने पुरानी परंपराओं, रीति और रस्मों को छोड़ दिया हो, और मैं चाहता भी हूँ कि हिंदुस्तान इन सब जंजीरों को तोड़ दे जिनमें वह जकड़ा है, जो उसको आगे बढ़ने से रोकती हैं और जो देश में रहने वालों में फूट डालती हैं, जो बेशुमार लोगों को दबाए रखती हैं और जो शरीर और आत्मा के विकास को रोकती हैं। चाहे यह सब मैं चाहता हूँ, फिर भी मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपने को इन पुरानी बातों से बिलकुल अलग कर लूँ। मुझे गर्व है इस शानदार उत्तराधिकार का, इस विरासत का, जो हमारी रही है और हमारी है और मुझे यह अच्छी तरह से मालूम है कि मैं भी, हम सभों की तरह, इस जंजीर की एक कड़ी हू जोकि कभी नहीं और कहीं नहीं टूटी है और जिसका सिलसिला हिंदुस्तान के अतीत इतिहास के प्रारंभ से चला आता है। यह सिलसिला मैं कभी नहीं तोड़ सकता, क्योंकि मैं उसकी बेहद कद्र करता हूँ, और इससे मुझे प्रेरणा, हिम्मत और हौसला मिलता है। मेरी इस आकांक्षा की पुष्टि के लिए और भारत की संस्कृति को श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए, मैं यह दरखास्त करता हूँ कि मेरी भस्म की एक मुट्ठी इलाहाबाद के पास गंगा में डाल दी जाए, जिससे कि वह उस महासागर में पहुँचे जो हिंदुस्तान को घेरे हुए है।

मेरी भस्म के बाकी हिस्से का क्या किया जाए? मैं चाहता हूँ कि इसे हवाई जहाज में ऊँचाई पर ले जाकर बिखेर दिया जाए उन खेतों पर जहाँ भारत के किसान मेहनत करते हैं, ताकि वह भारत की मिट्टी में मिल जाए और उसी का अंग बन जाए।

- काव्य-साहित्य की भाषा तात्त्विक प्रकृति संबंधी दृष्टि-संस्थापना
- आधुनिक हिंदीतर भारतीय भाषाओं में अनुवाद-कार्य
- हिंदी व्याकरण : सरलीकरण और नवलेखन की समस्याएँ

2—1 C. H. D./64.
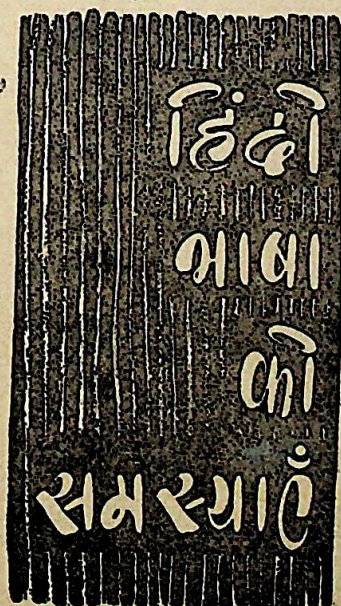
काव्य-साहित्य की भाषा तात्त्विक प्रकृति संबंधी एक दृष्टि-संस्थापना

रमेश कुंतल मेघ

भारतीय आचार्यों, विशेषकर अग्निपुराणकार, आनंदवर्धन, कुंतक, मम्मट, जगन्नाथ आदि ने काव्य भाषा का जो विवेचन किया है, उसके लिए उनकी पुस्तकों में काव्य, रीति, वर्त्म,संघटना, मार्ग, वृत्ति आदि नानार्थक पर्यायों का उपयोग मिलता है। इनमें से दण्डी, वामन और राजशेखर ने प्रदेशाभिधानवाद का प्रतिपालन किया, तो कुंतक ने इसके विरोध में मानव अर्थात् कवि-स्वभाव पर आधारित 'कवि प्रस्थान हेतु' की स्थापना की। परंतु भाषा तात्त्विक (Linguistics) दृष्टि से दोनों का वरावर महत्त्व है।

यूरोप में तो क्लासिकल, रोमांटिक, यथार्थ शैलियों तथा विशिष्ट प्रदेशाभिधानवादी भाषा-सिद्धांतों को छोड़कर संपूर्ण कला (काव्य के अलावा चित्र, शिल्प, संगीतादि भी) की भाषा तात्त्विक प्रकृति पर विचार हो रहा है जिनमें अर्नेस्ट कैसीरर, सुशाने, लेंजर, रिचर्ड्स, ब्लेकमूर, पानोफ़स्की, ड्यूकासे, फ्रायड आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं।

हम इन दोनों सांस्कृतिक धाराओं की दिशाओं से प्रेरणा लेकर साहित्य की भाषा तात्त्विक प्रकृति संवंधी अपनी कुछ स्थापनाएँ करेंगे।

हम जानते हैं कि भाषा की अनुकरणमूलक (Imitative) प्रकृति के समर्थन करने वाले दैवी-उत्पत्ति के सिद्धांत, वाउ-वाउ (बोलियों को प्रकट करने वाली ध्वनियों), पूह-पूह (मनोभावाभिव्यक्ति करने वाले शब्द) तथा डिंग-डेंग सिद्धांत आदि पेश किए जा सकते हैं। ये सभी उद्गममूलक सिद्धांत कला में कल्पना प्रवणता की व्याख्या नहीं कर सके हैं। अतः रोमांटिक भाषा-सिद्धांतों में अभिव्यंजना-शक्तियों की जमकर छानबीन हुई। किंतु आजकल संपूर्ण कला को ही मूलतः एक भाषा मानने की धारणा मज़बूत हो गई है जो स्वीकार करती है कि कला का एक सामाजिक तथा संप्रेष्य चरित्र भी है। इस प्रकार इस सिद्धांत में अनुकरणमलक तथा अभिव्यंजनामूलक दोनों सिद्धांतों को संश्लिष्ट करने की कोशिश हुई है।

भाषा की सार्वभौम विशेषताएँ और दृष्टि-संस्थापना :

काव्य में—विशेषतया प्राचीन चारण-काव्य में—भाषा के विद्या-रूप (शब्द भंडारयुक्त) तथा भाषण-रूप (उच्चरित स्वरविकारयुक्त) प्रायः मिले-जुले थे। मूलतः लोक-कवि ही भाषा का निर्धारण किया करते थे, मसलन दांते ने अपने गाँव की बोली को इटली की राष्ट्रभाषा बना दिया, चॉसर और तुलसी ने भी बहुत कुछ ऐसा ही किया। इसका कारण इन कवियों द्वारा अभिव्यक्ति-सामर्थ्य का विकास है। अतः प्राचीन काव्य-भाषा हमारे अध्ययन का विशेष केंद्र हो सकती है और रही है।

भाषा परंपरागत है। अतः वह स्थाई और जातिगत भी है। किंतु वह अर्जित भी है और इसके बावजूद व्यक्तिपरक भी नहीं है। अतएव भाषा में परिवर्तन अर्थात् अभिव्यक्ति-सामर्थ्य और रीति कौशल में परिवर्तन होना नैसर्गिक है।

भाषा-योग्यता तथा सामान्य मानसिक योग्यता परस्पर आश्रित हैं। भाषा के शब्द (लिखित) या संकेत (वाच्य) किसी प्रत्यक्ष और स्थूल को संकल्पनात्मक विश्लेषण (Conceptual analysis) द्वारा विचारात्मक बना देते हैं। इसके अलावा भाषा के शब्द या संकेत क्रमबद्ध होकर वाक्य-रचना, 'विशिष्ट पद-रचना' करते हैं। इस क्रिया को संकल्पनात्मक-संश्लेषण (Conceptual synthesis) कहा जाता है। अतः दोनों क्रियाओं को मिलाकर भाषा लिखित या वाच्य रूप में 'अभिव्यंजनात्मक संकेत' (Expressive Sign) है। भाषा का विकास भी कई अवस्थाओं में होता है। पहली अवस्था भाषापूर्व (Pre-linguistic) है जब शिशु चिल्लाते (Scream) हैं और उनमें निरर्थक ध्वनियाँ उत्पन्न करने की क्षमता होती है। इसके कुछ माह बाद ध्वनि और प्रतिबोध (Sound and response) के बीच एक नए प्रकार का साहचर्य या संबंध-प्रत्यवर्तन (Conditioned response) स्थापित होने लगता है। अंततः अनुकरण (Imitation) की अवस्था आती है, जब शिशु दूसरे के द्वारा बोले गए शब्दों का अनुकरण करता है। लिखने की अवस्था बहुत बाद में आती है। बालक जब सात-आठ वर्ष का होता है तबसे उसमें भाषा को साधारणीकरण और सारीकरण करने की क्रिया होती है। इस क्रिया में मस्तिष्क की उच्चस्तरीय विशेषताएँ होनी चाहिएँ। पियाजे (Piaget) ने भाषा विकास के क्रम में यह पाया कि बच्चे द्वारा प्रयुक्त प्रारंभिक भाषा स्वकेंद्रीय (ego-centric) होती है। संभवतः अहं के विकास की यही अवस्था होती है। इसके बाद धीरे-धीरे नैतिक मन (Super-ego) का प्रादुर्भाव होने लगता है जिसके साथ-साथ भाषा में भी समाजीकरण की छाप पड़ती है। इस अवस्था में भाषा में अनुकलित सूचनाएँ (adapted informations) आलोचना, आदेश, प्रार्थना, धमकी, प्रश्न तथा उत्तरों का समावेश होता है। भाषा विकास के ऊपर एक भाषीय या द्विभाषीय परिवार का होना, नागरिक या ग्राम्य वातावरण, परिवार में समवयस्कों की संख्या, तथा बालक-अभिभावक के पारस्परिक संबंधों का भी असर पड़ता है।

सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण का भी भाषा-योग्यता के विकास पर प्रभाव पड़ता है। कई तत्वों को मिलाकर कलाकार या वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ या तार्किक आदि की मानसिक योग्यता को उच्च मानसिक क्रिया का द्योतक माना गया है। यह संदर्भ डा० मोहन चंद्र जोशी एवं श्री अभिनंदनसिंह के शोध 'सामान्य मानसिक योग्यता और भाषा-योग्यता का सहसंबंध' पर आधारित है।[1]

भाषा की इन सार्वभौम खूबियों के आधार पर हम कह सकते हैं कि (1) भाषा विभिन्न राष्ट्रों, कालों, शैलियों तथा व्यक्तियों (अर्थात् चार उपादानों) के अनुसार बदलती एवं विविधता प्राप्त करती रहती है, (2) भाषा में एक ओर व्यक्तित्व का सर्वाधिक मेल तथा दूसरी ओर निर्व्यक्तित्व का सर्वाधिक (वातावरण एवं संस्कारमूलक) प्रक्षेपण होता है अर्थात्—एक ओर भाषा की आत्मगत अभिव्यंजना में वैयक्तिक संवेगों का केंद्रीयकरण होता है तथा दूसरी ओर वहिर्गत अभिव्यक्ति (कलाकृति) में इसका पूर्ण सामाजिक प्रक्षेपण (Projection) भी। इसी आधार पर हमने भाषाविधि को दो आमूल चरणों में बाँटा है—(अ) आत्मगत, और (ब) वहिर्गत। आत्मगत चरण में भाषा की दो अवस्थाएँ होती है :—

(क) अनिर्वचनीय (Inexpressible), और (ख) अनिर्वचित् (Inexpressed)

वहिर्गत चरण में तीन अवस्थाएँ होती है :

(ग) युक्तिवचनीय (Exactly expressed), (घ) अतिवचनीय (more expressed), और (ङ) अतिरिक्त वचनीय (hyperbolically expressed)।

जिस प्रकार किसी भी विशिष्ट रचना में **विशिष्ट क्रियाशक्ति** (जैसे मल-प्रवृत्तियों, तर्क, ज्ञान, कल्पना आदि), **विशिष्ट माध्यम** (शब्द, स्वर, वर्ण आदि) और **विशिष्ट विषय** (जैसे सौंदर्य तत्त्व, तर्क, विज्ञान, महाकाव्यादि) इन तीनों का संयोग होता है, उसी प्रकार कला-रचना में भी पाँच अवस्थाओं (क, ख, ग, घ, ङ) में से प्रत्येक के लिए एक विशिष्ट क्रियाशक्ति, विशिष्ट माध्यम एवं विशिष्ट विषय आनपांगिक होते हैं। तालिका सं० 1 में यह वर्गीकरण पूरी संबंधात्मकता समेत किया गया है :—

---

[1] दे० सागर विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका 'मध्य भारती', वर्ष 3, अंक 3, 1960, पृ० 22–33।

तालिका सं० 1

	(अ) आत्मगत वैयक्तिक संवेगों का केंद्रीकरण			(ब) बहिर्गत कृति में इनका निर्वैयक्तिकोन्मुख प्रक्षेपण	
	(क)	(ख)	(ग)	(घ)	(ङ)
	अनिर्वचनीय	अनिर्वचित	युक्तिवचनीय	अतिवचनीय	अतिरिक्त वचनीय
1. क्रिया शक्तियाँ	मूल प्रवृत्तियों तथा स्वयं प्रकाशज्ञान	अंतःसंस्कार तथा वासना	बौद्धिक तात्त्विक धारणाएँ	चिंतन और दिवा-स्वप्न	अतिकल्पना (fantasy) तथा अतिधारणा (दार्शनिक प्रत्यय)
2. माध्यम स्थिति	अज्ञात	अनुपयुक्त	संतुलित	न्यून	अतिरिक्त
3. विषय	अवचेतन विज्ञान	सौंदर्य तत्त्व, अभिनव शास्त्र, गीति, ध्वनियाँ	तर्कशास्त्र, विज्ञान सामाजिक विज्ञानादि	नाटक, महाकाव्य उपन्यास, काव्य शास्त्र	दर्शनशास्त्र, रहस्यवाद नीतिशास्त्र

4. शब्द शास्त्रों में उक्ति विन्यास के आधार पर	अप्रस्तुत योजना	वर्ण्य वस्तु निर्देशन	वाक्य वक्रता	वाक्य दूरारूढ़ि
	प्रतीक	यमक, अनुप्रास, रूपक, उपमा, स्वाभावोक्ति अत्युक्ति, उदात्त आदि ।	लक्षण अप्रस्तुत प्रशंसा, परिसंख्या, व्याजस्तुति, विरोधाभास, असंगति आदि ।	व्यंजना अन्योक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि ।

हमारी सारी संस्थापना की मूल पीठिका यही है। अब हम क्रमशः इसमें अंतर्भाव्य सिद्धांतों का निरूपण करेंगे।

(अ) आत्मगत चरण में भाषा अभिव्यंजनापूर्ण तथा अभिव्यंजना के बीच की समतोलन (Coanaesthesis) की स्थिति में होती है और आदिम मानवत्व वृत्ति (पर्युत्सुकीभाव, जातीय अवचेतन) से संचारित भी। यहाँ मूल प्रवृत्तियाँ अथवा वासनाएँ क्रमशः उभरकर इंद्रियबोधों को मांसलता प्रदान करती हैं। किंतु इसके लिए उन्हें अनुभूतियों, स्वयंप्रकाशज्ञान, इच्छाओं, संकल्पनात्मक विश्लेषण आदि से संवृत होना पड़ता है।

ऐसी दशा में यदि शब्द भंडार, वाक्यतत्त्व (Syntax) तथा रूप विचार (morphology) की दृष्टि से भाषा, भाव अथवा ज्ञान के वहन के अनुपयुक्त या असमर्थ हो तो दो अवस्थाएँ आ सकती हैं—(क) अनिर्वचनीय की और (ख) अनिर्वचित की। इन दोनों अवस्थाओं में सामर्थ्य का प्रमुख अंतर है। इसलिए यहीं [दोनों अवस्थाओं (क) तथा (ख) में] नई-नई विधियों के अनुरूप भाषा ढलने लगती है, शैलियों और विषयों में विभक्त होने की दिशा में क़दम उठाती है और यहीं कवि या श्रोता या पाठक भाषा पर यथायोग्य तथा यथासंभव अधिकार करने की कोशिश करता है। सारांश यह है कि यहाँ विषयी के संबंधों के कारण भाषा विशिष्ट शैली और विधा में परिवर्तित होती है। अथच, विषयी पर पूर्ण निर्भर न होकर भाषा आत्मव्यक्तित्ववाली भी होती है। ऐसी हालत में ही कवि या श्रोता अपनी वैयक्तिकता का केंद्रीकरण करके भाषा को पूर्ण बनाने की ओर अग्रसर होता है। चूंकि व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न क्षेत्र तथा आयाम होते हैं इसलिए भाषा भी (शैलियों के अलावा) कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक, तार्किक आदि के अनुरूप विशिष्ट विषयों में ढलती है। अतएव यहाँ मानस की क्रियाशक्तियों के साम्य पर प्रतीक (Symbols) और रूपक (Metaphors) निर्धारित किए जाते हैं व निर्मित किए जाते हैं।

फिर भी, केवल व्यक्ति और व्यक्तित्व के आधार पर ही शैली का नियमन नहीं हो सकता। इसके लिए विशिष्ट काल में कला की प्रवृत्तियों तथा सांस्कृतिक विकास का भी सहारा लेना होता है। इन दोनों के मुताबिक ही शब्द भंडार (Vocabulary) घटते-बढ़ते और अर्थ-परिवर्तन होते हैं।

सारांश यह कि –

(क) आत्मगत अभिव्यंजना की **अनिर्वचनीय अवस्था** में उचित (अभिव्यंजना योग्य) माध्यम अज्ञात होता है, या प्राप्त माध्यम व्यक्तिवक्त एवं ज्ञान का वहन नहीं कर सकता। यहाँ क्रियाशक्ति में मूलप्रवृत्तियों अथवा वासना प्रतिष्ठित है क्योंकि कलाकार की मनोप्रक्रियाओं की विविधता यहीं परिलक्षित होती है। यही अवचेतन–विषय की स्थिति है और मानसिक ऊर्जा स्वयंप्रकाश्यज्ञान होकर अदृश्य-प्रवाही होती है।

(ख) आत्मगत अभिव्यंजना की अनिर्वाचित अवस्था में माध्यम का अधूरा और अनुपयुक्त उपयोग हो पाता है। फिर भी ज्ञान को पूर्णतः प्रतीक और रूपक और तद्रूप बनाने वाले शब्द वाक्य, रूप आदि नहीं मिल पाते जिससे संतोष हो सके। यहाँ क्रियाशक्ति में अंतःसंस्कार प्रतिष्ठित होते हैं। क्योंकि कलाकार की स्थूल उत्तेजनाएँ इंद्रियबोधों का संबंध चिह्न लेती हैं। यहाँ क्रियाशक्ति में प्रगाढ़ इच्छा प्रतिष्ठित होती है जो संस्कारों और 'सुचयनों' की विधात्री भी है। यहाँ सौंदर्य तत्त्व, अभिनयशास्त्र, इंगित, नृत्य, मुखाकृति भावन, वेणुगीति (Lyric) ध्वनियों, अंगज चेष्टाओं आदि की स्थिति है।

दोनों ही अवस्थाओं में भाषा का प्रतीकीकरण (Symbolization) होता है, और वह मूलप्रवृत्तियों तथा अंतःसंस्कारों से जुड़ी रहने के कारण रिचार्डस् की शब्दावली में संवेगीय (Emotive) [न की संवेगात्मक (Emotional)] रहती है।

अनिवर्चनीय की तो अभिव्यक्ति ही नहीं होती। लेकिन अनिर्वचित की असफल या अपूर्ण या असंतुष्ट या सूक्ष्म अथवा सांद्र अभिव्यक्ति हो सकती है क्योंकि इस पर तो अनिर्वचनीय के सभी तनाव-खिचाव (Stress and Strains) सधे रहते हैं। दोनों ही अवस्थाओं में अर्थ-तत्त्वों में इन तनावों-खिचावों को प्रयुक्त करने वाले विषय (Subject) और वस्तुओं (Objects) के बीच असंतुलन हो जाता है क्योंकि चिह्न (Signs) चाहे वे प्रतीक हों, या संदर्भवाहक रूपक; काफी अंतर्विश्लेपित तथा असंश्लिष्ट-से होते हैं।

(व) भाषा की बहिर्गत अभिव्यंजना के चरण में कलाकृतियों का व्यावहारिक निर्माण (व्यावहारिक क्रिया-व्यापार) होता है। इस चरण की तीन निम्नलिखित अवस्थाएँ हैं।

(ग) युक्तिवचनीय अवस्था : जब माध्यम संतुलित हो अर्थात् प्रयोक्त (या विषयी) और संदर्भ-धर्मा विषय (या वस्तु) के संबंधों को चिह्न, शब्द, प्रतीक या रूपक—इस तरह सफलतापूर्वक पूर्ण तादात्म्यपूर्ण अभिव्यक्त कर दें कि प्रयोक्ता को मानसिक संतुष्टि भी मिल जाए। यहाँ ज्ञानात्मक व बौद्धिक व्यापारों का संयोग होता है अर्थात् पदार्थ और प्रत्यय दोनों ही पर्याप्त बहिर्गत होते हैं। इसके फलस्वरूप तार्किक धारणाओं वाली क्रियाशक्ति प्रधान हो जाती है। यहीं प्रत्यभिज्ञानात्मक अभिधा अर्थात् तथ्य परकता वाली भाषा की उपलब्धि होती है। यहाँ तक कि कला-भाषा भी तथ्यपूरक होकर स्थित हो सकती है, मसलन—सुभाषितम्, सूक्तियाँ, अभिधापूर्ण काव्यादि। एक दूसरे उदाहरण के द्वारा और भी स्पष्ट किया जा सकता है: यहाँ हम कहते हैं 'यह खजुराहो के प्रेमी युगल की मूर्ति है', न कि 'यह एक मनोहर मूर्ति है'। इस अवस्था में प्रतिष्ठित विषय तर्कशास्त्र प्रकृत विज्ञान, सामाजिक विज्ञानादि हैं। यहाँ भी भाषा धारणात्मक है।

(घ) **अतिवचनीय अवस्था** : जब माध्यम न्यून लगने लगता है अर्थात् प्रदत्त माध्यम का ही येनकेन प्रकारेण क्रम-संयोजन करके चिंतन और दूसरी अति पर, दिवास्वप्न का भी अभिधान किया जाता है। यहाँ कला में सत्य के दावे भी मंज़ूर होते हैं क्योंकि क्रियाशक्ति के रूप में चिंतन तथा दिवा-स्वप्न दोनों ही आसीन हैं। लेकिन विविध प्रकार की अनुभूतियाँ, मनोदशाएँ तथा संवेगात्मक वृत्तियाँ आदि माध्यम को गढ़गढ़ कर गद्य-पद्य, नाटक, उपन्यास, सत्य-सिद्धांत, गद्यगीत–निबंधादि विधाओं की सृष्टि करते हैं, क्योंकि, चिंतन और कल्पना का भ्रांति-मूलक (illusory) मेल यहाँ घुल-मिल जाता है। अतः यहाँ का सत्य युक्तिवचनीय अवस्था का सत्य न होकर काव्यात्मक सत्य (Poetic truth) होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ कथ्य, वाच्य या लिखित के ज़रिए कुछ व्यावहारिक लक्ष्य भी हासिल किए जाते हैं। नाटक महाकाव्य, उपन्यास, काव्य शास्त्र इस अवस्था के प्रतिष्ठित विषय हैं जो ऐसे ही छद्म सत्य या भ्रामक या काव्यात्मक सत्य का उपयोग करते हैं। (पात्र, वातावरण, घटनाओं, रीतिरिवाजों को प्रस्तुत करके)। प्रमाण की अवस्था से आगे के सिद्धांतों की स्थिति भी यही मानी जा सकती है। यहाँ शब्द ध्वनियों तथा वाक्यतलों की विशिष्ट व्यवस्था होती है, जैसे गद्य के धाराप्रवाह को खास हर्मनी और ताल देकर पंक्तियों को बाँटते हुए उसका पद्य में परिवर्तन, महाकाव्य की पद्य कथा को गद्य में लिखकर उपन्यास में या गद्यात्मक संवादों में लिखकर नाटक में परिवर्तन। इन सभी 'वाक्यगत ताल-परिवर्तनों' का लक्ष्य अभिव्यंजनात्मक-कल्पना-विलास है। और ये सहृदय में विशिष्ट भावभंगी से पढ़ने की मनोवृत्ति जागृत करने में सहायक होते हैं, मसलन, काव्य का ताल पढ़ने के ढँग को मंथर और धीमा कर देता है। यहाँ प्रधानतः लाक्षणिकता की प्रतिष्ठा की जा सकती है।

(ङ) **अतिरिक्त वचनीय अवस्था** : जब माध्यम अतिरिक्त से अर्थात् चिह्नों में संदर्भधर्मा वस्तु (Represented object) से भी अधिक क्षमता बाक़ी रह जाए और उनमें अँट न सके, इस अवस्था की क्रिया शक्तियाँ अतिकल्पना (फैंटेसी) तथा अतिधारणा हैं। यहाँ के प्रतिष्ठित विषय दर्शनशास्त्र तथा दार्शनिक प्रत्यय, नीतिशास्त्र और रहस्यवाद हैं। यहाँ निर्विकल्प रूप से भी समस्याएँ उठाई जा सकती हैं तथा व्यंग्य एवं रूपकाख्यानों का दूरान्वयी या ऊहात्मक उपयोग हो सकता है। तात्पर्य यह है कि इस अवस्था में दर्शन तथा काव्य दोनों की लुप्तप्राय (आदिम) शक्तियों का दुबारा अनुसंधान हो सकता है। इस वजह से यहाँ रूपात्मक विशेष्यों [पुराणाख्यान (Mythology) अन्यापदेश (allegory)] आदि या अति स्वच्छंद चिंतनों (दर्शन, रहस्य आदि) का गूढ़ातिगूढ़ प्रक्षेपण हो सकता है। यहाँ चिंतन और भावना दोनों की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार अभिव्यंजना की दृष्टि से हम भाषा को दो चरणों तथा पाँच अवस्थाओं के आधार पर भली-भाँति बाँट कर काव्य की मूल प्रेरणाओं, मूल अभिव्यंजनाओं तथा संबद्ध विषयों का तत्त्व निरुपण कर सकते हैं। एक छोटा-सा उदाहरण दिया जा सकता है : उक्ति विन्यास की दृष्टि तक से उपयुक्त सिद्धांतों की कसौटी पर काव्य परखा जा सकता है। अनिर्वचित के अंतर्गत प्रतीक और चिह्न रख सकते हैं, जहाँ अव्यक्त वस्तु-योजना होती है, युक्तिवचनीय के अंतर्गत निर्देशक जैसे अनुप्रास,

रूपक, स्वाभावोक्ति, उदात्त, सरल उपमाएँ आदि रख सकते हैं (यमक और श्लेष दोनों अवस्थाओं के बीच में आएँगे), अतिवचनीय के अंतर्गत लक्षण-शक्ति का समावेश हो सकता है तथा वाक्यवक्रता मूलक अप्रस्तुत प्रशंसा, परिसंख्या, व्याजस्तुति, विरोधाभास, असंगति आदि भी शामिल हो सकते हैं, और अंततः अतिरिक्तवचनीय के दायरे में व्यंजना तथा वाक्य-दूरारूढ़ियाँ आ सकती हैं, जैसे अन्योक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, दीपक आदि।

दृष्टि-संस्थापना के आयाम :—उपर्युक्त दृष्टि-संस्थापना से भाषा, शैली, अर्थात् रूप (Form) और कला इतिहास अर्थात् प्रवृत्तियों (Content) पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। हम इन्हें उपसाध्यों में बाँटेंगे।

(1) सृजनात्मक विषय-वस्तु का उपक्रम

जैसा कि तालिका सं० 2 से पता लगता है कि व्यक्ति तथा समाज, दोनों के ही आत्मगत तथा बहिर्गत चरण हो सकते हैं। व्यक्ति तो सृष्टि और जीवन-विकास के शाश्वत क्रम में इनसे गुज़रता ही है, समाज भी आदिम अवस्था से वर्तमान, और वर्तमान से आदिम अवस्था सन्नद्ध भविष्य में गतिमान होता है। अत : दो स्तरों पर यह चक्रपरक गति घटती है। व्यक्ति के आत्मगत चरण के अंतर्गत अवचेतन-उपचेतन, तथा बहिर्गत चरण के अंतर्गत मध्य में चेतन और बाद में क्रमशः चिंतन एवं संचरण की स्थिति है जिसे यों स्पष्ट किया जा सकता है :—

तालिका सं० 2

पुरोगामी क्रम		मध्य में	ऊर्ध्वगामी क्रम	
अवचेतनः अनिर्वचनीय	उपचेतनः अनिर्वचित	चेतन : युक्ति वचनीय	चिंतन : अतिवचनीय	संचरणः अतिरिक्त वचनीय
(क)	(ख)	(ग)	(घ)	(ङ)

इनमें से प्रथम और अंतिम अर्थात् अनिर्वचनीय और अतिरिक्तवचनीय का वृत्ताकारक्रम (Cyclic order) है। अनिर्वचनीय विकसित होते-होते अतिरिक्त वचनीय होकर चुक जाता है और तब पुनः अनिर्वचनीय-क्रम शुरू होता है—व्यक्ति, समाज और साहित्य सब में ही। सृजन-प्रक्रिया के अनुसंधान की दृष्टि से प्रथम और अंतिम काफ़ी निकट आ जाते हैं, दोनों ही बद्धमूल सीमाओं से काफ़ी मुक्त होते हैं। इसीलिए आदिम काव्य और कला की सामूहिक तालबद्ध प्रकृति की झलक पुनः कविर्मनीषी का लक्ष्य हो गई है। तब भविष्य की कविता में भी

'आदिमता' (Primitivism) काल विवेक वद्ध (अर्थात् नए समाज के विकास के मुताविक) सम विश होगा और वह सामूहिक बुद्धि तथा फैंटेसी के जादू को पुन: प्राप्त कर सकेगी। हमें तो लगता है कि मानों इस चक्र को संपूर्ण करने के लिए शब्द-बिंब, छंद-ताल, लय, रूपक-अलंकार, वाक्य-रचना-अर्थ विचार विषय, वस्तुओं के प्रति प्रतिक्रियाएँ तथा सामाजिक निष्कर्ष, आदि परस्पर खिंचे-से पूरे अधूरे होते हुए चले जा रहे हैं। यहाँ प्रत्येक कवि तथा प्रत्येक साहित्यिक युग की कुछ प्रियता, कुछ विशिष्ट अनुभव, कुछ विशिष्ट अंतर्विरोध, तथा कुछ विशिष्ट अभिव्यंजनाएँ होतीं हैं, जो पद रचना में वार-वार आती हैं, और अभिव्यंजना की निर्धारित पाँच अवस्थाओं के आधार पर हम कवियों के व्यक्तित्व, उनके शब्द-भंडारों तथा अभिरुचियों का अंदाज़ा भी लगा सकते हैं। क्योंकि सभी के अपने अपने-अलग-अलग व्यक्तित्व (मूल प्रवृत्तियों तक तो लगभग समानधर्मा हैं) अलग अंत:संस्कार, अलग विचारधाराएँ, तथा अलग अभिरुचियाँ हैं। अत: उनमें 'एक' या 'अनेक' शैलीगत रुझान साहित्य की विभिन्न शैलियों या युगीन शैलियों की तरह मिलते हैं। विकास के किसी एक समय-खंड में पाँचों अवस्थाएँ मिलकर शैली का दिशावोध कराती हैं (यद्यपि शैली युग की अभिरुचियों पर बहुत कुछ आश्रित है), जैसे अनिर्वचनीय स्तरों में धँसने वाले कवियों की भाषा नितांत वैयक्तिक तथा आदिम प्रतीकों से गुम्फित, अभिव्यक्ति की दृष्टि से सूक्ष्म तथा कुहेलिकामयी होगी। अनिर्वचित स्तरों में लीन काव्य भाषा कवि-मानव की वासना का पूरा चित्रण नहीं कर पाती, क्योंकि अब उसमें अनिर्वचनीय की अज्ञात भावऊर्जा अंत:संस्कारों तथा तीव्र वासनाओं से युक्त होती है और व्यक्तिगत ऐंद्रिक प्रतीकों से बहुल होती है। यहाँ व्यक्तिगत पात्र रचे जाते हैं। यहाँ एक नए युग-परिवर्तन और नई अभिव्यंजना की भविष्यलिपि मिलती है।

इन दोनों स्तरों में बहुधा कलाकार प्रेषणीयता की मात्रा तथा गुण का अभियंता हो जाया करता है, और दर्शक या ग्राहक उसके निर्देशन से इन वैयक्तिक तथा आत्म-मुग्ध बिंबों को ग्रहण करता है। किंतु ग्राहकों या दर्शकों के भी तो अपने व्यक्तिगत प्रतीक होते हैं जो कवियों के व्यक्तिगत प्रतीकों से टकराते हैं। अत: परोक्ष रूप में कवि का उनींदा सामाजिक मानव चौंक उठता है।

वाद के युक्तिवचनीय स्तरों पर वैयक्तिक प्रतीक (शब्द-चिह्न) परंपरागत अर्थात् सामाजिक प्रतीकों से सटने-जुड़ने लगते हैं, और शनै:-शनै: 'बहुत कुछ निश्चित अर्थों' का वोध कराने लगते हैं। यहाँ कलाकार और समाज की रुचियों में समन्वय अथवा समतोलन होता है। फलत: वह अपने इंद्रिय बोधों को काफ़ी-पैना रखता है। अनिर्वचनीय स्तरों पर वह चिंतन से भाव-जगत के क्षेत्र का विस्तार करता है, तथा यथार्थ का अपनी जीवन-दृष्टियों से निरीक्षण भी। अतिरिक्त वचनीय स्तरों पर वह इस विस्तृत भावभूमि में संचरण करता है और कवि-मानव से मानव-कवि हो जाता है। इन स्तरों के आरंभ में 'टाइपगत' पात्रों का भी संस्थान होता है।

(2) **व्यक्तित्व-संदर्शन** (Vision into personality) : हमारी तालिका नोव्यक्तित्व (Psychic personality) के परिपार्श्व में प्रतीकों तथा चिह्नों

के भी अध्ययन का जोरदार इशारा करती है। अनिर्वचनीय तथा अनिर्वचित स्तरों वाले प्रतीक और बिंब मिलकर किसी कवि के मनोजगत का मनोविश्लेषणात्मक इतिहास तक बना देते हैं। इस आधार पर दोस्तोवस्की, लियोनार्दो-द-विंची, वर्लेन, रिम्बों आदि के अंतर्जीवन की पुनर्रचनाएँ की गई हैं। मैंने भी प्रसाद संबंधी एक ऐसी आरंभिक कोशिश की है।[1] इन स्तरों तथा युक्तिवचनीय स्तरों के मिलने से जो युग-जटिलताएँ तथा व्यक्तिगत नए द्रव्य मौजूद होते हैं उन्हें सार्वभौम अथवा पौराणिक प्रतीकों द्वारा सुलझाया गया है। यही प्रवृत्ति अतिरिक्त वचनीय स्तर पर पहुँचकर नए पौराणिक आख्यानों (New Mythology, New heroes, New societies) चरितनायकों, समाजों आदि की परिकल्पना में परिणत होती है, जैसे, प्रसाद का कामायनी वाला आनंद लोक, दाँते का 'पैराडाइज़ो', तुलसी का रामराज्य, गौएथे का चिरंतननारीत्व का लोक आदि। यहाँ पहुँचकर काव्य रूपकों से निर्मित न होकर रूपकों का रहस्योद्घाटन हो जाता है। अपितु अतिधारणा और अतिकल्पना (फैंटेसी) की इस भूमि पर सारा काव्य ही एक रूपक हो जाता है (the whole poetry itself becomes a metaphor)। किंतु इस अतिरिक्तता से हमें बचना भी है, क्योंकि कई सामाजिक सत्य और उनकी व्याख्यायों, कई वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक सत्य तथा उनका छद्म सत्यात्मक ग्रहण भी तो अतिवचनीय धरातल पर ही होता है।

सारांश यह है कि पहली दो अवस्थाओं [(क) (ख)] में कवि के व्यक्तित्व का द्वंद्व बेहद धुँधला होता है। तीसरी (ग) में वह बौद्धिक तथा तार्किक भी होता है और पहली दोनों अवस्थाओं की असफलता पर बुद्धि के द्वारा विजय पाना चाहता है, जिससे वैयक्तिक तथा सामाजिक सत्य की व्याख्या (Interpretation) या आलोचना (Criticism) आदि करने के लिए बढ़ता है। यहाँ वैचित्र्य लाने तथा चिंतन को समाने के लिए वह मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, नवंश-शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, विज्ञान, टैकनॉलॉजी आदि के तथ्यों तथा धारणाओं तथा बिंबों का प्रयोग करके चिंतन तथा कल्पना का मेल करता है। अंत में पाँचवीं अवस्था (ङ) में वह भाषा को पुनः सार्वभौम रूपकत्व, परंपरा और मानवता के मनोजगत-बहिर्जगत आदि के महत्त्व तथा मूल्य के निर्धारण की ज़िम्मेदारी दे देता है। ये व्यक्ति की प्रतिभा के चरमोत्कर्ष तथा, समाज में संस्कृति के रिनैसा-काल या जागतिकाल हुआ करते हैं।

(3.) **भाषाधार पर कला के इतिहास का निर्माण** (Art-History on the basis of Language) : हम अपनी दृष्टि-संस्थापना का उपयोग—उपसाध्य (1) तथा (2) में क्रमशः 'सृजनात्मक विषयवस्तु का उपक्रम' तथा 'व्यक्तित्व संदर्शन' में करने के पश्चात्— 'भाषा के आधार पर कला के इतिहास के निर्माण' में भी कर सकते हैं।

---

[1] दे० कामायनी : तीन नए पक्ष : नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक 2, वर्ष 65, (संवत् 2017)।

(शुरू में यह दुहरा देना ज़रूरी है कि उपरिलिखित दोनों उपसाध्यों (1), (2) का प्रभाव इस उपसाध्य पर भी पड़ता है क्योंकि तीनों आपस में गुँथे हुए हैं।)

एक ओर तो व्यक्ति की वासनाएँ तथा आस्थाएँ, और दूसरी ओर समाज की सांस्कृतिक अवस्थाएँ एवम् बद्धमूल परंपराएँ—दोनों ही मिलकर भाषा के द्वंद्व का निर्धारण करती हैं। भाषा में इसीलिए विचित्र द्वैत और समन्वय होता है—जातिगत एवं व्यक्तिगत विशेषताओं का, रूढ़ि और नूतनता का, स्थायित्व और परिवर्तन का। अतः आत्मगत चरण में भाषा प्रधानतया व्यक्तियों के आधारों पर रूपायित होती है। और यह आधार बहिर्गत चरण तक भी फैलता है। बहिर्गत चरण में राष्ट्र (Nations), युग (Ages) तथा रीतियाँ (Schools) इसका मुख्यरूप से रूपायन करती हैं।

अतः भाषा को रूपायित करने वाले आधार चार है—व्यक्ति, राष्ट्र, युग और रीति। भाषा का रूपायित होना ही शैली है जो एक विलक्षण तथा विशिष्ट पद्धति है, जिसमें भाव या विचार प्रस्तुत किए जाते हैं, या निर्मित होते हैं, या ढलते हैं अथवा अभिव्यक्त होते हैं। सर्वसाधारण रूप में भाषा शब्दों और ध्वनियों का माध्यम होकर भावों तथा विचारों को प्रतीकों में तवदील करती है तथा विशेष प्रभाव पैदा करती है।

काव्य और साहित्य के माध्यम (medium) शब्द हैं। शब्द-समूह का विशिष्ट विन्यास ही भाषा है। अतः शब्द समूह और उनके विन्यास में हेर-फेर हुआ करते हैं। नीचे की तालिका सं० 3 के अनुसार हम माध्यम को तदनुरूप बाँट सकते हैं।

तालिका सं० 3

आत्मगत		मध्यस्थ		बहिर्गत
अज्ञात माध्यम	अनुपयुक्त माध्यम	संतुलित माध्यम	न्यून माध्यम	अतिरिक्त ज्ञात माध्यम
(क)	(ख)	(ग)	(घ)	(ङ)

यहाँ भी भाषा के 'अज्ञात माध्यम' को क्रमशः 'अतिरिक्त ज्ञात माध्यम' में बदलने में रूपायन के चारों आधार (व्यक्ति, राष्ट्र, युग और रीति) अपनी पेशक़दमी करते हैं। इन अवस्थाओं में व्यक्ति तथा समाज दोनों ग़ज़रते हैं चाहे क्रम मेंहेर-फेर भले हो जाए [क्योंकि क्रॉस कल्चरल पैटर्नों (cross cultural patterns) द्वारा

अन्य संस्कृतियों तथा समाजों के संपर्क-संघात-प्रभावादि भाषा में क्रांति ला देते हैं]। इस अभियान में कभी व्यक्ति भाषा को पूर्ण वना देता है, कभी सामाजिक चेतनाएँ व दशाएँ यह काम करती हैं। जब यह काम समाज करता है तो वह (सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक चेतनाओं, उत्पादन की अवस्थाओं आदि के द्वारा) भाषा को एक 'साहित्यिक-काल' अथवा 'कला-युग' में संश्लिष्ट कर देता है, जो खामियों-खूबियों, विशेषताओं-सामान्यताओं, व्यष्टियों-समष्टियों से प्रचुर होता है और कालांतर में, आगामी काल की ओर अग्रसर होता है।

अपने जीवन, अनुभवों तथा व्यक्तित्व की सीमाओं के कारण व्यक्ति तो अज्ञात माध्यम या अतिरिक्त ज्ञात माध्यम का कोई एक, या दो, या कुछ पहलू ही प्राप्त कर पाता है और उन्हें परिष्कृति और प्रौढ़ता दे पाता है। परंतु समाज, इन अनेक कलाकारों की 'सामूहिक चेष्टाओं' को एकत्र करता है। कहने का मतलब है कि व्यक्तिगत शलियों के सामान्य तत्त्व मिलकर काल अथवा युग-विशेष के **'शैलीगत रुझान'** (style trends) उपस्थित करते हैं।

अतः यहाँ व्यक्तिगत और सामाजिक अभिरुचियों (tastes) तथा प्रवृत्तियों (tendencies) का सवाल भी आ जाता है। किसी विशेष अनुभूति या अनुभव के विशिष्ट तीव्रता के साथ उत्तजित होने से अभिरुचि जनमती है और किसी विशेप सांस्कृतिक चेतना तथा सामाजिक संबंधों के आग्रह से प्रवृत्ति उभरती है। अभिरुचि तथा प्रवृत्ति अन्योन्याश्रित हैं। इसलिए एक विशिष्ट स्कूल या काल की शैली व्यक्तिगत व्यक्तित्व (अभिरुचिमूलक पद एवं विषय रचना) की छापों को नहीं मिटा सकती। अर्थात् यदि रीतिकाल की शैली को एक साहित्यिक शैली कहा जाए तो उसमें भी अंतर्भुक्त देव, विहारी, मतिराम, पद्माकर आदि की व्यक्तिगत छापों वाली शैलियाँ प्रभावपूर्ण हैं। किंतु जब (सांस्कृतिक) शैलीगत रुझानों का ही महत्त्व हो जाता है तब साहित्य और कला के 'अनुकरण प्रधान परंपरावादी', अपने क्लासिकल अथवा एक रूप परिपाटी वादी युग में आ जाते हैं। इन युगों में पूर्वयग में खोजे गए माध्यमों से ही संतोष कर लिया जाता है और अतिरिक्त माध्यमों की तलाश बुझ सी जाती है। ऐसी दशा में यदि एक या कुछ कवि अतिरिक्त माध्यमों की यत्किंचित् तलाश कर लेते हैं तो वे या तो सांस्कृतिक हो जाते हैं, अथवा भवभूति की तरह उपेक्षित होकर अनुकूल युग के इंतजार में भटकते रहते हैं। नई कविता की भाषा में शैलीगत रुझानों की अधिकता के कारण व्यक्तिगत शैलियों की विशेषताएँ अपेक्षाकृत कम प्रकट हो सकी हैं। इसीलिए अक्सर कहा जाता है कि सारी नई कविता 'एक-सी भाषा' में लिखी जा रही है। यह कथन असंतुलित तथा एकांगी है, यद्यपि वाक्य-विचार (syntax) की दृष्टि से कुछ अंशों में सच हो सकता है।

जब समाज की कला और संस्कृति इन सभी सामूहिक चेष्टाओं का सामर्थ्य आखिर तक चुका लिए रहती है, तब तक सामाजिक अवस्थाओं की उन्नति की वजह से सामाजिक संबंध तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ बदल गई होती हैं। साथ ही युग-विशेष में संभव अज्ञात माध्यम से लेकर अतिरिक्त ज्ञात माध्यम की यथापूर्ण

उपलब्धि का एक युग वीत चुका होता है अथवा एक ही समान वर्गीय चेतनाओं वाले कलाकार और पाठक अपने अतिरिक्त माध्यम को चुका चुके होते हैं। बाद में फिर 'रिक्त' को 'अतिरिक्त' करने की कोशिश होती है।

ऐसी स्थिति में सामाजिक अवस्था के परिवर्तन के कारण या तो कोई नया साहित्यिक और कलायुग उद्भूत होता है, या फिर कभी-कभी उसी एक काल में ही दूसरे प्रकार की सांस्कृतिक एवं वर्गीय चेतनाओं वाले कलाकार तथा सुहृद्गण अपने अतिरिक्त माध्यमों की अनखोजी संभावनाओं को प्राप्त करके उन्हें पूरी तरह रिक्त करने में जुट जाते हैं। अपने देश के एक ही सुदीर्घ मध्यकाल में संतकवियों का युग, और तदुपरांत विशिष्ट अभिरुचियों तथा हितों-वाले रीतिकाव्यों का दूसरा युग इस विभक्ति के सबूत हैं। इस तरह कालक्रम भी चक्राकार (cyclic) हुआ करता है।

आधुनिक हिंदीतर भारतीय भाषाओं में अनुवाद-कार्य

गार्गी गुप्त

भारतीय भाषाओं में अनुवाद की परंपरा पर दृष्टिपात करने से जो दस मुख्य तथ्य सामने आते हैं, वे इस प्रकार हैं :–

(1) आर्य और आर्येतर, दोनों ही वर्गों की भाषाओं के बीच साहित्य का परस्पर आदान-प्रदान बड़े प्राचीन काल से हो रहा है; (2) दूसरी भाषाओं की चीज़ें अपनाते समय पहले सामान्यत: उसे आत्मसात् कर लेने की प्रवृत्ति थी, अर्थात् विषय-वस्तु और भाव, दोनों ही दृष्टियों से उन्हें अपने वातावरण के अनुसार बना लिया जाता था और इस कारण उनका मूल स्वरूप प्राय: समाप्त हो जाता था; (3) जिन भाषाओं की चीज़ें भारतीय भाषाओं ने सर्वाधिक ग्रहण कीं, उनमें संस्कृत अन्यतम है; (4) संस्कृत ने दूसरी भाषाओं की चीज़ें न के बराबर ग्रहण कीं; (5) संस्कृत की जिन चीज़ों को दूसरी भारतीय भाषाओं ने ग्रहण किया, उनका स्वरूप मुख्यत: या तो धार्मिक था या कलात्मक; (6) वास्तविक अनुवाद का काम 19 वीं शताब्दी में आगे बढ़ा जब विदेशी भाषाओं की कृतियों के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं की सुख्यात कृतियों की ओर भी लोग आकृष्ट हुए; (7) अब तक उत्तर-भारतीय भाषाओं की कृतियों का दक्षिण-भारतीय भाषाओं में जितना अनुवाद हुआ है, उसकी तुलना में उत्तर-भारतीय भाषाओं ने दक्षिण-भारतीय भाषाओं की उपेक्षा ही की है; (8) जिन आधुनिक भाषाओं की कृतियाँ शेष भारतीय भाषाओं ने सर्वाधिक अपनाई हैं, उनमें बँगला और हिंदी का स्थान सर्वोपरि है; (9) जिन विदेशी भाषाओं को भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक स्थान मिला है, उनमें अँग्रेज़ी, फ्रैंच और रूसी मुख्य हैं; तथा (10) भारतीय भाषाओं के परस्पर आदान-प्रदान में आज सबसे बड़ी बाधा ऐसे लोगों का अभाव है, जो सीधे एक भाषा से दूसरी भाषा में किसी रचना का अनुवाद कर सकें।

विभिन्न भारतीय भाषाओं के मध्य साहित्य के परस्पर आदान-प्रदान के क्रम में एक और बात सामने आती है, जिसका स्वरूप आरंभ से अब तक लगभग एक-जैसा रहा है और जिसके भविष्य में भी चलते रहने की संभावना है। राजनीतिक और

3—1 C. H. D./64

सामाजिक क्षेत्र में व्यक्ति-पूजा के अभ्यासी इस देश की भाषाओं ने भी दूसरी भाषाओं की उन्हीं कृतियों को उन्मुक्त भाव से अपनाया है, जिनके सृष्टा अखिल भारतीय व्यक्तित्व रखते थे। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच परस्पर-आदान-प्रदान में कृतियों के राष्ट्रीय स्वरूप का सर्वाधिक महत्त्व रहा है— राष्ट्रीय स्वरूप न रखने वाला साहित्य अपने क्षेत्र में ही पड़ा रह गया है।

यों, राष्ट्रीयता की यह प्रवृत्ति स्वागतार्थ ही है, फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि इस प्रवृत्ति की अतिशयता ने अनजाने ही 'एकता के बीच अनेकता' को प्रश्रय दिया और एक भाषा तथा प्रदेश के लोग दूसरी भाषाओं तथा प्रदेशों से संबंधित लोगों से एक बड़ी सीमा तक अनभिज्ञ रहे तथा परस्पर-सद्भावना का क्रमशः ह्रास हुआ। लोगों में दूसरी भाषाएँ सीखने तथा उन्हें अपनाने की स्वाभाविक लालसा भी बहुत कम है, जिसके फलस्वरूप एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद का काम उस स्वच्छन्दता तथा गति से नहीं हो रहा है, जिससे होना चाहिए; और एक भारतीय भाषा से दूसरी भारतीय भाषा में किसी कृति का अनुवाद करते समय अक्सर किसी विदेशी भाषा का आश्रय लेने को विवश होना पड़ता है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद के क्षेत्र में अब तक हुई प्रगति के पर्यालोचन से यह तथ्य बहुत ही स्पष्ट रूप में सामने आ जाता है।

1. असमिया

असमिया-भाषा अनुवाद की दृष्टि से विपन्नावस्था में ही है। इस भाषा में मुख्य रूप से चार भाषाओं से ही अनुवाद का काम हुआ है। संस्कृत की रामायण, महाभारत और कुछ अन्य धार्मिक ग्रंथों के अलावा असमिया में कालीदास की भी कुछ कृतियों का अनुवाद हुआ है। असमिया के अनूदित साहित्य में संस्कृत के बाद अँग्रेज़ी और बँगला का स्थान है। अँग्रेज़ी के प्रख्यात साहित्यकारों को असमिया में एक सीमा तक प्रतिनिधित्व मिला है। अखिल भारतीय स्तर के लोकप्रिय नेताओं का भी साहित्य असमिया में अँग्रेज़ी के ही माध्यम से आया है।

बँगला असमिया की पड़ोसिन भाषा है और दोनों भाषाओं के प्रदेशों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी प्रायः एक ही है, इसलिए बँगला के ख्यातिप्राप्त साहित्यकारों की कृतियों का असमिया में अनुवाद सहज स्वाभाविक था। परंतु इन साहित्यकारों की भी सभी कृतियाँ असमिया में उपलब्ध नहीं हैं। हिंदी के साहित्यकारों में संभवतः प्रेमचंद ही ऐसे हैं, जिन्हें असमिया-पाठक जानते हैं। रूसी साहित्यकार लियो टाल्सटाय की भी कुछ कृतियों का, जिनमें से "वार ऐंड पीस" प्रमुख हैं, असमिया में अनुवाद हुआ है।

अब असम-सरकार ने एक प्रकाशन-मंडल की स्थापना की है, जो स्वदेशी और विदेशी भाषाओं की अच्छी कृतियों के असमिया में अनुवाद की व्यवस्था कर रहा है। इस क्षेत्र में थोड़ा-बहुत काम नेशनल बुक ट्रस्ट तथा साहित्य-अकादमी ने भी किया है।

2. उड़िया

उड़िया-भाषा की भी स्थिति लगभग वही है, जो असमिया की है। इस भाषा में भी अँग्रेज़ी के अलावा केवल बँगला और हिंदी से ही थोड़ा-बहुत अनुवाद हुआ है। हालाँकि तेलुगु और मराठी भी उड़िया की पड़ोसिन भाषाएँ हैं, पर उनसे उड़िया ने लिया कुछ नहीं।

हाँ, हिंदी से अनुवाद की दिशा में उड़िया भाषा की प्रगति अवश्य सराहनी है। प्राचीन कवियों से लेकर अत्याधुनिक कवियों एवं गद्यकारों की कुछ रचनाओं का उड़िया में अनुवाद हो चुका है। उड़िया में संस्कृत के गौरव-ग्रंथों को भी प्रस्तुत तो किया गया है, पर उनकी संख्या संतोषजनक नहीं है। बहुत-से कलात्मक संस्कृत-ग्रंथों का उड़िया में अनुवाद किया जाना अभी शेष है। इन सबके अतिरिक्त, उड़िया में अँग्रेज़ी के भी ग्रंथों का अनुवाद हुआ है, पर मात्र विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए।

अब उड़ीसा सरकार तथा साहित्यिक संस्थाएँ इस बात के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हैं कि उड़िया-साहित्य की गोद विभिन्न भाषाओं की बहुमुखी कृतियों से भरी जाए।

3. उर्दू

अनुवाद की दृष्टि से उर्दू-भाषा का भांडार यद्यपि विशेष रिक्त नहीं है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उसका अनूदित साहित्य यथेष्ट है। उर्दू में विदेशी भाषाओं से ही अधिक अनुवाद हुआ है। ये भाषाएँ विशेष रूप से अरबी, फ़ारसी, अँग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन और रूसी हैं। हिंदी, बँगला, पंजाबी, कश्मीरी, मराठी, गुजराती और तेलुगु के भी कुछ ग्रंथों का उर्दू में अनुवाद हुआ तो है, पर उसका एक-बड़ा भाग कथा-साहित्य से संबद्ध है। वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य की दृष्टि से भी उर्दू की गोद अभी खाली ही है। इस ओर भी ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

4. कन्नड़

कन्नड़-भाषा अनूदित साहित्य की दृष्टि से बड़ी विपन्नावस्था में है। इस भाषा के मौलिक ग्रंथों की तुलना में अनूदित ग्रंथों की संख्या बहुत ही कम है। महाभारत के अलावा, वेदों के कुछ अंशों, कुछ उपनिषदों, शकुंतला, रघुवंश, आदि का ही कन्नड़-भाषा में अनुवाद हुआ है। फिर भी, संस्कृत-साहित्य का एक अत्यंत नगण्य भाग ही अब तक कन्नड़ में उपलब्ध है। अँग्रेज़ी भाषा से कन्नड़ में अनूदित साहित्य भी मुख्यतः विद्यालयों से संबंध रखता है। अँग्रेज़ी के अत्यंत प्रसिद्ध कुछ साहित्यकारों की ही इक्की-दुक्की कृतियाँ कन्नड़-भाषियों को प्राप्त हैं। अतः इस दिशा में भी काफ़ी कुछ किए जाने की आवश्यकता है। भारतीय भाषाओं के साहित्य को भी कन्नड़-साहित्य में जो प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है, वह सर्वथा असंतोषजनक है।

5. कश्मीरी

कश्मीरी-भाषा में अनुवाद की परंपरा अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में तनिक भिन्न ठहरती है। इस भाषा में पहले-पहल फ़ारसी-काव्य का अनुवाद हुआ, और उसके बाद संस्कृत तथा अरबी-साहित्य का। अब भी कश्मीरी में मुख्यत: काव्य के ही अनुवाद की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इसका कारण यह है कि कश्मीरी-भाषा में गद्य-लेखन अभी हाल में आरंभ हुआ है। कश्मीरी में 'गीता' के पाँच पद्यानुवाद और 'रामायण' के दो रूपांतर उपलब्ध हैं। संस्कृत के दो नाटकों—'शकुंतला' और 'स्वप्नवासवदत्तम्'—को भी कश्मीरी में अनूदित किया गया है। 'श्रीमद्भागवत्' और पुराणों की भी कुछ कहानियाँ कश्मीरी में अनूदित हुई हैं। इसी तरह कुछ यूरोपीय और एशियाई गौरव-ग्रंथ भी कश्मीरी में उपलब्ध हैं।

वास्तव में, कश्मीरी भाषा में अनुवाद का काम सबसे अधिक पिछले 14-15 वर्षों में आगे बढ़ा है। इस अल्पावधि में ही प्रमुख साहित्यकारों की सुप्रसिद्ध कृतियाँ कश्मीरी में उपलब्ध हो गई हैं। गुजराती, असमिया, मराठी, मलयालम, बँगला और पंजाबी से भी कश्मीरी में अनुवाद हुआ है, परंतु विशेषत: अनुवाद उर्दू, अँग्रेज़ी और हिंदी से ही हुआ है। अन्य भारतीय भाषाओं की भी वही कृतियाँ कश्मीरी-वाङ्मय में स्थान पा सकी हैं, जो उपर्युक्त तीन भाषाओं में से किसी एक में उपलब्ध थीं। इसका सबसे बड़ा, और सम्भवत: एकमात्र कारण यह है कि कश्मीरी के साहित्यकारों की अन्य भाषाओं के क्षेत्र में गति नहीं है।

कश्मीरी के अनूदित साहित्य का विवेचन करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उक्त भाषा का इतिहास बहुत पुराना नहीं है और शेष भारतीय भाषाओं से भी उसका विशेष संपर्क नहीं रहा है। फिर, स्वयं कश्मीरी भाषा की ही मौलिक कृतियों की संख्या कोई खास बड़ी नहीं है। कहा जा सकता है कि कश्मीरी-भाषा अपने विकास की शैशवास्था में है, और आज उसे समृद्ध करने के प्रयत्न जिस तरह हो रहे हैं, वे यदि जारी रहे, तो वह शीघ्र ही काफ़ी आगे बढ़ जाएगी।

6. गुजराती

गुजराती भारत की समृद्ध भाषाओं में से एक है। तदनुसार ही, उसमें अनूदित साहित्य का भी परिमाण विशेष चिंताजनक नहीं है। गुजराती में अनुवाद का काम मध्य-काल में आरंभ हुआ, जब मालन ने महाकवि बाण की सुप्रसिद्ध संस्कृत-रचना 'कादंबरी' का, और रत्नेश्वर ने 'भागवतपुराण' का गुजराती-संस्करण प्रस्तुत किया। इनमें से भी मालन की 'कादंबरी' रूपांतर अधिक थी, अनुवाद कम। तदुपरांत कुछ अन्य लोगों ने कालिदास तथा बाण की कतिपय अन्य कृतियों के अतिरिक्त भवभूति, भास, हर्ष, शूद्रक एवं अन्य संस्कृत-साहित्यकारों की कृतियाँ गुजराती में उपस्थित कीं। संस्कृत के अलावा अँग्रेज़ी से भी गुजराती में अनुवाद का काम कम नहीं हुआ है। अँग्रेज़ी से गुजराती में अनूदित प्रथम पुस्तक इंग्लैंड का एक संक्षिप्त इतिहास थी। यह अनुवाद

सन् 1838 में हुआ था । इस अनूदित पुस्तक की एक विशेषता यह थी कि इसमें मूल अँग्रेज़ी को भी स्थान मिला था । अँग्रेज़ी को पाठ्यक्रम में स्थान मिलने के उपरांत अँग्रेज़ी से गुजराती में अनुवाद की धारा विशेष तेज़ी से बढ़ी । कालक्रम में फ्रेंच और रूसी भाषा के भी साहित्य गुजराती में उपलब्ध हुए । परंतु वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य के मामले में गुजराती भी दरिद्रता से ऊपर नहीं उठ सकी है ।

गुजराती में जिन भारतीय भाषाओं की कृतियाँ उपलब्ध हैं, उनमें हिंदी, मराठी और बँगला प्रमुख हैं । परंतु दूसरी भारतीय भाषाओं के बारे में स्थिति ऐसी नहीं है । इस दिशा में विशेष प्रयास किए जाने की आवश्यकता है । आज की परिवर्तित परिस्थितियों में वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य की ओर भी गुजराती-साहित्यकारों का ध्यान जाना अपेक्षित है ।

7. तमिल

अनूदित साहित्य की दृष्टि से तमिल का कोष विशेष रिक्त नहीं है । अँग्रेज़ी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं की अनेक उत्कृष्ट कृतियों को तमिल में प्रस्तुत किया जा चुका है । होमर की जगत्प्रसिद्ध कृति 'इलियड' का अनुवाद संभवतः शेष सभी भारतीय भाषाओं से पहले तमिल में हुआ था । बँगला के लगभग सभी शीर्षस्थ साहित्यकारों की विशिष्ट कृतियों का अनुवाद तमिल में उपलब्ध है ।

मराठी, हिंदी, गुजराती, मलयालम तथा तेलुगु कथा-साहित्य के कुछ गौरव-ग्रंथ भी तमिल में अनूदित हो चुके हैं तथा तमिल भाषा-भाषी लोग इस क्षेत्र में निरंतर यत्न कर रहे हैं ।

यह एक बड़ी ही शुभ बात है कि तमिल के साहित्यकार इतने से ही संतुष्ट नहीं हो गए हैं कि वे अपने अनुवाद-कार्यक्रम को विस्तृत करने का इरादा रखते हैं । इस दिशा में 'सदर्न लैंग्वेजेज़ बुक ट्रस्ट' तो अपना कर्तव्य कर ही रहा है, अनुवादक और प्रकाशक निजी रूप से भी प्रयत्नशील हैं । अँग्रेज़ी से वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य का अनुवाद करने की ओर भी उनका ध्यान है ।

8. तेलुगु

तेलुगु में अँग्रेज़ी तथा यूरोपीय भाषाओं से हुए अनुवादों एवं रूपांतरों का परिमाण संतोषजनक कहा जा सकता है । इन भाषाओं के सर्वोत्तम साहित्य का एक बड़ा भाग तेलुगु में उपलब्ध है । इसी प्रकार, हिंदी और बँगला की भी अनेक सुख्यात कृतियों को तेलुगु में प्रस्तुत किया गया है । लगभग तीन दशक पहले आंध्र-प्रचारिणी ग्रंथ-मंडली ने बँगला-साहित्य को तेलुगु भाषा में प्रस्तुत करने का काम आरंभ किया था । दक्षिण-भारत हिंदी प्रचार सभा के प्रयत्नों से हिंदी के कई ग्रंथ तेलुगु में अनूदित हुए हैं । मराठी से तेलुगु में मुख्यतः नाटकों का अनुवाद हुआ है । 'सदर्न लैंग्वेजेज़ बुक

ट्रस्ट' ने तमिल, कन्नड़ और मलयालम-साहित्य के तेलुगु में अनुवाद की दिशा में सराहनीय काम किया है। फिर भी, भारतीय भाषाओं से तेलुगु में अनुवाद का कार्यक्रम अब तक धीमा ही रहा है और इस दिशा में बहुत-कुछ किया जाना शेष है। इसी प्रकार, वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य से भी तेलुगु-वाङ्मय की गोद यथेष्ट रूप से भरी जानी चाहिए। जहाँ तक संस्कृत से अनुवाद का सवाल है, इस दिशा में तेलुगु के साहित्यकारों ने अच्छा काम किया है और इस भाषा में संस्कृत के अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं।

9. पंजाबी

पंजाबी में अनुवाद का काम मूलत: 19 वीं शताब्दी के अंतिम चरण में आरंभ हुआ और अनुवाद के लिए संस्कृत तथा फ़ारसी के कुछ ग्रंथों को चुना गया। पर आरंभ में हुए अनुवादों का स्तर संतोषजनक नहीं था और वे साधारणत: छायानुवाद थे। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कालिदास के कुछ नाटकों का जो अनुवाद किया गया वह साहित्यिक दृष्टि से निम्न कोटि का ही था और मूल लेखक के साथ न्याय नहीं हो सका था, परंतु अब स्थिति वैसी नहीं है। दर्शनशास्त्र, विज्ञान, अर्थशास्त्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबद्ध साहित्य का पंजाबी में बड़ा अभाव है। अंग्रेज़ी और अन्य पाश्चात्य भाषाओं का जो साहित्य पंजाबी में अनूदित हुआ है, वह मुख्यत: कथा-साहित्य है और उससे पंजाबी की अभिवृद्धि को विशेष सहायता पहुँच सकना संभव नहीं है। भारतीय भाषाओं में से भी केवल हिंदी और उर्दू के ही कुछ ग्रंथों का पंजाबी में अनुवाद हुआ है। बँगला का भी थोड़ा-सा ही साहित्य पंजाबी में उपलब्ध है। पर अपनी इन त्रुटियों की ओर पंजाबी-भाषी सचेत न हों, ऐसी बात नहीं है। **पंजाबी साहित्य-अकादमी** और **केंद्रीय पंजाबी लेखक-सभा** के अतिरिक्त कुछ प्रकाशक भी पंजाबी साहित्य को समृद्ध करने में पूरी तरह सचेष्ट हैं। पंजाब-सरकार के पंजाबी-विभाग ने भी दूसरी भाषाओं का कुछ अच्छा साहित्य पंजाबी में प्रस्तुत करने की ओर क़दम बढ़ाया है।

10. बँगला

अनूदित साहित्य की दृष्टि से बँगला भाषा की स्थिति काफ़ी अच्छी है। इस भाषा में धार्मिक, सृजनात्मक और सूचनात्मक, तीनों ही प्रकार के साहित्य का स्वदेशी और विदेशी भाषाओं से अच्छा-खासा अनुवाद हुआ है। संस्कृत से रामायण, महाभारत, वेदों, उपनिषदों, तंत्रों और पुराणों का तो बँगला में अनुवाद हुआ ही, कालिदास के काव्य और नाटकों को भी बँगला भाषियों के लिए उपलब्ध किया गया। बँगला में यद्यपि कृतिवास की 'रामायण' सर्वाधिक लोकप्रिय है, तथापि वाल्मीकि और तुलसी दास की राम-कथा को बँगला में स्थान न मिला हो, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार, कबीर के दोहों का भी कई अनुवादकों ने बँगला में अनुवाद किया है। मध्य-युग के कई संत कवियों की कविताओं का संग्रह और अनुवाद भी किया गया है। बँगला-साहित्य में मीरा के भजन तथा धरणीदास और गुजराती-कवि नरसिंह मेहता के भी पद और भजन बँगला में अनूदित हो चुके हैं। सिक्खों के धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहब' के प्रथम

खंड 'जपुजी' का और सिख-गुरु अर्जुनदास के सुखमणि नामक ग्रंथ का भी बँगला में अनुवाद हो चुका है। इसी प्रकार, तमिल की विख्यात कृति 'कुरल' को बँगला-भाषियों के लिए उपलब्ध किया जा चुका है। इनके साथ ही कई हिंदी, उड़िया तथा मलयालम उपन्यास भी अनूदित हो चुके हैं।

जहाँ तक सूचनात्मक साहित्य का संबंध है, ज्योतिरींद्रनाथ ठाकुर ने बाल गंगाधर तिलक की सुप्रसिद्ध मराठी-कृति 'गीता-रहस्य' और दत्तात्रय बलवंत फड़णवीस द्वारा मराठी में लिखित 'रानी लक्ष्मीबाई की जीवनी' का बँगला में अनुवाद किया है। इतिहासकार सुरेंद्रनाथ सेन ने लोकमान्य तिलक की जीवनी का भी मराठी से बँगला में अनुवाद किया है। इसी प्रकार, गांधीजी, विनोबा भावे और राजेंद्रप्रसाद का भी साहित्य बँगला में प्रस्तुत किया जा चुका है। फिर भी, आधुनिक युग की आवश्यकताओं को देखते हुए, इतना ही पर्याप्त नहीं है। देश की स्वतंत्रता की पृष्ठ-भूमि में भारतीय भाषाओं के दायित्व में जो वृद्धि हुई है, उसके निर्वाह के लिए यह आवश्यक है कि हर भारतीय भाषा में समस्त दूसरी भारतीय भाषाओं का उत्कृष्ट साहित्य उपलब्ध हो और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पाश्चात्य साहित्य से जितना-कुछ लिया जा सकता है, लिया जाए।

11. मराठी

मराठी में अनुवाद का काम लगभग सवा सौ वर्ष पहले आरंभ हुआ था। शुरू शुरू में प्रवृत्ति सूचनात्मक साहित्य के अनुवाद की रही, जो कि पाठ्यक्रम में अँग्रेज़ी के प्रवेश के कारण सर्वथा स्वाभाविक थी। परंतु शीघ्र ही, बीसवीं शताब्दी के आरंभ होते-न-होते, सृजनात्मक साहित्य का भी अनुवाद होने लगा। शुरू में सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद में छायानुवाद की ही प्रधानता रही--विशेषकर नाटकों और कथा-साहित्य के अनुवाद में। शेक्सपीयर के जितने भी नाटक मराठी में आए, वे सही मानी में अनुवाद नहीं, छायानुवाद थे। उनमें कथावस्तु तो शेक्सपीयर की है, पर पात्र और स्थान अनुवादकों के। इसी प्रकार, कालिदास के 'मेघदूत' का पाँच-छह अनुवादकों ने मराठी में अनुवाद किया है, पर वास्तविक अनुवाद, जिससे कालिदास झाँकते हैं, एक-दो ही हैं। पर अब सच्चे अर्थों में भी अनुवाद होने लगा है। गोगल के 'इन्सपेक्टर जनरल' का किया गया अनुवाद इसका एक उदाहरण है।

भारतीय भाषाओं में, संस्कृत के अतिरिक्त, बँगला, हिंदी और उर्दू से मराठी में अच्छा-खासा अनुवाद हुआ है। इन भाषाओं के अधिकांश उल्लेखनीय ग्रंथ मराठी में उपलब्ध हैं। परंतु शेष भारतीय भाषाओं के बारे में स्थिति ऐसी नहीं है। गुजराती तक से, जो उसकी पड़ोसिन भाषा है, मराठी में बहुत कम अनुवाद हुआ है। शेष भारतीय भाषाओं से भी जो-कुछ मराठी में आया है, वह या तो अँग्रेज़ी के माध्यम से या हिंदी के।

इस प्रकार, मराठी में भी अनूदित साहित्य की अवस्था विशेष अच्छी नहीं है और इस दिशा में काफ़ी-कुछ किए जाने की आवश्यकता है।

12. मलयालम

मलयालम -भाषा में सबसे अधिक अनुवाद संस्कृत से हुआ है और उसके बाद अँग्रेज़ी से । अँग्रेज़ी के ही माध्यम से कुछ अन्य पाश्चात्य भाषाओं --और एक हद तक भारतीय भाषाओं का भी ---न्यूनाधिक साहित्य मलयालम में आया । परंतु पिछले कुछ वर्षों से भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अँग्रेज़ी का स्थान हिंदी ने ले लिया है और उसके माध्यम से अन्य भाषाओं का साहित्य मलयालम में आ रहा है ।

संस्कृत से अनुवाद के क्षेत्र में मलयालम की एक विशिष्ट परंपरा रही है । वाल्मीकि की 'रामायण', 'महाभारत' और 'श्रीमद्भगवत्गीता' के छह-छह सौ वर्ष पुराने अनुवाद मलयालम -भाषा में उपलब्ध हैं, परंतु ये अनुवाद अधिकांशतः छायानुवाद हैं। मलयालम में संस्कृत से ज्योतिष-विज्ञान, औषध-विज्ञान, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि से संबंधित ग्रंथों का भी अनुवाद हुआ है । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में संस्कृत से नाटकों, काव्य और अन्य-साहित्य का भी मलयालम में अनुवाद हुआ । मलयालम में ऋग्वेद और 'ब्रह्म-सूत्र भाष्य' का अनुवाद भी किया जा चुका है ।

संस्कृत के बाद मलयालम के अनूदित साहित्य में अँग्रेज़ी का स्थान आता है । अँग्रेज़ी के प्रख्यात साहित्य-मनीषियों को तो मलयालम-भाषा ने अपनाया ही हैं, अन्य यूरोपीय भाषाओं के साहित्यकारों को भी पर्याप्त मान दिया है । अखिल भारतीय नेताओं का साहित्य भी अँग्रेज़ी के ही माध्यम से मलयालम में आया है ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं से अनुवाद के क्षेत्र में, बँगला की ओर मलयालम-भाषियों का ध्यान आकर्षित करने वाली प्रथम पुस्तक बंकिमचंद्र की 'दुर्गेशनंदिनी' थी । आज बँगला की कम-से-कम पाँच दर्जन पुस्तकें मलयालम में उपलब्ध हैं । हिंदी-उपन्यासकार प्रेमचंद के भी अधिकांश उपन्यास और कहानियाँ मलयालम-भाषा में मिलती हैं । इनके अलावा, अन्य प्रमुख हिंदी-साहित्यकारों की कुछ कृतियों का मलयालम में अनुवाद हो चुका है । भारतीय भाषाओं के अन्य साहित्यकारों को भी मलयालम में अपनाया गया है ।

इस प्रकार, अनुवाद की दृष्टि से मलयालम-भाषा भारतीय भाषाओं का नेतृत्व-सा करती दिखाई देती है और अपना यह स्थान वह आगे भी बनाए रखेगी, ऐसा मलयालम साहित्यकारों की वर्तमान गतिविधियों को देख कर कहा जा सकता है ।

परंतु सब मिला कर भारतीय भाषाओं में अनूदित साहित्य की अवस्था संतोषजनक कदापि नहीं है --गुण और परिमाण, दोनों ही दृष्टियों से । इस दिशा में एक बड़ी बाधा कई भाषाएँ जाननेवाले लोगों का अभाव है । अनेक भारतीय भाषाओं का दूसरी भारतीय भाषाओं में प्रत्यक्ष अनुवाद अब तक संभव नहीं है । इस अभाव को परस्पर-सद्भाव से ही दूर किया जा सकता है । तभी हर भारतीय भाषा दूसरी भारतीय भाषाओं के अधिक निकट आकर परस्पर-आदान-प्रदान भी कर सकती हैं ।

संस्कृत-व्याकरण

सरलीकरण और नवलेखन की समस्याएं

रामनरेश शर्मा

महाभाष्य में कहा गया है "लक्ष्य लक्षणे व्याकरणं"। वस्तुत: भाषा के शिष्ट रूपों का स्थिरीकरणऔर वद्‌ध अभिव्यंजना, दोनों ही दृष्टियों से व्याकरण को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। यूरोपीय भाषाविदों ने तो भाषा-विज्ञान और व्याकरण के बीच कोई विभाजक रेखा ही नहीं निर्धारित की थी। भाषा विज्ञान, उनके लिए "ग्रामर ऑव ग्रामर" बनकर रह गया था। अत: स्पष्ट है कि शब्द-रूपों और प्रयोग के नियमों तक ही व्याकरण परिसीमित नहीं, इसकी विविधता और विशदता के अन्यान्य पहलू भी हैं। विशद् विश्व-ज्ञान कोषकार ने व्याकरण की इस महत्ता को कई-रूपों में व्याख्यायित किया है।[1] मूलत: भाषा पर आधारित होने के कारण व्याकरण का पृथक् अस्तित्व नहीं रह पाता। कहना चाहिए कि एकरूपता और स्थिरता नहीं रह पाती, क्योंकि भाषा की गति-भंगिमा बदलने के साथ-साथ, इसके प्रारूपों और सिद्‌धांतों में भी परिवर्तन होता है। इसीलिए यह कहा जाता है कि किसी भी जीवित भाषा का व्याकरण एक बार नहीं लिखा जाता। जीवित भाषाएँ अपने वेग में शतधा धाराओं में विभक्त होती हुई विकास की नव्य संभावनाएँ हेरती हैं। इसलिए अगर आज अहिंदी भाषी क्षेत्रों में, व्याकरण की जटिलता से बौखलाहट है, "व्याकरण सरल बनाओ" के अभियान चल रहे हैं तो हिंदी-प्रेमियों को घबड़ाना नहीं है, क्योंकि कम से कम इतना तो कटु सत्य है कि मृत भाषाओं के ही व्याकरण नहीं बदलते।

राष्ट्र भाषा के रूप में आज हिंदी-प्रेमियों की संख्या अप्रत्याशित रूप से बढ़ती जा रही है, नए विचार-क्षेत्र जुटते जा र हैं और विकास के नए क्षितिज उद्‌घाटित हो रहेहैं। किंतु इस विकास और समृद्‌धि के साथ-साथ विरोध भी तगड़ा हो रहा है। यह शुभ लक्षण है। भाषा और साहित्य तो विचारों के संघर्ष और विनिमय में ही

---

1 "The science which studies the use of words and their combinations. It comprises a knowledge of employment in the expression of ideas and the principles which regulate their use. It is philosophical when it explains the fact of grammar of different lauguages, comparative when it considers the grammar of different languages, historical when it examines the origin and growth of human speech, and practical when it arranges and systematises the special peculiarities of the language of any particular country".

—The Great Encyclopaedia of Universal knowledge.

पल्लवित होते हैं। हाँ, ध्वंसात्मक संकीर्ण विरोधों से जड़ता और गतिरोध के साथ-साथ व्यंजना की समर्थता भी विलुप्त हो जाती है। जेहाद बोलने वाले तथाकथित प्रेमियों और अप्रेमियों—दोनों के ही समवेत अभियोग हैं—"इस दरिद्र हिंदी साहित्य का व्याकरण अत्यंत क्लिष्ट है।" ऐसे विरोधों के सामान्यतः दो कारण होते हैं—जब कोई भाषा अनिच्छापूर्वक लाद दी जाती है और जब वस्तुतः भाषा में काठिन्य और क्लिष्टता होती है। यह कहना कि हिंदी अनिच्छापूर्वक लादी गई है, अपने वाङ्मय के प्रति रागात्मक मूल्यों एवं सांस्कृतिक चैतन्य का मज़ाक उड़ाना है। जहाँ तक भाषा की कठिनाई और क्लिष्टता का प्रश्न है, हर भाषा के प्रारंभिक प्रेमियों और जिज्ञासुओं को इसका सामना करना ही पड़ता है। उर्दू सीखने वाले मुसलमान बालकों और अँग्रेज़ी सीखने वाले अँग्रेज़ों के बच्चों को भी इस दिशा में कठोर श्रम करना पड़ता है।

लेकिन अगर सचमुच भाषागत प्रयोगों की अस्थिरता और व्याकरण की असाधारण क्लिष्टता है तो उसका निराकरण आवश्यक है। पर कोरी नारेबाज़ी एवं संकीर्णता से प्रसूत विरोधों से घबड़ाकर नहीं। देखना होगा कि यह क्लिष्टता किस कोटि की और किस सीमा तक है? यह भी देखना है कि अब तक इस दिशा में किए गए बहुविध प्रयासों का क्या प्रतिफल सामने आया है?

इसके लिए आवश्यक है कि अब तक के व्याकरण ग्रंथों पर दृष्टि निक्षेप कर लिया जाए। इनकी खूबियों और खामियों से परिचित होकर ही हम व्याकरण के सरलीकरण और नवलेखन को अधिक व्यावहारिक और उपयोगी बना सकते हैं।

तत्वतः यदि हम डा० गिलक्राइस्ट और लल्लूलाल के व्याकरण को छोड़ भी दें तो 19 वीं सदी के अंतिम दशकों में निम्नलिखित प्रमुख ग्रंथ हमारे सामने आते हैं—

ग्रंथका नाम	लेखक	प्रकाशन काल
1. भाषा-तत्त्व-बोधिनी	पं० राजजस	1858 ई०
2. भाषा-चंद्रोदय	पं० श्री लाल	1859 "
3. नवीन चंद्रोदय	बाबू नवीन चंद्रराय	1869 "
4. भाषा-तत्त्व-दीपिका	श्री० हरिगोपाल पाध्ये	1870 "
5. हिंदी-व्याकरण	राजा शिव प्रसाद	1875 "

अब तक के लिखे गए इन व्याकरण-ग्रंथों में राजा शिवप्रसाद का व्याकरण सर्वाधिक उल्लेख्य और विवेच्य है। इसमें अँग्रेजी पद्धति पर व्याकरण के सूत्रों का क्रमबद्ध विवेचन और तुलनात्मक दृष्टि से उर्दू-व्याकरण पर भी विचार किया गया है। बाद के प्रामाणिक और आदर्श व्याकरण-ग्रंथों में प्रमुख हैं महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा का "हिंदी-व्याकरण", पं० रामदहिन मिश्र का "प्रवेशिका हिंदी-व्याकरण" और पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी कृत "हिंदी-कौमुदी"। सामान्यतः कैलाग, ग्रीव्स वीम्स, ट्रम्प आदि पाश्चात्य लेखकों ने भी हिंदी-व्याकरण की कतिपय गहनतम गुत्थियों का स्पष्टीकरण किया है। किंतु व्याकरण-लेखन के इस क्रम में सम्वत् 1977 में श्री कामता प्रसाद गुरू के हिंदी-व्याकरण का प्रकाशन प्रामाणिक अध्ययन एवं व्यापक स्तर पर युक्ति युक्त निरूपण की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व का है। गुरू अपनी भूमिका में लिखते हैं—"इस व्याकरण में अन्यान्य विशेषताओं के साथ-साथ एक बड़ी विशेषता यह भी है कि नियमों के स्पष्टीकरण के लिए उसमें जो उदाहरण दिए गए हैं, वे अधिकतम भिन्न-भिन्न कालों के प्रतिष्ठित और प्रमाणिक लेखकों के ग्रंथों से लिए गए हैं। हिंदी भाषा के लिए वह दिन बड़े गौरव का होगा जब इसका व्याकरण "अष्टाध्यायी" और "महाभाष्य" के मिश्रित रूप में लिखा जाएगा।" वस्तुतः गुरू का प्रस्तुत ग्रंथ एक बड़े अभाव की संपूर्ति ही नहीं, प्राण-तत्व बनकर स्फूर्त हुआ। बाद में इस धरातल पर बाबू श्यामसुंदर दास, किशोरी दास वाजपेयी, डा० धीरेंद्र वर्मा, डा० विश्वनाथ वर्मा, डा० बाबू राम सक्सेना, आचार्य नलिन विलोचन शर्मा, प्रो० रामखेलावन राय, प्रो० अर्जुन सिंह एवं डा० वासुदेव नंदन ने कतिपय नवीन सामग्रियों पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार कर दिशा-निर्देश किया है। "कल्पना" मासिक के कत्यायन एवं "नई धारा" में बेनीपुरी जी ने भी नए परिवेश में कतिपय गुत्थियों का समाधान किया है। नवीनतम भाषा-वैज्ञानिक शोधों से उपलब्ध तथ्यों के आधार पर व्याकरण रचना का कार्य अभी शेष है। सच पूछा जाए तो अब तक के व्याकरण-ग्रंथों की रचना शैली मौलिक न होकर अँग्रेजी व्याकरण से उधार ली हुई है। इसके अतिरिक्त उच्चारण और लिखावट में भिन्नताएँ परसर्ग, क्रिया-रूपों की अनुकूलताएँ और वाक्य गठन की अनियमितताओं की दृष्टि से भी व्याकरण के नवलेखन की समस्या ज्वलंत हो जाती है। हिंदी का लिंग-भेद तो हिंदी-भाषियों और प्रेमियों के लिए भी सर-दर्द बन चुका है, और आए दिन इस पर काफ़ी विवाद भी हो चुके हैं। हम क्रमिक रूप से इन समस्याओं पर विचार करेंगे।

वर्तिनी और ध्वनि

वर्तिनी की अनेकरूपता के कारण कतिपय नई समस्याएँ उत्पन्न हो चुकी हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, साहित्य-सम्मेलन, ज्ञान-मंडल, राष्ट्रभाषा परिषद्, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, हिंदी-भवन, प्रभृति महत्त्वपूर्ण साहित्यिक संस्थानों नें वर्तिनी संबंधी अपने-अपने नियम बनाए हैं। फलतः अलग-अलग प्रतिष्ठानों एवं प्रदेशों से प्रकाशित पुस्तकों में वर्तिनी संबंधी बड़ी विभिन्नताएँ आ गई हैं। एक ही शब्द की भिन्न-भिन्न वर्तिनी से विदेशी और विभाषी दोनों ही झल्ला उठते हैं। लिए-लिये, नई-नयी हुए-हुये-हुवे, अंगुली—अंगुरी-उंगली या ऐसे ही कितने शब्द हैं, जिन पर विचार

करना आवश्यक हो जाता है । शब्दों के स्थिरीकरण और वर्तिनी की एकरूपता पर विचार करते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"मेरा विचार है कि नियम निश्चित करते समय हम थोड़ा-बहुत भाषा-शास्त्री नियमों और व्युत्पत्ति संबंधी तर्कों का आश्रय अवश्य लें, परंतु इन बातों में इतना उलझ जाने की आवश्यकता नहीं है कि ये ही मुख्य हों उठें और वर्तिनी को परिविष्ठित रूप देना गौण ।"

तथ्यत: ध्वनि-वैभिन्य से प्रत्यक्षत: वर्तिनी प्रभावित होती है । गैया-गइया, भैया-भइया, नौआ-नउआ, सोहाग-सुहाग, कांग्रेस-कौंग्रेस, ऑफिस-औफिस इन सारे शब्दों में भिन्नताएँ ध्वनि के कारण हैं। अनुस्वार और चंद्रबिंदु की गड़बड़ी तो और भी विलक्षण हैं—सांस-साँस, पूंछ-पूँछ, इत्यादि । इस क्रम में यह सुझाव सर्वथा व्यावहारिक ही है कि अनुस्वार केवल आनुनासिक स्वरों के लिए और चँद्रबिंदु आनुनासिक व्यंजन के लिए प्रयुक्त हो तो यह अव्यवस्था दूर हो जाएगी । वर्तिनी की एकरूपता के लिए क़, ख़, ग़ जैसी विदेशी ध्वनियाँ और श, ष का बहिष्कार भी सहायक हो सकता है ।

इसी प्रकार वचन, क्रिया, परसर्ग और वाक्य गठन संबंधी भी अनगिन कठिनाइयाँ और भ्रांतियाँ हैं । विस्तृत विवरणी तो इस लघु निबंध में संभव नहीं है, मात्र उदाहरण ही लीजिए—

वचन . . . 1. लड़की—(लड़कियाँ–लड़कियों)
2. दो बीघा—(दो बीघे–दो बिगहों)
3. तारा—(तारों–ताराओं)
4. माला—(मालों–मालाओं)

क्रिया . . 1. रुपया देना चाहिए–रुपया देने चाहिए
2. रुपए देने चाहिए—रुपए देना चाहिए
3. लड़का गाता हुआ जाता है—
लड़का गाते हुए जाता है ।

वाक्य-विन्यास . उसने कहा कि वह दिल्ली जाएगा ।
उसने कहा कि मैं दिल्ली जाऊँगा ।

उपर्युक्त सारी प्रचलित विभिन्नताएँ प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैं ।

लिंग-भेद

सबसे गहन और पेचीदी समस्या है लिंग-भेद की । सामान्यत: हमारे नियम संस्कृत व्याकरण पर ही आधारित हैं । किंतु कभी-कभी हम इस निर्णय में संस्कृत से भी दूर हो जाते हैं । अग्नि, आत्मा, देह, शपथ आदि शब्दों को संस्कृत व्याकरण पुल्लिंग मानता है, हिंदी-व्याकरण स्त्रीलिंग । संस्कृत में तारा, देवता स्त्रीलिंग

में प्रयुक्त हैं। हिंदी में पुल्लिग हैं। संस्कृत में आयु, पुस्तक इत्यादि नपुंसक लिंग है, हिंदी में स्त्रीलिंग में व्यवहृत। इतना निर्विवाद है कि हिंदी ही क्यों, तमाम सुविकसित भारतीय भाषाओं पर संस्कृत के व्याकरण-सिद्धांतों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव है; किंतु संस्कृत में ही लिंग भेद की कठिनाईयाँ असाधारण रूप से चिंत्य हैं। व्यापक धरातल पर कहना चाहिए कि विश्व की प्राय: तमाम समृद्ध भाषाएँ इस जटिलता से बंधी और नियंत्रित होकर ही फल-फूल रही हैं। एक बार डा० राम विलास शर्मा ने 'समालोचना' के संपादकीय में तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए लिखा था कि यूनानी भाषा में भी गैनौस (संस्कृत-जन) नपुंसक लिंग है किंतु दिमौस (जनता) पुल्लिग है। लैटिन भाषा में अग्नि के लिए दो शब्द हैं—इग्नेडियम और इग्निस, पहला नपुंसक दूसरा पुल्लिग हैं। जनता के लिए दो शब्द हैं—गेंस और पीपूलस, पहला स्त्रीलिंग है, दूसरा पुल्लिग। फ्रांसीसी भाषा में घर के लिए दो शब्द हैं—मैंजो और बातीमां, पहला स्त्रीलिंग है, दूसरा पुल्लिग। जर्मन भाषा में स्टाइन (पत्थर) वाउम, (वृक्ष) शू (जूता) जैसे निर्जीव पदार्थ पुल्लिग हैं। फ़ोक़ (जनता) ह्वाइफ़ (नारी), मेंडरवेन (लड़की) आदि सजीव वस्तुएँ नपुंसक लिंग हैं। संस्कृत से भी एक दो उदाहरण लें—शत्रु, पुल्लिग तो मित्र नपुंसक लिंग हैं।

समग्रत: विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध ये कठिनाइयाँ स्पष्ट करती हैं कि लिंग-विभाजन का कार्य-कारण-शृंखला से संबद्ध सुनिश्चित आधार नहीं है। किसी भी स्थिति में इसे सीखना अनिवार्य ही होता है। फिर हिंदी के लिंग-विधान एवं तद्मूलक जटिलता के विरुद्ध ये नारेबाज़ी और असंगत उद्गार क्यों? सामान्य पाठकों की बात छोड़ भी दें तो विद्वानों के द्वारा भी समय-असमय भीषण आरोप लगाए गए हैं। सुप्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डा० हरदेव बाहरी ने अपने निबंध "हिंदी में लिंग-भेद" में तत्संबंधी तीन आक्षेपों की चर्चा की है :—

(क) स्वाभाविक लिंग तीन हैं, परन्तु हिंदी ने नपुंसक लिंग उड़ा दिया और जड़ पदार्थों में भी स्त्रीत्व अथवा पुरुषत्व का आक्षेप कर दिया। सर्वनाम, विशेषण क्रिया और क्रिया विशेषण तक में लिंग-भेद है।

(ख) हिंदी में एक ही चीज़ के विभिन्न शब्दों में और रूप-साम्य में लिंग भेद हैं।

(ग) संज्ञाओं में हिंदी का लिंग-भेद बहुत जटिल है। स्त्री जाति की सजीव वस्तुओं के लिए पुल्लिग का व्यवहार प्राय: सभी भाषाओं में होता है। हिंदी में निर्जीव वस्तुओं में भी स्त्रीत्व में पुरुषत्व का आरोप—यथा लम्बी सड़क[1]।

उपरिकथित आक्षेपों के औचित्य पर यदि विचार न भी किया जाए तो इतना निर्विवाद है कि इस जटिलता को कम करने के लिए ज़ोरदार माँगें प्रस्तुत की गई हैं। मूलत: नपुंसक लिंग के बहिष्कार के कारण जड़ पदार्थों में भी स्त्रीत्व और

[1]हिंदी-अनुशीलन अंक—3

पुरुषत्व का आरोप तो किया गया। किंतु कारक संबंधी बहुत सारी दिक्कतें दूर हो गईं। पुन: सर्वनाम और क्रिया विशेषण तो प्राय: लिंग-भेद से मुक्त ही हैं। क्रिया और विशेषण का जहाँ तक प्रश्न है, बिल्कुल मामूली नियमों से हमारी समस्याएँ हल हो जाती हैं:—

(क) आकारांत विशेषण अथवा क्रिया स्त्रीलिंग में ईकारांत हो जाती है– यथा, अच्छा-अच्छी।

(ख) आकारांत विशेषण के अतिरिक्त सभी विशेषणों के रूप दोनों लिंगों में समान है—जैसे, गोल, सफेद, लाल, इत्यादि। किंतु हमारी समस्याओं के कई-कई रूप और पहलू हैं, जिन पर हमें गंभीरता से विचार करना है। श्री कामता प्रसाद गुरु अपने व्याकरण में लिखते हैं—"हिंदी में लिंग का पूर्ण निर्णय करना कठिन है। इसके लिए व्यापक और पूरे नियम नहीं बन सकते क्योंकि इसके लिए भाषा के निश्चित व्यवहार का आधार नहीं है। बहुधा प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार और अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग रूप के अनुसार निश्चित करते हैं। शेष शब्दों का लिंग केवल व्यवहार के अनुसार माना जाता है और इसके लिए व्याकरण से पूर्ण सहायता नहीं मिल सकती।"

जो भी हो, मोटे तौर पर इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए निम्नांकित सुझावों पर विचार किया जा सकता है :—

(क) लिंग निर्णय के नियमों में अधिकाधिक स्पष्टता की जाए और ऐसे नियम जिनमें अपवादों की संख्या अधिक है, नियम न समझे जाएँ।

(ख) जिन शब्दों का उभय लिंगों में स्थान भेद लिखा और बोला जाता है, उन्हें केवल पुल्लिग मान लिया जाए।

(ग) नवीन अप्राणीवाचक शब्दों के कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों का उनके समानार्थी शब्दों के लिंग के अनुसार और ईकारांत का स्त्रीलिंग में रखकर शेष को पुलिंग में रखा जाए।

(घ) हिंदी व्याकरण में लिंग-परिवर्तन के नियम सरल होते हुए भी कुछ में अनावश्यक परिवर्तन कर दिया गया है—यथा डाक्टर का डाक्टरी। यह ठीक नहीं। इन समस्त शब्दों का अपरिवर्तित रूप उभय लिंगों में प्रयुक्त होना चाहिए; क्रिया और विशेषणों द्वारा उनका लिंग सूचित हो जाएगा।

(च) प्राय: धातुओं, रत्नों, पेड़ों, द्रव पदार्थों, जल और स्थल के नाम बिना अपवाद के पुल्लिग मान लिए जाएँ।

(छ) नदियों, तिथियों, किराने की तमाम चीज़ों और भोजनों के नामों को स्त्रीलिंग में स्थान दिया जाए । उपर्युक्त वर्णित सारी समस्याओं पर दृष्टिनिक्षेप करते हुए डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किया था--

"हम दक्षिण वालों के लिए हिंदुस्तानी या हिंदी दो सबसे बड़े हौवे खड़े कर देती है—वे हैं कर्त्ता के साथ "न" का प्रयोग तथा शब्दों का लिंग भेद । . . . हम दक्षिण वाले जब हिंदी या हिंदुस्तानी सीखने लगें, तब हम लोगों को इस "न" तथा लिंग-भेद के जुल्म से मुक्त ही रखना चाहिए ।"[1]

डॉ० सीतारामय्या का यह प्रस्ताव बेशक विचारणीय तो आज भी है, किंतु सोचना यह भी होगा कि चारों दिशाओं में फैले अहिंदी भाषियों की परस्पर विरोधी सुविधाओं की दृष्टि से अपेक्षित परिवर्तन कितना विकट कर्म हो जाता है । फिर "न" और लिंग भेद के परित्याग से भाषा की प्रकृति ही आहत हो जाएगी । इसी संदर्भ में दूसरा महत्त्वपूर्ण मंतव्य प्रस्तुत किया डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने:—

(क) विभक्ति-साधित बहुवचन रूपों का त्याग ।

(ख) एक वचन के प्रत्ययग्राही रूपों का त्याग—घोड़े—का, की । घोड़ा का ।

(ग) व्याकरणात्मक लिंग—स्त्रीलिंग और उसके साथ विशेष (विशेषणात्मक संबंध) प्रत्यय—"की" का त्याग, यदि साथ का संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग हो—जैसे उसका लाठी, उसका बहन, नया किताब ।

(घ) सभी कालों, पुरुषों एवं वचनों के लिए एक ही रुप का उपयोग—जैसे हम जाता है, हम लोग जाता है, तुम आया था, तुम लोग आया था ।

(च) हमने रोटी खाई, हमने भात खाया की जगह, हम रोटी खाया, हम भात खाया ।[2]

मूलत: डॉ० चाटुर्ज्या के ये प्रस्ताव एक ही साथ कई दिशाओं में सोचने के लिए बाध्य कर देते हैं । क्या इससे रूपगत विकृति नहीं आती ? लिंग संबंधी ऐसे सुझावों की तो उम्मीद भी डाक्टर साहब जैसे गंभीर भाषा तत्त्व-वेत्ता से नहीं की जा सकती थी । दूसरे सुझावों को मान लेने पर भी पेचीदापन कम कहाँ हो पाता है? वस्तुत: सरलीकरण और नवलेखन के प्रश्न पर हमें संतुलित मस्तिष्क से विचार करना है । समस्या यह है कि सरलीकरण किस सीमा तक ग्राह्य है ? क्या इससे भाषा संकुचित अथवा अप्रत्याशित, अस्वाभाविक रूप से विकृत तो नहीं हो जाएगी ? कालक्रम से अथवा अन्य भाषाओं के प्रभाव के कारण भाषा में धीरे-धीरे परिवर्तन तो आते

---

[1] National Language of India, p. 252, Kitabistan, Allahabad.

[2] भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, पृ० 259 ।

ही रहते हैं, किंतु व्यवहारगत सुविधाओं के ख्याल से व्याकरणगत बंधनों को ढीला कर देना, एक प्रकार से रागात्मक चैतन्य की उपेक्षा होगी। डॉ० राम विलास शर्मा ने स्पष्टतः लिखा था कि "हम केवल इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करेंगे कि उर्दू को जन्म देने वाले मुसलमानों को यहाँ का शब्द-भंडार स्वीकार करने में चाहे जो कठिनाई हुई हो, खड़ी-बोली के व्याकरण-रूपों को उन्होंने सप्रेम स्वीकार कर लिया। इन रूपों में लिंग-भेद भी है। ऐसा नहीं हुआ, लिंग-भेद संबंधी भीषण कठिनाई दूर करके बाहर से आने वाले मुसलमानों ने खड़ी बोली को अपनाया हो। उन्होंने यहाँ की व्याकरण परंपरा को जिसे सीखना, शब्दों को ग्रहण करने से ज्यादा कठिन था, स्वीकार कर लिया। . . . यदि बाहर से आने वाले मुसलमान यहाँ के लिंग संबंधी भेद सीख सकते थे, अन्य व्याकरणिक कठिनाइयों के बावजूद भी यहाँ की भाषा ग्रहण कर सकते थे तो शब्द-भंडार की इतनी समानता रहने पर भी बँगाली अथवा अन्य अहिंदी भाषी मित्र उनसे क्यों पार नहीं पा सकते ?" स्पष्ट है कि लिंग संबंधी समस्याओं को दुर्लंघ्य बताकर व्याकरणिक बंधनों को तोड़ा नहीं जा सकता। यों मोटे-तौर पर व्याकरण का नवलेखन एवं सरलीकरण निम्नांकित तीन स्थितियों में अनिवार्य हो जाता है :—

(क) यदि भाषा विकासोन्मुख होकर परिवर्तित हो जाए और व्याकरण के पुराने नियम परिवर्तित भाषा के लिए उपयुक्त न हों।

(ख) यदि वस्तुतः व्याकरण में अनावश्यक रूप से जटिलता, दुरुहता हो और जिसके निष्कासन के बाद भी भाषा की आत्मा खंडित न हो।

(ग) रूपभूत विकृति एवं परंपरा-विच्छेद किए बिना यदि सामान्य परिवर्तन अथवा सरलीकरण से भाषा की सुबोधता लोकप्रियता, एवं विस्तृता हो।

मानना होगा कि उपर्युक्त दृष्टियों से व्याकरण के नवलेखन एवं सरलीकरण के प्रश्न को हम ठुकरा नहीं सकते। सचमुच हमारी समस्या तब गहन हो जाती है, जब राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार-प्रसार एवं विविध साहित्य-लेखन का सवाल सामने आता है। यद्यपि हम डॉ० चाटुर्ज्या के मंतव्य[1] को मानने के लिए तैयार नहीं हैं फिर भी सरलीकरण के प्रश्न पर विचार करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। प्रतिमाणीकरण, स्थिरीकरण, प्रसारण, सुबोधता एवं समसामयिक सांस्कृतिक प्रामाणिक व्याकरण का नवलेखन, राष्ट्रभाषा की सच्ची सेवा है।

---

[1]परंतु यदि वे व्याकरण विषयक विशिष्टताएँ जो बाकी भारतवासियों के लिए वास्तविक कठिनाइयाँ बन रही हैं, कम कर दी जाएँ तो संस्कृतनिष्ठ प्रचलित हिंदुस्तानी एक अत्यंत सहज, सुबोध तथा ओजपूर्ण भाषा बन जाती है। इस सहज बनी हुई हिंदुस्तानी का सारा व्याकरण एक पोस्टकार्ड पर लिखा जा सकता है।

संस्कृत और उसका अध्ययन

हिंदी और मराठी भाषाओं के संज्ञा-रूपों की तुलना

ब्राम्ही की आर्य पुत्री : गुरुमुखी

4—1 CHD/64

संस्कृत और उसका अध्ययन

आनंदस्वरूप गुप्त

संस्कृत सभ्य संसार की प्राचीनतम भाषाओं में सर्वाधिक संपन्न तथा महत्त्वपूर्ण भाषा है। भारत की संस्कृति और सभ्यता का मूलाधार संस्कृत तथा उसके विशाल एवं समृद्ध वाङ्मय में निहित है। आज जब भारत ने शताब्दियों की दासता के उपरांत अपनी खोई हुई आत्मा को पुनः पाकर अपने प्राचीन गौरव को पहचानना आरंभ किया है, संस्कृत का महत्त्व उसके लिए और भी अधिक हो गया है। आज संस्कृत एवं उसके वाङ्मय का अध्ययन हमारे लिए उपेक्षा का विषय न रहकर गंभीर साधना का विषय बन गया है। अतः यहाँ इस महत्त्वपूर्ण विषय पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

'संस्कृत' शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

'संस्कृत' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में 'क्त' (त) प्रत्यय जुड़कर बना है, जिसमें सम्पूर्वक 'कृ' धातु के 'क्' से पूर्व सुट् (स्) का आगम भी हुआ है। पाणिनि (6-1-137) के अनुसार सम्पूर्वक 'कृ' धातु में सुट् का आगम भूषण (अलंकारण) अर्थ में होता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'संस्कृत' शब्द का अर्थ हुआ 'अलंकृत' अर्थात् 'परिष्कृत' या 'परिमार्जित' एवं 'संस्कृत भाषा' का अर्थ हुआ 'परिष्कृत' या 'संस्कार की हुई भाषा'। इस अर्थ में 'संस्कृत' शब्द भाषा का विशेषण है। इस अर्थ को दृष्टि में रखकर ही उन्नीसवीं शती के कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत था कि संस्कृत भाषा एक कृत्रिम भाषा है, जो तत्कालीन प्राकृतों के आधार पर वैयाकरणों द्वारा घड़ी गई, तथा जो कभी भी बोलचाल की भाषा नहीं रही। परंतु परवर्ती काल के कीथ आदि कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने स्वयं ही इस मत का निराकरण कर दिया[1]। वस्तुतः संस्कृत भाषा प्राकृत भाषाओं से घड़कर बनाई हुई नहीं थी, अपितु वहअखिल भारत के शिष्ट वर्ग की स्वाभाविक भाषा थी[2]। अतः 'संस्कृत भाषा' का 'संस्कृत (अर्थात् शिष्ट) जन समाज की भाषा' ऐसा अर्थ करना अधिक समीचीन है। शिष्ट जनसमाज की भाषा का संस्कृत अर्थात परिष्कृत (Polished) होना स्वाभाविक ही है। अस्तु, पहले 'संस्कृत' शब्द आर्यावर्त की शिष्ट भाषा के विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त होता रहा'

---

[1] दे० Keith 'History of Sanskrit Literature.'

[2] दे० वाल्मीकि-रामायण, सु. कां०, 5-18 ; दण्डी-काव्यादर्श 1-3,33 तथा पतंजलि-महाभाष्य 1.1.1.।

है [1]परंतु पाणिनि-काल (लगभग 700 ई० पू०) के पश्चात् वह भाषा 'संस्कृत वाक्' अथवा 'संस्कृत भाषा' न कहाकर केवल 'संस्कृत' नाम से पुकारी जाने लगी।[2] इसके अतिरिक्त वैदिक वाङ्मय में 'संस्कृत' नाम पड़ने का एक और भी कारण है। प्राचीन-काल में देववाणी अव्याकृत अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय के विभाग से रहित थी। आचार्य लोग इसका उपदेश प्रतिपदपाठ द्वारा ही करते थे। महाभाष्य (1,1,1) के वचनानुसार बृहस्पति ने इंद्र को सहस्त्र दिव्य वर्षों तक शब्द शास्त्र का प्रतिपदपाठ द्वारा उपदेश दिया, और तो भी वह समाप्त नहीं हुआ। देवों की प्रार्थना पर इंद्र ने देववाणी के शब्दों को मध्य से विभक्त कर सर्वत्र प्रकृति-प्रत्यय-विभाग किया।[3] इसी प्रकृति-प्रत्यय-विभाग रूप संस्कार के कारण देववाणी 'संस्कृत' कहलाने लगी।[4]

संस्कृत का उद्गम और विकास

आधुनिक भाषा-विज्ञान के अनुसार संस्कृत भारत-यूरोपीय भाषा परिवार की एक अतिप्राचीन भाषा है। इस भाषा परिवार का भौगोलिक क्षेत्र भारत से लेकर यूरोप तक अर्थात् उत्तर भारत, अफ़गानिस्तान, ईरान, तथा लगभग सारा यूरोप है। पहले इस परिवार का नाम आर्य भाषा परिवार था। ईरानी आर्यों का प्राचीनतम ग्रंथ 'अवस्ता' है (जिसकी भाषा ज़ेंद कहाती है), तथा भारतीय आर्यों का प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' है। 'अवस्ता' और 'ऋग्वेद' की भाषा परस्पर बहुत मिलती-जुलती है। भारत-यूरोपीय परिवार की भाषाओं (संस्कृत, ज़ेंद, ग्रीक, लैटिन, कैल्टिक, ट्यूटानिक या जर्मनिक इत्यादि) की मूल भाषा इनसे भी अधिक प्राचीन भाषा मानी जाती है, जिसे 'भारत-यूरोपीय-मूल भाषा' नाम दिया गया है। यह भाषा केवल कल्पना तथा अनुमान का ही विषय है। अस्तु, आधुनिक भाषा-विज्ञान के अनुसार ग्रीक तथा लैटिन इत्यादि के साथ-साथ संस्कृत का उद्गम भी उसी प्राचीन कल्पित भारत-यूरोपीय-मूलभाषा से हुआ है (जो कदाचित् आर्यों के विभाजन से पूर्व मध्य एशिया में बोली जाती थी)।

परंतु भारतीय परंपरा के अनुसार संस्कृत का विकास वेद की भाषा से हुआ, और वेद को अपौरूषेय तथा अनादि माना गया।[5] वेद की भाषा को 'दिव्या वाग्' अथवा 'दैवी वाग्' कहा गया है।[6] वेद की भाषा ही उस काल में शिष्टों की

---

[1] तुलना कीजिए 'वाचं चौदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्' वाल्मीकि-रामायण सु० का० 30,17।

[2] तु० 'संस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः', काव्यादर्श 1,33।

[3] 'वाग्वै पराच्यव्याकृतावादत् ।----तामिन्द्रोऽमध्यतो वक्रम्य व्याकरोत्' तैत्तिरीय संहि० 6,3,7।

[4] दे० युधिष्ठिर मीमांसक कृत 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास'।

[5] तु० 'अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वा प्रवृत्तयः ॥' महाभारत
शांति पर्व 231,56; तथा दे० मनुस्मृति 1,21 भी।

[6] दे० महाभारत, शा०प० 231,56 (पादटिप्पणी 7 में उद्धृत), दण्डी-काव्यादर्श 1,33 (पा०टि० 4 में उद्धृत), तथा ऋग्वेद 8,100-11 (देवीं वाचम-जनयंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदंति)।

व्यावहारिक भाषा थी, और साधारण जनभाषा वेदभाषा (वैदिक संस्कृत) का ही विकृत रूप थी। वैदिक काल की शिष्ट भाषा (अर्थात् वैदिक-संस्कृत) से परवर्ती संस्कृत (अर्थात् लौकिक संस्कृत) का, तथा वैदिक काल की विकृत जनभाषा से प्राकृतों का विकास हुआ। वैदिक काल की इस शिष्टभाषा में वैदिक तथा लौकिक शब्दों का कोई भेद नहीं था, और न अर्थ का ही कोई भेद था।[1] कालांतर में लोकभाषा शब्द और अर्थ दोनों में ही संकुचित हो गई। इस प्रकार वैदिक काल की शिष्ट भाषा (दैवी वाग् अर्थात् वैदिक संस्कृत) ही संकुचित हो कर परवर्ती काल में लौकिक संस्कृत के रूप में परिणत हो गई। इस भाषा के लिए 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग पहले-पहल हमें रामायण (सुंदरकाण्ड 30,17) तथा भरतनाट्य शास्त्र (अ० 18,1,25) में मिलता है।

वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में भेद

निरूक्तकार यास्क के समय (लगभग 900 ई० पू०) तक वैदिक संस्कृत का युग लगभग समाप्त हो चला था। पाणिनि के समय (लगभग 700 ई०पू०) तक तो वेद-भाषा (जिसे पाणिनि ने 'छंदस्' कहा है)[2] तथा लौकिक संस्कृत (जिसे पाणिनि ने 'भाषा' कहा है)[3] में काफ़ी भेद हो गया था। और कात्यायन (लगभग 500 ई०पू०) तथा पतंजलि (लगभग 200 ई०पू०) के समय तक तो यह भेद और भी बढ़ गया था। इसीलिए महाभाष्य के आरंभ में ही पतंजलि को 'अथ शब्दानुशासनम्' वाक्य की व्याख्या में 'केषां शब्दानाम् लौकिकानां वैदिकानां च' इस प्रकार वैदिक तथा लौकिक शब्दों का पृथक्-पृथक् निर्देश करना पड़ा। वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत की कुछ मुख्य विशेषताओं का दिग्दर्शन मात्र यहाँ कराया जाता है। वैदिक-भाषा में सुबंत तथा तिङंत रूपों की जो बहुलता थी[4] वह लौकिक संस्कृत में संकुचित हो गई। वेद में सुबंतों में देवासः देवाः, पूर्वेभिः पूर्वैः, अग्ना अग्नौ, विश्वा विश्वानि इत्यादि दोनों ही प्रकार के रूप होते थे, परंतु लौकिक संस्कृत में केवल देवाः, पूर्वैः, अग्नौ तथा विश्वानि ही रह गए। वेद में क्रिया के उत्तमपुरूष बहुवचन में स्मसि, चरामसि इत्यादि भी होते थे, परंतु लौकिक संस्कृत में स्मः, चरामः इत्यादि ही रह गए। वेद का लेट्लकार लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गया, और वेद में लुङ, लङ् तथा लिट् लकार जहाँ सभी कालों के लिए प्रयुक्त होते थे, वहाँ लौकिक संस्कृत में केवल भूतकाल के अर्थ में ही सीमित हो गए।[5] वेद में उपसर्ग धातु से परे तथा व्यवहित भी प्रयुक्त होते थे,[6] परंतु लौकिक संस्कृत में वे केवल धातु से पूर्व ही जुड़ते हैं। वेद में भाववाचक 'तुमुन्' (Infinitive) के अर्थ में असे (जीव सें), तवै (पतावै),

---

[1] तु० 'य एव लौकिकास्त एव वैदिकास्त एव चतेषामर्थोः' मीमांसा 1,3,30 पर शाबरभाष्य।

[2] पा० 1,2,36 इत्यादि।

[3] पा० 3,3,108 इत्यदि।

[4] दे०पा० 1-4-9 पर सिद्धांत कौमुदी। दे०पा० 3,1,85 तथा पा० 7,1,26 भी।

[5] पा० 3,4,6,7,।

[6] पा० 1,4,81,82, दे०ऋग्वेद 1,1,7 भी।

तथा ध्यै (गमध्यै) इत्यादि प्रत्यय भी प्रयुक्त होते थे,[1] परंतु लौकिक संस्कृत में इस अर्थ में केवल 'तुमुन्' प्रत्यय ही रह गया (जैसे जीवितुम्, पातुम्, गंतुम् इत्यादि)। दर्शत (सुंदर), रपस् (रोग), अक्तु (रात्रि) इत्यादि अनेक वैदिक शब्द पिछली संस्कृत में नहीं मिलते । अनेक वैदिक शब्दों का अर्थ लौकिक संस्कृत में भिन्न अथवा संकुचित हो गया । वेद में 'वध' शब्द बल और वज्र के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है,[2] किंतु लौकिक संस्कृत में उसका अर्थ केवल 'हत्या' रह गया । इसी प्रकार 'धी' शब्द वेद में 'कर्म' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है ।[3] किंतु लौकिक संस्कृत में उसका अर्थ केवल 'वुद्धि', ही रह गया । वेद में 'न' उपमावाचक भी है,[4] किंतु लोक में इसका अर्थ केवल 'नहीं' रह गया ।

वैदिक संस्कृत का उच्चारण भी लौकिक संस्कृत में कुछ बदल गया । 'ऋ' वर्ण वेद में शुद्ध स्वर (Vowel) है, इसीलिए पालि तथा प्राकृत में इसको अ (घृत-घत, गृह-गह), इ (ऋषि-इसि, मृग-मिग), तथा उ (ऋतु-उतु, वृद्ध-वुड्ढ, हिंदी बुड्ढा तथा बूढ़ा) हो जाता है। परंतु आजकल की संस्कृत में 'ऋ' का उच्चारण 'रि' (व्यंजन) के समान होता है। वेद का गीतात्मक स्वराघात (Pitch accent) भी पिछली संस्कृत में नहीं रहा ।[5] वेद में स्वर-भेद से अर्थ भेद हो जाता था; जैसे 'क्षय' शब्द आद्युदात्त (क्षयेः) होने पर 'निवास' अथवा 'गृह' का वाचक होता था, अन्यत्र इसका अर्थ 'नाश' था ।[6] इसी प्रकार 'गर' शब्द अंतोदात्त (गुरः) होने पर 'विष' का वाचक था, अन्यत्र इसका अर्थ 'निगरण' था । परंतु लौकिक संस्कृत में यह स्वर प्रक्रिया लुप्त हो गई । हाँ, संस्कृत श्लोकों के पढ़ने में शब्द के उपांत्य दीर्घ स्वर बलात्मक स्वराघात (Stress accent) अब भी रहता है ।

संस्कृत के विकास में पाणिनि का महत्त्व[7]

ईसा से लगभग 700 ई०पू० पाणिनि ने तत्कालीन शिष्ट भाषा 'संस्कृत' (जो उस समय बोलचाल तथा वाङ्मय दोनों में ही प्रयुक्त हो रही थी) के वृहत् शब्द भंडार तथा प्रयोगों की सूक्ष्म दृष्टि से जाँच-पड़ताल की । उन्होंने देखा कि भाषा में कुछ शब्द तो व्युत्पन्न हैं (अर्थात् धातु-प्रत्यय के संयोग से बनते हैं), इनके लिए उन्होंने सामान्य तथा विशेष नियम बनाए । कुछ शब्द ऐसे भी थे जो अव्युत्पन्न थे, और जिनमें धातु-प्रत्यय-योग के नियम लागू नहीं हो सकते थे, ये शब्द प्रायः संज्ञा शब्द (Proper nouns) थे । इनको यौगिक न मानकर रूढ़ ही माना गया । अतः पाणिनि ने ऐसे शब्दों के लिए लोक को ही प्रमाण मानकर उन्हें उसी रूप में स्वीकार

---

[1] पा० 3.4.9 ।

[2] वैदिक निघण्टु 2.9.20 ।

[3] वही 2.1 ।

[4] तु. 'आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते' (ऋग्वेद 8.45.20) इत्यादि।

[5] यद्यपि पाणिनि ने लौकिक शब्दों में भी उदात्तादि स्वर का विधान किया है, परंतु लौकिक संस्कृत के वाङ्मय में इस स्वरप्रक्रिया का उपयोग नहीं किया गया ।

[6] पा. 6.1.201, तथा काशिका ।

[7] इस अंश की सामग्री का मुख्य आधार डा० वासुदेवशरण कृत 'पाणिनि और उनका शास्त्र' है ।

किया।[1] इनके अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे भी थे, जिनमें व्याकरण के लोप, आगम, वर्ण विकार आदि के नियम घटित नहीं हो सके थे। ऐसे शब्दों के शिष्ट प्रयुक्त होने के कारण पाणिनि ने उन्हें भी यथोपदिष्ट रूप में ही साधु (अर्थात् व्याकरणसम्मत) मान लिया।[2] इस प्रकार पाणिनि ने धातुओं से शब्द व्युत्पत्ति की पद्धति को स्वीकार करके शब्दशास्त्र में अभूतपूर्व क्रांति को जन्म दिया। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने लोक में प्रयुक्त लगभग सभी धातुओं का अपने धातुपाठ में संग्रह किया। पाणिनि के धातु-पाठ में लगभग 2,000 (सही संख्या 1,969) धातुएँ संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त अनेक धातुएँ सूत्रों मेंपठित हैं। इतना बड़ा धातु भांडार संसार की अन्य किसी भाषा में कदाचित् ही हो। इस विशाल धातु भंडार से अपरिमित शब्द राशि प्रस्तुत की जा सकती है। पाणिनि के समय में संस्कृत वाङ्मय में तथा लोक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शब्दों का वृहत् भंडार भरा हुआ था। इनमें से अर्थ और रचना की दृष्टि से विशेषता रखनेवाले प्रायः सभी शब्दों का संग्रह पाणिनि ने अपने सूत्रपाठ तथा गण-पाठ में किया है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान गोल्डस्टूकर महाशय के मतानुसार पाणिनि के व्याकरण शास्त्र में संस्कृत भाषा का स्वाभाविक विकास उपस्थित है। "विश्व की कितनी ही प्राचीन भाषाएँ-नियमित व्याकरण के अभाव में दुरुह बन गई, परंतु संस्कृत भाषा के गद्य और पद्य दोनों ही एक समान पाणिनि-शास्त्र से नियमित होने के कारण सब काल में सुबोध बने रहे। पाणिनि के कारण ही मानों यह भाषा कालग्रस्त नहीं हो सकी।"

पाणिनि-काल के पश्चात् संस्कृत के विकास की अवस्था

शिष्ट समाज की बोलचाल की भाषा होने के कारण पाणिनि-काल के पश्चात् भी संस्कृत में अनेक नए शब्दों और प्रयोगों का विकास होता रहा। प्राकृत और द्रविड़ भाषा के भी अनेक शब्द तथा प्रयोग संस्कृत में मिल गए[3]। अतः कात्यायन (लगभग 500 ई०पू०) ने इन नए शब्दों और प्रयोगों की सिद्धि के लिए पाणिनि सूत्रों पर वार्तिक बनाकर उन शब्दों तथा प्रयोगों को भी प्रामाणिकता प्रदान की। परंतु मंदाकिनी के समान देव-वाणी का भी प्रवाह मंद नहीं पड़ा, प्रत्युत वह निरंतर विकासों-मुख बनी रही। अतः पतंजलि (लगभग 200 ई०पू०) ने अपने महाभाष्य में पाणिनि के सूत्रों तथा कात्यायन के वार्तिकों पर नई शैली से विचार-विमर्श किया। पतंजलि का महाभाष्य शब्द शास्त्र का एक विलक्षण ग्रंथ है। उन्होंने प्रांजल और सुबोध शैली में व्याकरण शास्त्र के सिद्धांतों पर मौलिक ढंग से विचार किया। पतंजलि के समय में ही देश में यवनों और शकों के आक्रमण होने लगे थे, जिनसे यहाँ की राज्य-व्यवस्था तथा समाजव्यवस्था को बहुत आघात पहुँचा। अतः उसके पश्चात् संस्कृत भाषा का विकास भी अवरूद्ध हो गया, और गुप्त तथा वर्धनकाल में संस्कृत प्रधानतः राजभाषा और धर्मभाषा ही रह गई। हाँ, इस युग में संस्कृत वाङ्मय के सभी अंगों की खूब श्रीवृद्धि हुई। इसके पश्चात् तो राजपूतों के वृहयुद्धों तथा मुसलमानों के आक्रमणों ने भारतीय समाज को जर्जरित कर दिया। और भारतीय समाज के ह्रास

---

[1] दे०पा० 1.2.53 ('तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्'), तथा इस पर काशिका।

[2] दे०पा० 6.3.109।

[3] दे०डा० मंगलदेव शास्त्री कृत 'तुलनात्मक भाषा शास्त्र', तथा 'उत्तरराम चरित' पर घनश्याम की टीका।

के साथ-साथ संस्कृत का भी ह्रास होने लगा, परंतु इस ह्रास काल में भी संस्कृत के अनेक उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना हुई है।

संस्कृत का प्रयोग-क्षेत्र

पतंजलि के समय तक भी संस्कृत समूचे भारत की राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक भाषा थी, इसका अपना विशाल तथा बहुमुखी वाङ्मय था और बोलचाल में भी यही भाषा शिष्ट सम्मत थी। भौगोलिक दृष्टि से संस्कृत के प्रयोग का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। यास्क के समय में संस्कृत उत्तर में कंबोज (मध्य एशिया में पामीर पर्वत के निकट के प्रदेश) से लेकर दक्षिण में अश्मक (गोदावरी प्रदेश) तक, तथा पश्चिम में कच्छ से लेकर पूर्व में कलिंग तक सूरमस (आसाम की सूरमस नदी के प्रदेश) तक बोली जाती थी।[1] पाणिनि के समय तक भी संस्कृत का यह प्रयोग-क्षेत्र इतना ही विस्तृत था। पाणिनि ने अपने धातुपाठ में गत्यर्थक 'शव्' धातु को भी दिया है, और यास्क तथा पतंजलि के अनुसार गत्यर्थक 'शव्' धातु कंबोज में ही प्रमुख होती थी, किंतु आर्य इसको विकार अर्थात् मृतशरीर के अर्थ में ही प्रयुक्त करते थे। पाणिनि ने अपने समय के भारत के प्राच्य तथा उदीच्य दोनों भागों की भाषा को शिष्ट तथा व्याकरण सम्मत माना है। भारत का उदीच्य प्रदेश शरावती नदी के पश्चिमोत्तर गंधार तक फैला हुआ था, और प्राच्य देश उस नदी के दक्षिण पूर्व में कलिंग तथा वंग तक फैला हुआ था। पतंजलि के समय तक शकों और यवनों की विजयों के कारण आर्यावर्त की सीमा संकुचित हो गई थी।[3] परंतु उस समय भी दक्षिण में संस्कृत का प्रचार था।[4] दक्षिण भारत के अनेक प्राचीन शिलालेख संस्कृत में लिखे मिले हैं। संस्कृत की पहुँच सीलोन, बोर्नियो, फिलीपाइंस इत्यादि द्वीपों में भी हुई, और जावा द्वीप की कविभाषा तथा उसके वाङ्मय पर संस्कृत की गहरी छाप है। चंपा तथा कंबोडिया में संस्कृत में लिखे हुए प्राचीन शिला-लेख प्राप्त हुए हैं। संस्कृत के बहुत से ग्रंथ तिब्बत, चीन तथा जापान में भी पहुँचे।[5] पश्चिमी ईरान तथा टर्की में कुछ प्राचीन आर्य देवताओं (मित्र, वरुण, इंद्र, नासत्य) के नाम एक प्राचीन लेख में मिलें हैं।[6]

संस्कृत का वाङ्मय

संस्कृत-वाङ्मय की लोकपावनी धारा ऋग्वेद के समय से लेकर आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप से (कभी विस्तृत तथा कभी संकुचित होती हुई) प्रवाहित होती रही है। देश के सभी विद्वान् इसी भाषा में सोचते तथा लिखते थे। इसका वाङ्मय अत्यंत विशाल तथा व्यापक है। इतिहास, पुराण, दर्शन, विज्ञान, धर्मशास्त्र, शब्दशास्त्र,

---

[1] दे० डा० वासुदेवशरण कृत 'पाणिनि और उनका शास्त्र'।

[2] 'शवतिर्गतिकर्मा कंवोजेष्वेव भाष्यते' निरूक्त 2.2; तथा 'शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति, विकार एनमार्या भाषते शव इति' महाभाष्य 1.1.1।

[3] दे० पा० 2.4.10 पर महाभाष्य।

[4] 'प्रियतद्धिता हि दाक्षिणात्याः' महाभाष्य 1.1.1।

[5] दे० Keith—'History of Sanskrit Literature'.

[6] दे० धीरेंद्र वर्मा–'हिंदी भाषा का इतिहास'।

साहित्यशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति, अर्थनीति इत्यादि के वाङ्मय की सृष्टि के लिए संस्कृत ही उपयुक्त माध्यम समझी जाती थी, प्राकृत तथा देशभाषाएँ तो प्राय: कथा तथा काव्य में ही प्रयुक्त होती थीं; और काव्य तथा साहित्य की अमर रचनाएँ भी संस्कृत में ही हुई हैं। जैन तथा महायान बौद्ध आचार्यों और विद्वानों ने भी अपने गंभीर धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए मागधी और पालि के स्थान में संस्कृत को ही अपनाना उचित समझा, क्योंकि देश की जनता के हृदय में संस्कृत का गौरव प्रतिष्ठित था। संक्षेपत: भारत का प्राय: संपूर्ण गंभीर तथा उच्च आर्य-साहित्य संस्कृत में सुरक्षित है, क्योंकि सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा गहन से गहन विचारों को संक्षिप्त शैली में प्रकट करने की क्षमता संस्कृत में है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा संस्कृत का अध्ययन

सत्रहवीं शताब्दी में कुछ यूरोपीय प्रचारकों ने संस्कृत सीखी, और 1651 ई० में अब्राहम रोजर (Abraham Roger) ने भर्तृहरि शतक का डच भाषा में अनुवाद किया। परंतु संस्कृत के महत्त्व का अनुभव करने वाला पहला व्यक्ति वारेन हेस्टिंग्ज था, जिसकी प्रेरणा से चार्लस विल्किंस ने संस्कृत पढ़ 1785 ई० में भगवद्गीता का, तथा 1787 ई० में हितोपदेश का अँग्रेज़ी में अनुवाद किया। इसके अनंतर संस्कृत के विद्वान् सर विलियम जोन्स ने 1789 ई० में शकुंतला नाटक का अँग्रेज़ी में अनुवाद किया, जिसको पढ़कर प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे (Goethe) ने उस नाटक की बहुत अधिक प्रशंसा की। हेनरी टामस कोलब्रूक (H. T. Colebrooke) ने संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग प्रारंभ किया, इन्होंने अनेक संस्कृत ग्रंथों का मूलपाठ तथा अनुवाद प्रकाशित किया और अनेक निबंध भी लिखे। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान फ्रेडरिक श्लैगल (Schlegel) ने संस्कृत का अध्ययन करके 1808 ई० में अपना महत्त्वपूर्ण ग्रंथ (On the Language and Wisdom of the Indians) प्रकाशित किया, जिसने पश्चिम में भाषा विज्ञान की नींव डाली। इसी प्रसंग में फ्रांसिस बाप (F. Bopp) का नाम भी स्मरणीय है जिसने 1816 ई० में संस्कृत के संधि प्रकरण की ग्रीक, लैटिन, जर्मन इत्यादि भाषाओं के संधि प्रकरण से तुलना करते हुए एक ग्रंथ लिखा। अनेक जर्मन विद्वानों ने वैदिक वाङ्मय का अध्ययन भी आरंभ कर दिया। 1846 ई० में राथ (R. Roth) का वैदिक साहित्य और इतिहास के विषय में एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुआ। मैक्स मूलर (Max Muller) ने भी वैदिक वाङ्मय तथा धर्म का अध्ययन किया, जिससे तुलनात्मक पुराण-विज्ञान (Mythology) की नींव पड़ी। इनके अतिरिक्त बूहलर, कीलहार्न, ग्रिप, ग्रैसमैन, जैसपरसन, वेवर इत्यादि अन्य जर्मन विद्वानों ने भी संस्कृत भारती की श्रीवृद्धि की।[1] और अब तो विश्व की प्राय: सभी प्रसिद्ध यूनिवर्सिटियों में संस्कृत के अध्ययन का समुचित प्रबंध है। अमरीका, यूरोप तथा एशिया में संस्कृत साहित्य, वेद, पुराण, दर्शन आदि के अनेक विख्यात संस्कृत विद्वान हैं, जिनका परिचय इस लघु निबंध में देना संभव नहीं है।

संस्कृत के अध्ययन का महत्त्व

भारत की प्राचीन संस्कृति तथा विचार-धारा के इतिहास तथा विकास क्रम को

---

[1] V. Varadachari—'A History of the Sanskrit Literature'. तथा हंसराज अग्रवाल लिखित 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' के आधार पर।

समझने के लिए संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य है। भारत की प्राचीन राज्य-व्यवस्था तथा समाज व्यवस्था के ज्ञान में संस्कृत के अध्ययन की उपयोगिता है। ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर आठवीं शताब्दी तक के शिलालेख, सिक्के, शासनपत्र इत्यादि के रूप में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री संस्कृत में ही सुरक्षित है। संस्कृत के शब्दों में भारतीय जीवन-दर्शन की जो झाँकी प्राप्त होती है, वह उन शब्दों के अन्य भाषाओं के अनुवाद में नहीं मिल सकती, क्योंकि किसी भी जाति का सांस्कृतिक इतिहास उसकी भाषा के साथ जुड़ा रहता है। ब्रह्मचर्य, आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, संसार, यज्ञ इत्यादि शब्दों में भारत की जो दार्शनिक विचार-धारा निहित है, अनुकूल, अभ्यास, गवेषणा, आचार्य, अंतेवासी इत्यादि शब्दों से भारतीय जनता की जो सभ्यता लक्षित होती है वह इन शब्दों के अनुवाद से कैसे बोधगम्य हो सकती है। वैदिक-काल से लेकर अब तक भी हम भारतीयों के जीवन में संस्कृत का प्रभाव अक्षुण्ण बना हुआ है। जन्म से लेकर मरणपर्यंत अब तक भी हमारे सभी धार्मिक कृत्य संस्कृत भाषा तथा उसमें लिखे हुए धर्मग्रंथों द्वारा ही निष्पन्न होते हैं, और इस प्रकार से हमारा संबंध अतिप्राचीन काल के भारतीय समाज के साथ जुड़ा रहता है। अनेक राजनैतिक तथा सामाजिक विप्लवों के होते रहने पर भी संस्कृत भाषा तथा वाङ्मय के द्वारा हमारी सांस्कृतिक एकता पूर्ववत् बनी है। वेद, उपनिषद्, गीता आदि ग्रंथों ने विश्वभर के असंख्य जिज्ञासुओं को ज्ञानामृत का पान कराकर शांतिपद पर आसीन कराया है, वे भारत की ही नहीं विश्वभर की संपत्ति हैं। भारत की सारी भौतिक विलास की सामग्री नष्ट हो जाए, परंतु यदि भारत के पास उसकी यह अमूल्य निधि बनी रहे, यदि इन अमूल्य रत्नों का प्रकाश हमारे जीवनपथ को सदैव आलोकित करता रहे, तो हम दरिद्र होकर भी धनी बने रहेंगे। इन ग्रंथों का रसास्वादन करने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। पश्चिम में संस्कृत के अध्ययन ने भाषा-विज्ञान (Philology) तथा तुलनात्मक पुराण-विज्ञान जैसे महत्त्वपूर्ण विज्ञानों को जन्म दिया है। अब स्वतंत्र भारत में हिंदी राष्ट्र-भाषा हो गई है, परोक्ष रूप से भारत की सारी आर्य भाषाओं का स्रोत संस्कृत ही है। हिंदी में प्रायः संस्कृत के तत्सम शब्दों का ही प्रयोग अधिक होता है। इन तत्सम शब्दों के सही ज्ञान के लिए संस्कृत व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। वचन तथा बचन में, अथवा वाहन तथा बाहन में कौन सा शब्द शुद्ध है और कौन सा अशुद्ध इस बात का ज्ञान संस्कृत व्याकरण के नियमों द्वारा व्युत्पत्ति जान लेने पर ही संभव है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'व्' का तम्प्रसारण 'उ' होता है 'ब्' का नहीं; अतः 'वचन' और 'उक्ति' दोनों की मूलधातु 'वच' होने से वचन शब्द ही शुद्ध है, बचन नहीं। इसी प्रकार 'वाहन' और 'ऊढ' 'प्रौढ' इत्यादि शब्द 'वह' धातु से ही व्युत्पन्न होने से 'वाहन' शब्द ही शुद्ध है। 'वृत्ति' (√वृ—क्तिन्), तथा 'वृत्ति' (√वृत्—क्तिन्) में अर्थ भेद क्यों होता है, 'पृथक' में 'पृ' तथा 'प्रथम' में 'प्र' क्यों है, 'व्रज' और 'वृज' में 'वृज' क्यों अशुद्ध है इत्यादि बातों का ज्ञान बिना संस्कृत का अध्ययन किए हुए कैसे संभव है? अतः राष्ट्र भाषा के सही ज्ञान के लिए भी संस्कृत का अध्ययन किए हुए कैसे संभव है? अतः राष्ट्र भाषा के सही ज्ञान के लिए भी संस्कृत का अध्ययन आवश्यक है। राष्ट्र भाषा का भंडार हमें उपयुक्त पारिभाषिक तथा वैज्ञानिक शब्दावली से भरना है, यह शब्दावली संस्कृत के समृद्ध धातुभंडार से निष्पन्न हो सकती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारत के जिस व्यक्ति में संस्कृत ज्ञान की जितनी कमी है, उतने ही अंश में उसमें भारतीय संस्कृति के ज्ञान की भी कमी है। संस्कृत का अध्ययन हमारे

सामने ज्ञान का अमूल्य भंडार खोल देता है। मैक्समूलर के शब्दों में 'वही संस्कृत, जिसका अध्ययन आरंभ में तुम्हें इतना कठिन तथा इतना निरर्थक प्रतीत हो सकता है, यदि तुम केवल उस अध्ययन को निभालो, तो वह तुम्हारे सामने वाङ्मय (Literature) का वह वृहत् भंडार खोल देगी, जो अभी तक प्रायः अज्ञात तथा अनधिगत पड़ा हुआ है और तुम्हें विचार के उस गहन स्तर में अंतर्दृष्टि प्रदान करेगी, जो तुम्हारे अभी तक के सभी विचारों से अधिक गहन तथा सूक्ष्म है, और जो उन शिक्षाओं से परिपूर्ण है जो मानव हृदय की गहरी से गहरी भावनाओं को स्पष्ट करती है।[1]

व्याकरण शास्त्र का जितना विलक्षण तथा परिपूर्ण विकास संस्कृत में हुआ, उतना विश्व की अन्य किसी भी भाषा में मिलना कठिन है। केवल संस्कृत में ही व्याकरण का एक अलग शास्त्र के रूप में विकास हुआ है। मैक्डोनल् के शब्दों में 'भारत के संस्कृत वैयाकरणों ने ही पहले-पहल शब्दों का विश्लेषण किया, धातु-प्रत्यय के भेद को समझा, प्रत्ययों के कार्य का निश्चय किया, और एक ऐसे विशुद्ध, सूक्ष्म तथा पूर्ण व्याकरण-शास्त्र का आविष्कार किया, जिसकी समता विश्व के किसी अन्य देश में मिलनी असंभव है।[2] व्याकरण की दृष्टि से पश्चिम की केवल ग्रीक भाषा ही संस्कृत की कुछ-कुछ समता कर सकती है। फिर भी पश्चिम में उन्नीसवीं शती में भाषा-विज्ञान का जो जन्म हुआ है, उसका श्रेय: केवल संस्कृत को ही है। संस्कृत में तो यास्क के समय में ही इस विज्ञान की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी।'

संस्कृत भाषा के व्यावहारिक ज्ञान के लिए तो बहुत ही थोड़े व्याकरण-ज्ञान की की अपेक्षा है, शास्त्र के रूप में संस्कृत-व्याकरण का अध्ययन दूसरी बात है। इस भेद को न समझकर ही लोग प्रायः संस्कृत पढ़ने से घबराते हैं। पर तुलनात्मक तथा वैज्ञानिक पद्धति से तो संस्कृत का अध्ययन अत्यंत ही सुगम हो जाता है। संस्कृत व्याकरण का थोड़ा-सा काम चलाऊ ज्ञान प्राप्त कर लेने पर ही संस्कृत-भारती के दिव्य मंदिर में प्रवेश हो जाता है, और फिर तो साधक स्वयं ही संस्कृत-सरस्वती का भक्त बन जाता है, जिसके प्रसाद से उसके सामने अपने पूर्वजों की संचित अतुल ज्ञान-राशि का भंडार खुल जाता है। क्या ही अच्छा हो यदि प्रत्येक भारतीय 'आत्मकथा' में दिए हुए महात्मा गांधी के निम्नलिखित वचन से उचित प्रेरणा प्राप्त कर सके :—

'जितनी संस्कृत मैंने उस समय पढ़ी थी, यदि उतनी भी न पढ़ा होता, तो आज मैं संस्कृत शास्त्रों का जो आनंद ले रहा हूँ, वह न ले पाता। बल्कि मुझे तो इस बात का पश्चाताप रहता है कि मैं अधिक संस्कृत न पढ़ सका। क्योंकि आगे चलकर मैंने समझा कि किसी भी हिंदू बालक को संस्कृत का अच्छा अध्ययन किए बिना न रहना चाहिए।'

श्री जवाहरलाल नेहरू के शब्द में 'यदि मुझ से पूछा जाए कि सबसे बड़ी निधि जो कि भारत के पास है और जो उसका सर्वश्रेष्ठ उत्तराधिकार है, कौन सी है तो मैं निशंक उत्तर दूँगा कि वह है संस्कृत भाषा और उसका साहित्य और जो कुछ उस साहित्य में है। यह हमारा गौरवपूर्ण उत्तराधिकार है, और जब तक यह विद्यमान है और राष्ट्र के जीवन को प्रभावित कर रहा है, तब तक भारत की मौलिक प्रतिमा भी बनी रहेगी।

---

[1] Max Muller—'What can India teach us', pp. 13—14.

[2] A. A. Macdonell,—'India's Past'—p. 136.

हिंदी और मराठी भाषाओं के संज्ञा-रूपों की तुलना

अंबाप्रसाद 'सुमन'

(1) हिंदी-भाषा के व्याकरण के अनुसार स्थान, समय, वस्तु, प्राणी, गुण, दशा, व्यापार, आदि के नाम को 'संज्ञा' कहते हैं। किंतु मराठी-भाषा के व्याकरण में 'संज्ञा' के लिए 'नाम' शब्द का ही प्रयोग होता है।

(2) हिंदी-भाषा के संज्ञा शब्द दो लिंगों में विभक्त हैं—(i) पूलिंग, (ii) स्त्री-लिंग। किंतु मराठी के नाम शब्द तीन लिंगों में विभक्त हैं—(i) पुलिंग, (ii) स्त्री-लिंग, तथा (iii) नपुंसक लिंग। लिंग के क्षेत्र में मराठी संस्कृत भाषा की भाँति तीन लिंग रखती है। यही बात गुजराती भाषा में भी पाई जाती है।

(3) हिंदी में हम लिंग-ज्ञान शब्द के रूप से भी करते हैं और अर्थ से भी। परंतु फिर भी पुलिंग और स्त्रीलिंग शब्दों के लिंग-निर्णय का कोई निश्चित एवं सीधा सिद्धांत अब तक मिला नहीं है। हिंदी में 'पानी' शब्दपुलिंग है तो 'मिट्टी' स्त्रीलिंग है। किंतु मराठी में 'पाणी' (पानी) नपुंसक लिंग है। मराठी भाषा में निर्जीव वस्तुएँ पुलिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग तीनों में पाई जाती हैं। 'कागद' मराठी में पुलिंग है; माळ (माला) स्त्रीलिंग है और 'वीट' (ईंट) भी स्त्रीलिंग है। किंतु 'घर' और पान (पत्ता) नपुंसकलिंग हैं। मराठी में शब्द-रूप के परिवर्तन से भी लिंग-परिवर्तन हो जाता है। मराठी में ईकाराँत 'मोती' पुलिंग है और अनुनासिक ईकाराँत 'मोतीं' नपुंसक लिंग है। इसी प्रकार गुरू (ढोर, पशु), गुरें (बहुत से पशु), बासरूं (एक बछड़ा) और बासरें (बहुत बछड़े) शब्द नपुसंक लिंग में पाए जाते हैं। इसी प्रकार केळें (एक केला) और केळी (बहुत केले) शब्द भी नपुसंक लिंग हैं।

(4) जब हिंदी भाषा में नपुसंक लिंग होता ही नहीं तो मराठी से उसकी तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता। केवल पुंलिंग और स्त्रीलिंग संज्ञा रूपों की तुलना प्रस्तुत की जा सकती है। वचन तो दोनों भाषाओं में दो-दो ही पाए जाते हैं अर्थात् (i) एक वचन, (ii) बहु वचन।

(5) हिंदी भाषा में ऋजु अवस्था के आकारांत पुलिंग शब्द बहु वचन में एकारांत हो जाते हैं, किंतु 'मामा', 'नाना' आदि नाता-रिस्ता प्रकट करने वाले शब्दों में उक्त नियम लागू नहीं होता। 'राजा' आदि तत्सम शब्द भी बहुवचन में अक्षुण्ण रहते हैं।

आकारांत संज्ञा-शब्द (ऋजु अवस्था) हिंदी में :—

एक वचन	बहुवचन
(1) लड़का=लड़क्+ [1]आ	(1) लड़के=लड़क्+ए
(2) बकरा=बकर्+ आ	(2) बकरे=बकर्+ए
(3) पैसा =पैस्+ आ	(3) पैसे =पैस्+ए
(4) मामा =माम्+ आ	(4) मामा=माम्+आ

(6) मराठी भाषा में भी ऋजु अवस्था के आकारांत पुलिंग संज्ञा-शब्द बहु वचन में एकारांत हो जाते हैं, किंतु नाता-रिश्ता प्रकट करने वाले संज्ञा-शब्द परिवर्तित नहीं होते। सारांश यह कि यहाँ हिंदी और मराठी एक मार्ग पर हैं।

आकारांत संज्ञा-शब्द (ऋजु अवस्था) मराठी में :—

एकवचन	बहुवचन
(1) मुलगा (लड़का)=मुलग्+आ	(1) मुलगे=मुलग्+ए
(2) बकरा=बकर्+आ	(2) बकरे=बकर्+ए
(3) पैसा=पैस्+आ	(3) पैसे=पैस्+ए
(4) मामा=माम्+आ	(4) मामा=माम्+आ

(7) अन्य स्वरांत पुलिंग संज्ञाएँ ऋजु अवस्था के एक वचन तथा बहु वचन में समान ही रहती हैं अर्थात् हिंदी तथा मराठी में उनके रूप भी समान पाए जाते हैं।

अन्य स्वरांत संज्ञा-शब्द (ऋजु अवस्था) हिंदी में :—

एकवचन		अंत स्वर	बहुवचन		अंत स्वर
(1) वृक्ष	(पुं०)	—अ	(1) वृक्ष	(पुं०)	—अ
(2) कवि	,,	—इ	(2) कवि	,,	—इ
(3) सिपाही	,,	—ई	(3) सिपाही	,,	—ई
(4) साधु	,,	—उ	(4) साधु	,,	—उ

[1] हिंदी भाषा में 'लड़क्' मूल प्रातिपदिक और 'लड़का' या 'लड़की' व्युत्पन्न प्रतिपादिक है। 'लड़का' का अंतिम —आ, और 'लड़की' की अंतिम —ई व्युत्पादक प्रत्यय हैं। 'लड़के' की —ए और 'लड़कियाँ' की —इयाँ विभक्ति प्रत्यय हैं।

(5) विच्छू	पुं	—ऊ	(5) विच्छू	पुं	—ऊ
(6) पाँडे	,,	—ए	(6) पाँडे	,,	—ए
(7) जौ	,,	—औ	(7) जौ	,,	—औ

अन्य स्वरांत संज्ञा-शब्द (ऋजु अवस्था) मराठी में :—

एकवचन		अंत स्वर	बहुवचन		अंत स्वर
(1) वृक्ष	(पुं०)	—अ	(1) वृक्ष	(पुं०)	—अ
(2) कवि	,,	—इ	(2) कवि	,,	—इ
(3) सिपाही	,,	—ई	(3) सिपाही	,,	—ई
(4) साधु	,,	—उ	(4) साधु	,,	—उ
(5) विंचू	,,	—ऊ	(5) विंचू	,,	—ऊ
(6) फोटो	,,	—ओ	(6) फोटो	,,	—ओ

उपर्युक्त संज्ञा-पदों में शून्य प्रत्यय मानी जा सकती है।

(8) अब हिंदी और मराठी के तिर्यक् अवस्था वाले पुंलिग संज्ञा शब्दों के रूपों की तुलना पर ध्यान देना चाहिए। संस्कृत में विभक्ति प्रत्ययें संश्लिष्टावस्था में रहती हैं, जैसे मंचे (मंच पर)। किंतु हिंदी में उनके अर्थ के सूचक परसर्ग हो गए हैं। संस्कृत 'मंचे' के अर्थ में सूचक परसर्ग हो गए हैं। संस्कृत 'मंचे' के अर्थ में हिंदी में 'मंच पर' प्रयोग किया जाएगा। संस्कृत 'सुत' के स्थान पर हिंदी में 'सुत को' होगा। यहाँ 'अम्' को विभक्ति और 'को' को परसर्ग नाम देना अधिक वैज्ञानिक हैं; क्योंकि विभक्ति संश्लिष्ट अवस्था में रहा करती है। ब्रजभाषा में 'सुतहि'[1] में 'हि' विभक्ति ही है, क्योंकि यह 'हि' सुत के साथ संश्लिष्ट है। किंतु मराठी में 'सुत को' के स्थान पर 'सुताला' प्रयुक्त किया जाएगा। मराठी में यह 'ला' वास्तव में विभक्ति प्रत्यय ही है।

(9) हिंदी के कारकीय परसर्गों और मराठी की विभक्ति प्रत्ययों की तुलना इस प्रकार प्रकट की जा सकती है :—

कारक	हिंदी परसर्ग	मराठी विभक्तियाँ
कर्ता	ने	+
कर्म	को	ला, ना, स
करण	से, द्वारा	नें, नीं, शीं
संप्रदान	को, के, लिए	ला, ना, स
अपादान	से	ऊन, हून
संबंध	का, के, की	चा, चें, ची, चे, च्या
अधिकरण	में, पर	आंत, वर

[1] वृज० विरहिनिहि <अप० विरहिणिहि (संदेश रासक 3/132)।

(10) मराठी के पुंलिंग संज्ञा शब्दों में विभक्ति लगते समय मूल संज्ञा शब्द में कुछ परिवर्तन हो जाता है। उस परिवर्तित रूप को मराठी-व्याकरण में 'सामान्य रूप' नाम दिया जाता है। संज्ञाओं के ऐसे 'सामान्य रूप' वनाना वास्तव में एक जटिल काम है। विभक्तियुक्त संज्ञा के परिवर्तित रूपों पर हमें पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए।

तिर्यक्‌रूप—

हिंदी संज्ञापरसर्ग योग से		मराठी संज्ञा विभक्तियोग से	
एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
पुंलिग संज्ञाएँ—			
अकारांत—			
		शब्द+—आ,	शब्द+—आ
(1) मनुष्य	मनुष्यों,—ओं	(1) मनुष्या	मनुष्यां,—आं
(2) देव	देवों,—ओं	(2) देवा	देवां,—आं
आकारान्त—			
(1) घोड़े	घोड़ों,—ओं	(1) घोड्या	घोड्यां,—आं
इकारांत—			
(1) कवि	कवियों, य्+ओं	(1) कवी	कवीं—ईं
ईकारांत—			
(1) धोबी	धोबियों, य्+ओं	(1) धोब्या	धोब्यां, य्+आं
(2) सिपाही	सिपाहियों, य्+ओं	(2) शिपाया	शिपायां, य्+आं
उकारांत			
(1) साधु	साधुओं,—ओं	(1) साधू	साधूं,—ऊं
ऊकारांत—			
(1) लड्डू	लड्डुओं,—ओं	(1) लाडू (लाडवा)	—लाडूं (लाडवां) —ऊं
एकारांत—			
(1) पाँडे	पाँड़ों,—ओं	(1)	+
ओकारांत—			
(1) फ़ोटो	फ़ोटुओं,—ओं	(1) फ़ोटो	फ़ोटों,—ओं
औकारांत—			
(1) जौ	जौओं,—ओं	(1) +	+

(1) हिंदी में परसर्ग सहित पुंलिग बहुवचन संज्ञाएँ ओंकारांत हो जाती हैं। किंतु इकारांत और ईकारांत संज्ञाओं में ओंकारांता 'य' श्रुति के साथ आती है। आकारांत एक वचन पुलिंग संज्ञा शब्द प्रायः एकारांत हो जाते हैं जैसे, तिर्यक एक वचन में 'घोड़े' और तिर्यक् बहु वचन में 'घोड़ों'।

(2) मराठी में तिर्यक् अवस्था के पुंलिग संज्ञा शब्दों के अंतर्गत निम्नांकित परिवर्तन होता है—

(अ) अंत्य ह्रस्व स्वर एक वचन में दीर्घ और बहुवचन में सानुस्वार दीर्घ होता है ।

(आ) ऊकारांत और ओकारांत संज्ञाएँ प्रायः एकवचन में अक्षुण्ण रहती हैं। किंतु बहु वचन में उनमें अनुनासिकता आ जाती है ।

(ई) आकारांत और ईकारांत संज्ञाओं के 'आ' और 'ई' एकवचन में 'या' में और बहु वचन में 'या' में बदल जाते हैं ।

(11) ऋजु अवस्था की स्त्रीलिंग संज्ञाओं के रूप हिंदी और मराठी में किस प्रकार होते हैं, इसका भी यहाँ विचार होना चाहिए ।

हिंदी में ऋजु अवस्था की स्त्रीलिंग संज्ञाएँ :—

स्वरांत	एकवचन	बहुवचन	परिवर्तन
अकारांत	(1) गप्प	(1) गप्पें	अ से एँ
आकारांत	(1) रेखा	(1) रेखाएँ	आ से एँ
	(2) माला		
इकारांत	(1) छवि	(1) छवियाँ	इ से इयाँ
ईकारांत	(1) मोरी	(1) मोरियाँ	ई से इयाँ
उकारांत	(1) बाहु	(1) बाहुएँ	उ से उएँ
ऊकारांत	(1) बहू	(1) बहुएँ	ऊ से उएँ
ऐंकारांत	(1) सरें	(1) सरें	ऐं से ऐं
औंकारांत	(1) सरसों	(1) सरसौं	औं से औं

(1) अंतिम अ और आ का परिवर्तन 'एँ' में और इ और ई का परिवर्तन 'इयाँ' में होता है । अंतिम उ, ऊ उसी तरह 'उएँ' में बदल जाते हैं । ऐंकारांत ऐंकारांत ो जाते हैं और औंकारांत अक्षुण्ण बने रहते हैं ।

मराठी में ऋजु अवस्था की स्त्रीलिंग संज्ञाएँ :—

स्वरांत	एकवचन	बहुवचन	परिवर्तन
अकारांत	(1) गाय	(1) पायी	अ से ई
	(2) हत्तीण	(2) हत्तिणी	अ से ई
	(3) वीट (ईंठ)	(3) विटा	अ से आ
आकारांत	(1) विद्या	(1) विद्या*	अक्षुण्ण
इकारांत	(1) रीति	(1) रीति*	अक्षुण्ण
ईकारांत	(1) दासी	(1) दासी*	अक्षुण्ण
	(2) घोड़ी	(2) घोड्या	ई से या
उकारांत	(1) धेनु	(1) धेनु*	अक्षुण्ण
ऊकारांत	(1) बधू	(1) बधू*	अक्षुण्ण

*संस्कृत से जो शब्द तत्सम रूप में सीधे मराठी में आ गए हैं, उनके बहुवचन एकवचन के समान ही रहते हैं ।

	(2) सासू (सास)	(2) सास्वा	ऊ से वा
एकारांत	(1) आते (फूफी)	(1) आत्या	ए से या
ऐकारांत	(1) पै (पाई)	(1) पया	ऐ से अया
औकारांत	(1) वायको (पत्नी)	(1) वायका	ओ से आ

(12) हिंदी और मराठी के तिर्यक् अवस्था के स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों पर विचार करके उनके रूपों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

हिंदी में तिर्यक अवस्था की स्त्रीलिंग संज्ञा :—

स्वरांत	एकवचन	बहुवचन	परिवर्तन
अकारांत	(1) गप्प	(1) गप्पों	अ से ओं
	(2) जीभ	(2) जीभों	अ से ओं
आकारांत	(1) शाला	(1) शालाओं	आ से आओं
इकारांत	(1) आकृति	(1) आकृतियों	इ से इयों
ईकारांत	(1) नदी	(1) नदियों	ई से इयों
उकारांत	(1) धेनु	(1) धेनुओं	उ से उओं
ऊकारांत	(1) वहू	(1) बहुओं	उ से उओं
ऐकारांत	(1) सरै	(1) सरैओं	ऐ से ऐओं
औकारांत	(1) सरसौं	(1) सरसौंओं	औं से औंओं

बहुवचन में अंत में 'ओं' आता है। किंतु इकारांत और ईकारांत संज्ञाओं के बहु वचनीय रूप 'इयों' के योग से बनते हैं।

मराठी में तिर्यक् अवस्था की स्त्रीलिंग संज्ञाएँ :—

स्वरांत	एकवचन	बहुवचन	परिवर्तन
अकारांत	(1) माळा	(1) माळां	आ से आं
	(2) जिभे[1]	(2) जिभां	ए से आं
	(3) वाघिणी	(3) वाघिणीं	इ से ईं
आकारांत	(1) बालिके	(1) बालिकां	ए से आं
	(2) शाले	(2) शालां	ए से आं
इकारांत	(1) आकृती	(1) आकृतीं	इ से ईं
ईकारांत	(1) नदी	(1) नद्यां	ई से यां
उकारांत	(1) धेनू	(1) धेनूं	ऊ से ऊं
ऊकारांत	(1) सासू	(1) सासूं	ऊ से ऊं

(13) **कर्म कारक में हिंदी और मराठी की पुंलिग तथा स्त्रीलिंग तिर्यक् संज्ञाएँ:—**

	हिंदी	मराठी	लिंग
—अ			
एक वचन	मनुष्य को ;	मनुष्याला	पुं०
वहु वचन	मनुष्यों को ;	मनुष्यांला, मनुष्यांना	पुं०

[1] मूल शब्द का उपांत्य ई या ऊ बहुवचन में ह्रस्व 'इ' या 'उ' में परिवर्तित हो जाता है जैसे हि० जीभ को, मरा० जिभेला।

जून
5—1 CHD/64

एकवचन	जीभ को ;	जिभेला	स्त्री०
बहुवचन	जीभों को ;	जिभांला, जिभांना	स्त्री०

—आ

एकवचन	घोड़े को ;	घोड्याला	पुं०
बहुवचन	घोड़ों को ;	घोडयांला घोडयांना[1]	पुं०
एकवचन	बालिका को ;	बालिकेला	स्त्री०
बहुवचन	बालिकाओं को ;	बालिकांला, बालिकांना	स्त्री०

—इ

एकवचन	कवि को ;	कविला	पुं०
बहुवचन	कवियों को ;	कवींला, कवींना	पुं०
एकवचन	आकृति को ;	आकृतीला	स्त्री०
बहुवचन	आकृतियों को;	आकृतींला, आकृतींना	स्त्री०

—ई

एकवचन	सिपाही को ;	शिपायाला	पुं०
बहुवचन	सिपाहियों को ;	शिपायांला, शिपायांना	पुं०
एकवचन	नदी को ;	नदीला	स्त्री०
बहुवचन	नदियों को ;	नद्यांला, नद्यांना	स्त्री०

—उ

एकवचन	साधु को ;	साधूला	पुं०
बहुवचन	साधुओं को ;	साधूंला, साधूंना	पुं०
एकवचन	धेनु को ;	धेनूला	स्त्री०
बहुवचन	धेनुओं को;	धेनूंला, धेनूंना	स्त्री०

—ऊ

एक वचन	लड्डू को ;	लाडूला	पुं०
बहु वचन	लड्डूओं को	लाडूंला, लाडूंना	पुं०
एकवचन	वधू को ;	वधूला	स्त्री०
बहुवचन	वधुओं को ;	वधूंला, वधूंना	स्त्री०

शेष करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण कारक आदि की अपनी-अपनी स्थितियों में भी उपर्युक्त नियमों का ही पालन होता है। अर्थात् नें, ला, ऊन, चा, आंत आदि के योग से भी वही रूप-परिवर्तन होगा जो 'ला' के योग से ऊपर दिखाया गया है।

---

1. 'घोड़ियों को' के स्थान पर भी मराठी में 'घोड्यांना' होता है। और 'घोडे पर' के स्थान पर मराठी में 'घोड्यावर' होगा।

ब्राम्ही की आर्य पुत्री : गुरुमुखी

नरेंद्र धीर

संत-भाषा काल एक ऐसा समय था जब भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में एक संमिलित एवम् सामूहिक बोली पाई जाती थी। इसका श्रेय बहुत करके पंजाब के नाथों तथा मुसलमान फ़कीरों को है, जो कि पंजाब में रहकर भारत के अन्य विभागों में भ्रमण करते रहे और बोली में समानता पैदा करते रहे। विद्वानों का मत है कि उस काल में देवनागरी का चलन अधिक था। पंजाब में प्रायः शारदा (जिसे प्राचीन पंजाबी भी कहा जाता है) कश्मीरी लिपि का चलन था—यह माना जाता है। गुरु अंगद देव जी ने पंजाबी लिपि का शोधन किया, तदुपरांत सिख गुरु इसी लिपि में अपनी साहित्य रचना करते रहे इसी कारण इसे गुरुमुखी कहा जाता है।[1]

विद्वानों का मत है कि पुरातन काल में संस्कृत गुरुमुखी लिपि में भी लिखी जाती रही है।[2] उक्त तर्क का प्रतिपादन विद्वान अशोक के शिलालेखों का हवाला देकर करते हैं तथा कहते हैं कि वह लिपि पंजाबी से पर्याप्त मिलती है। गुरु अंगद देव के समय में पंजाब में शारदा, टाकरी तथा महाजनी का अधिक उपयोग होता था। जिस प्रकार पालवंश द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली भाषा को 'पाली' कहा जाने लगा उसी के समान कश्मीर के धनी जिन्हें 'ठाकुर' कहा जाता था—के उपयोग में आने वाली लिपि 'शारदा' से 'ठाकरी' से 'टाकरी' कहलाई। इसी प्रकार 'लंडे' जिनका उपयोग महाजन, धनी-मानी वैश्य करते थे 'महाजनी' नाम से प्रचलित थी। इन्हीं दिनों लिपियों को शुद्ध करके गुरु लोगों ने 'गुरुमुखी' नाम दिया।

दूसरे मत के विद्वान इससे भिन्न हैं, उनका मत है कि गुरु अंगद देव जी ने ही 'शारदा', 'लंडे' तथा देवनागरी के कुछ शब्दों को लेकर यह लिपि अपने शिष्यों के लिए बनाई, जो कालांतर में 'गुरूमुखी' नाम से प्रसिद्ध हो गई। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री ग्रियर्सन भी इसी मत का समर्थक है। उसका कथन है—"पंजाबी बोली प्रायः गुरुमुखी लिपि में लिखी जाती है। कभी-कभी भ्रमवश उसी बोली को भी गुरुमुखी

---

1 "Gurmukhi however is not a name for a mere character as is supported both by native, including now even the Sikhs themselves, and by Europeans. Etymologically and historically it is the name of language which flowed from the mouth of Guru Nanak"

—'History of Indigenous Education in the Punjab' by Lietner.

2 "पंजाबी दे विकास दा इतिहास"—ज्ञानी गुरुदित्त सिंह।

कह दिया जाता है। देवनागरी के समान ही गुरुमुखी अक्षरों में कई वोलियाँ लिखी हुई हैं।"....कहा जाता है कि द्वितीय गुरु अंगद देव (1538-1552) के समय पंजाव में लिपि के नाम पर केवल 'लँडो' का ही उपयोग होता था। गुरु अंगददेव जी ने यह विचार कर कि 'लँडो' में लिखी गई गुरुवाणी अशुद्ध न पढ़ी जाए (क्योंकि उसमें मात्राएँ नहीं लगाई जातीं)—इसी लिए उन्होंने इस लिपि को शुद्ध किया तथा देवनागरी से मात्रादि लेकर इसे नवीन रूप देकर तैयार किया, जिससे सिख धर्म की रचनाएँ इसके द्वारा शुद्ध लिखी व पढ़ी जा सकें। जव ये लिपि वन गई तव इसका नाम 'गुरु-मुखी' प्रचलित हो गया जिसका भावार्थ था—गुरु के मुख द्वारा उच्चारित।[1] उक्त कथन से हम इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि लिपि का निर्माण गुरु अंगददेव ने 'लँडे' को शोध कर किया था तथा 'लँडों' में देवनागरी लिपि की मात्रादि की वृद्धि की।

पंजावी के कुछ विद्वानों की खोज के अनुसार यह ज्ञात होता है कि गुरुमुखी का निर्माण गुरु अंगददेव ने नहीं किया वरन् गुरु नानक के समय भी गुरुमुखी का अस्तित्व था। भाई काहनसिंह ने भी इस संबंध में पर्याप्त खोज की है।[2] यही नहीं, सरदार जीवनसिंह की खोजों के अनुसार गुरुमुखी लिपि गुरु नानक से भी पूर्व प्रचलित थी।[3]

यही नहीं सरदार जी० वी० सिंह ने तो अपनी पुस्तक "गुरुमुखी लिपि दा जन्म ते विकास" के दसवें अध्याय में यहाँ तक लिखा है कि ग्यारहवीं शताब्दी में जब अल्व-रूनी भारत के भ्रमण के लिए आया तव उत्तर-पश्चिमी भारत में 'सिद्धमात्रिका' तथा 'अर्धनागरी' नामक दो लिपियाँ प्रचलित थीं। आगे यह भी स्पष्ट करते हैं कि 'अर्ध नागरी' आधुनिक देवनागरी से पूर्णतः भिन्न लिपि थी। वे उस समय 'टाकरी'

---

[1] "लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया" 1—डॉ० जार्ज ग्रियर्सन।

[2] कई लेखकों ने यह लिखा है कि गुरुमुखी अक्षर गुरु अंगददेव जी ने रचे थे किंतु यह मिथ्या है। श्री पंचम गुरु अर्जुन देव ने भी प्रचार किया है। श्री गुरु नानक देव द्वारा रचित पट्टी जो 'आसा राग' में है—उसके पठन से संशय दूर हो जाता है कि पैंतीस अक्षरों की वर्णमाला उस समय भी विद्यमान थी तथा 'ड़', (ड) अक्षर जो पंजावी के अतिरिक्त अन्य किसी भी लिपि में नहीं है, 'पट्टी' में प्राप्त होता है।

देखिए 'गुरुशव्द रत्नाकर महान कोश' द्वितीय मणु पृष्ठ 1251-52 भाई काहनसिंह।

[3] लोगों में यह वात प्रायः मानी जाती है कि यह लिपि गुरु नानक ने वनाई थी, तो भी यह वात विश्वस्त है कि चाहे उन्होंने अक्षरों का संशोधन किया हो, किंतु अधिकतर अक्षर कुछ न कुछ अंतर के साथ पर्याप्त पुरातन समय से मिलते आ रहे हैं।—"गुरुमुखी लिपि दा जनम ते विकास"—जी० वी० सिंह, पृष्ठ 137। यही नहीं न्यूटन तथा लाइटनर भी इन्हीं विचारों की पुष्टि करते हैं—देखिए उनकी पुस्तकें क्रमशः "A Grammar of Punjabi Language" और "History of indigenous Education in the Punjab". न्यूटन का मत है कि 35 अक्षरों में से लगभग 21 अक्षर पुरातन लिपियों में से भली-भाँति पहचाने जा सकते हैं। इनमें से छह दसवीं शताब्दी के हैं, तीन पाँचवीं शताब्दी ई० 50 के तथा 12 तीसरी शताब्दी ई० 50 के प्रतीत होते हैं।

के होने का भी उल्लेख करते हैं[1] एवम् इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि 'सिद्धमात्रिक' से काश्मीर की 'शारदा' का निर्माण हुआ तथा 'अर्ध नागरी' से पंजाबी का निर्माण हो गया।

कुछ भी हो किंतु यह तो निश्चय ही है कि भारतीय लिपियों की जननी अशोक-कालीन 'ब्राम्ही-लिपि' ही पंजाबी की जननी है।[2] वैसे कुछ विद्वान इसमें कई लिपियों के अक्षरों का साम्य ही बताते हैं। उनका कथन यूँ है—'ट' तथा 'ठ' दोनों अक्षर देवनागरी से पूर्णतया मिलते हैं, इस मत को सभी विद्वान स्वीकार करते हैं—पंजाबी के निम्न सात अक्षर पूर्णतयः यूनानी से मिलाते हैं :—

ओ अ इ ख थ फ र

निम्न दस अक्षर यूनानी लिपि से कुछ समानता रखते हैं:—

स ह क द न प म य ल व

इसके अतिरिक्त विद्वानों का यह भी मत है कि मात्रादि भी पंजाबी ने देवनागरी से ही अपनाई हैं।[3]

इनके अतिरिक्त कुछ अन्वेषक अपनी खोज इस प्रकार बतलाते हैं[4]:—

	टाकरी या ठाकरी	शारदा	देवनागरी
गुरुमुखी में समान अक्षर .	15	7	2
गुरुमुखी में मिलते-जुलते .	5	12	5
गुरुमखी से कुछ मिलते-जुलते .	6	..	11
गुरुमुखी से नहीं मिलते .	8	16	14

उक्त विभिन्न मतों को देखकर हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि पंजाबी की निकटतम लिपि 'टाकरी' 'ठाकरी' या 'टाँकरी' है; किंतु इसका पुरातन संबंध तो भारतीय लिपियों की जननी ब्राम्ही ही से है।

---

[1] अल्बरूनी ने 'टाकरी' का उल्लेख नहीं किया यद्यपि उस काल में इसका प्रचलन सर्वत्र था।

[2] देखिए, 'शब्द चमत्कार'—प्रो० रामसिंह—पृष्ठ 308-312।

[3] देखिए, 'पंजाबी साहित्य दा इतिहास'—डा० गोपालसिंह 'दर्दी'।

[4] देखिए, 'पंजाबी साहित्य दी उत्पत्ति ते विकास'—परमिंदरसिंह तथा कृपालसिंह कसेल।

महान भाषाओं की परम्परा

. . . हमारे लिए यह परम सौभाग्य और गर्व की बात है कि भारत में अनेक महान भाषाएँ हैं और वे एक दूसरे से संबंधित हैं। हमें इन सभी भाषाओं को समृद्ध बनाना चाहिए तथा अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के प्रति विरोध की भावना नहीं रखनी चाहिए। सभी भाषाएँ युगों-युगों से विकसित होकर भारत की मिट्टी में ही पनपी और बढ़ी हैं। इनमें से किसी एक भाषा की क्षति सारे भारत की क्षति है . . .

—जवाहर लाल नेहरू
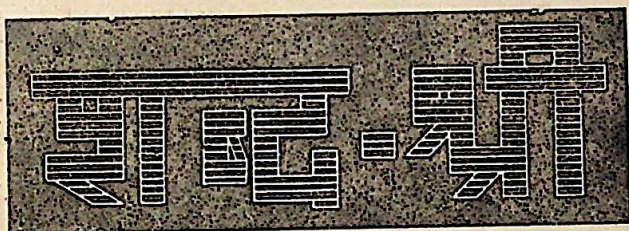
मलयालम तथा हिंदी की समान शब्दावली

अर्थ और अर्थशास्त्र

भीली के तीन दुष्कालवाची शब्द

मलयालम तथा हिंदी की समान शब्दावली

वी० पी० मेरी

मलयालम द्रविड़ वर्ग की भाषा है तथा आजकल केरल में व्यवहृत होती है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न धारणाएँ हैं। डा० काल्डवेल इसे तमिल की एक शाखा मानते हैं।[1] परंतु डा० गुंडर्ट मलयालम को द्रविड़ वर्ग की एक स्वतंत्र भाषा मानते हैं।[2] मलयालम व्याकरणकार श्री जोसफ़ पीट भी इसी मत का प्रतिपादन करते हैं।[3] मलयालम शब्द का अर्थ 'मल' (पहाड़) और 'अलम' (गहराई या समुद्र) के बीच की भाषा बताया जाता है। परंतु डा० काल्डवेल इसका अर्थ भिन्न रूप से करते हुए बताते हैं कि 'मल' (पहाड़) और 'आल' (रखनेवाला) अर्थात् पर्वत युक्त स्थान की भाषा।[4] जो भी हो मलयालम शब्द उस भाषा-भाषी प्रदेश की विशेषता को सूचित करने वाला शब्द है।

मलयालम तथा हिंदी को समान समस्त्रोतीय शब्दावली पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यह शब्दावली निम्नलिखित चार स्त्रोतों से ली गई है।

(1) संस्कृत स्त्रोत से गृहीत शब्दावली।

(2) द्रविड़ स्त्रोत से गृहीत शब्दावली।

(3) ईरानी भाषा स्त्रोत से गृहीत शब्दावली।

(4) यूरोपीय भाषा स्त्रोत से गृहीत शब्दावली।

---

[1] Dr. Caldwell : 'Comparative Grammar of Dravidian languages' Page 18.

"Malayalam being as I concieve a very ancient offshoot of Tamil differing from it chiefly at present by it ...... be regarded rather as a dialect of Tamil."

[2] Dr. Gundert : 'Introduction to Malayalam Dictionary.'

"Whilst admitting Tamil and Malayalam to very nearly re-lated appears to be unwilling to consider Malayalam as the off-shoot of Tamil."

[3] Joseph Peet : 'A Grammar of Malayalam language' Page VI 1841.

"The introduction of Malayalam is altogether distinct from either that of Sanskrit or Tamil."

[4] Dr. Caldwell : 'Comparative Grammar of Dravidian languages' Introduction Page 16.

संस्कृत स्त्रोत से गृहीत शब्दावली

संस्कृत भारत की संस्कृति और धर्म की भाषा ही नहीं रही है अपितु शब्दावली की दृष्टि से भारत की समस्त भाषाओं की आकार भाषा भी रही है। मलयालम ने भी अपने शब्दकोश की वृद्धि संस्कृत शब्दों को गृहीत कर की है। वैसे तो संस्कृत शब्द अल्प मात्रा में मलयालम में बहुत पहले से ही प्रयुक्त होते थे। परंतु मलयालम के विकास काल में मणिप्रवालम शैली के आविर्भाव से मलयालम में संस्कृत शब्दों की अत्यधिक भरती हुई और आज तक वह क्रम निर्बाध गति से चलता आ रहा है। मणिप्रवालम का आशय उस शैली से है जिस में संस्कृत रूपी मणि के साथ मलयालम रूपी प्रवाल भी जड़े हों। आजकल की उच्च मलयालम में 60 प्रतिशत संस्कृत शब्दों का प्रयोग प्रचलित है। मलयालम में गृहीत संस्कृत की उस शब्दावली को दो विभिन्न विभागों में विभाजित किया जा सकता है :—

अ—समान वर्तनी में प्रयुक्त शब्दावली

आ—असमान वर्तनी में प्रयुक्त शब्दावली

अ—समान वर्तनी में प्रयुक्त शब्दावली

इन शब्दों से आशय ऐसे शब्दों से है जो संस्कृत तथा मलयालम दोनों में समान अक्षरों में व्यक्त किए जाते हैं, जैसे 'कवि', 'रवि', 'रीति', 'उपन्यास', 'प्रबंध', 'सहोदरि' आदि। परंतु अर्थ की दृष्टि से ये शब्द दो प्रकार के होते हैं :—

(क) समानार्थक शब्द

(ख) भिन्नार्थक शब्द

इस वर्गीकरण को चित्र द्वारा इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है।
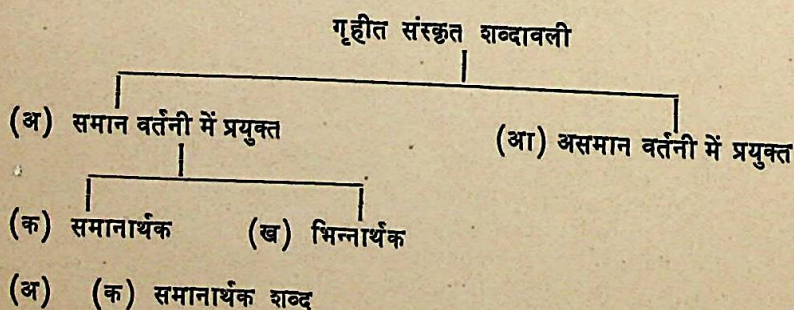
(अ) (क) समानार्थक शब्द

ये हिंदी और मलयालम में प्रयुक्त ऐसे शब्द हैं जिनके रूप और अर्थ समान होते हैं। ऐसे समानार्थक शब्दों की संख्या सहस्त्रों है। परंतु मलयालम और हिंदीमें शब्द ग्रहण की रीति में अंतर हैं जो कि भाषा की प्रवृत्ति का है। हिंदी की प्रवृत्ति प्रायः संज्ञा

शब्दों के प्रथमा एक वचन रूप ग्रहण करने की रही है, जब कि मलयालम की प्रवृत्ति शब्द का संस्कृत मूल रूप लेने की ओर उन्मुख है। यह प्रवृत्ति मलयालम में इतनी प्रबल हो गई है कि कतिपय शब्द ऐसे भी मिलते हैं जो कि मिथ्या प्रतीति के कारण संस्कृत शब्दों की तरह बना दिए गए हैं, जैसे :—

तुलास (तुला) पनस शिरस के समान, राज्यत्वम (राज) 'महत्त्वम' 'गुरूत्वम' के समान भोषत्वम (मूर्खता)

पाकता (पक्वता) 'समता' प्रसन्नता के समान

हिंदी और मलयालम के समान वर्तनी वाले समानार्थक शब्द इस प्रकार हैं :—

1. शांति, भूमि, रीति, नीति, पुरोगति, उन्नति, निधि
   मणि, मुनि, ऋषि, कोटि, विधि, खनि, स्थिति
   शत्रु, वस्तु, रेणु, अणु, धेनु, प्रभु, ऋतु

2. मनस्, वयस्, वचस्, ओजस्, शिरस्
   वक्षस्, नपस्, तपस्, उपस्, सदस्
   स्त्रोतस्, चचुस्, आशंस्, श्रेयस्

3. मलयालम में अधिकतया पुंलिंग शब्दों के अंत में 'अन्' और नपुंसक लिंग शब्दों के अंत में 'अम्' लगाया जाता है, जैसे :—

पु० शब्द	न० शब्द
राजन्	सुखम्
पुरूषन्	दुःखम्
वीरन्	वनम्
घोरन्	जलम्
मानवन्	वृक्षम्
मनुष्यन्	वासम्
पंडितन्	ज्ञानम्
वैद्यन्	गुणम्
देवन्	दोषम्
चंद्रन्	समयम्
सहोदरन्	पात्रम्
महान	स्थलम्
विद्वान्	मक्षणम्

विद्वान्	वस्त्रम्
बालकन्	आहारम
भृत्यन्	संगीतम्

4. मलयालम के शब्दांत में दीर्घ स्वर पाया नहीं जाता। इसलिए शब्दांत का दीर्घ ह्रस्व किया जाता हैं, जैसे :—

वीण	वीणा
माल	माला
चर्ख	चर्खा
लज्ज	लज्जा
कथ	कथा
लत	लता
अम्म	अम्मा
वनित	वनिता
महिल	महिला
आश	आशा
वादि	वादी
खादि	खादी
सुंदरि	सुंदरी
युवति	युवती
पत्नि	पत्नी
मंत्रि	मंत्री
वाणि	वाणी
नारि	नारी
गृहणि	गृहणी
तपस्वि	तपस्वी

5. संज्ञा शब्दों के अतिरिक्त, समानार्थक विशेषण, क्रियाविशेषण आदि भी मिलते हैं, जैसे :—

दुरम्	विपुलम्
विशालम	प्रसिद्धम्
मधुरम्	मारम्
वेगम्	समीपम्
शीघ्रम	कठिनम्
सरलम्	लघु
दुर्लभम्	निस्सारम्
समानम्	कटु
भिन्नम्	भीरू
समम्	सदा

6. अनेक क्रिया शब्द भी ऐसे हैं जो कि संस्कृत मूल से हिंदी और मलयालम दोनों में समानार्थ में प्रयुक्त होते हैं। किंतु प्रयोगावस्था में दोनों भाषाएँ अपने-अपने व्याकरण से अपने शब्दों को प्रभावित करती हैं। हिंदी में क्रिया-धातुओं के साथ 'ना' लगा रहता है, क्रिया के साधारण रूप में, जब कि मलयालम में 'क' लगा रहता है और संज्ञा शब्दों से जो क्रियाएँ बनती हैं, उनके साथ 'इक्कुक' लगाया जाता है। ऐसे कुछ समान क्रिया शब्द इस प्रकार हैं :—

क्षमिक्कुक	क्षमा करना
उपयोगिक्कुक	उपयोग करना
विचारिक्कुक	विचार करना
इच्छिक्कुक	इच्छा करना
वशिक्कुक	वास करना
पठिक्कुक	पठन करना
निर्वहिक्कुक	निर्वाह करना
भक्षिक्कुक	भक्षण करना
उपेक्षिक्कुक	उपेक्षा करना
श्रविक्कुक	श्रवण करना

7. मलयालम में कुछ ऐसे भी संस्कृत शब्द प्रचलित हैं जो संस्कृत के ही विभक्ति प्रत्ययों के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे :—

क्रमेण	क्रम से
प्रायेण	प्रायः
तारतम्येन.	तुलनात्मक ढंग से
ऐक्यकठेन	एक मत से
मुखेन	द्वारा
दिक्सेन	हर रोज़
मनसा वाचा कर्मणा	मन वचन और कर्म से
दिवसि	दिन में
विशिष्या	विशेष कर
मार्ग मध्ये	रास्ते में
विनाश काले	दुर्भाग्य के समय में
अनति दूरे	अधिक दूर पर नहीं (निकट हो)
जन्मना	जन्मसे

1. (अ) (ख) भिन्नार्थक शब्द

भिन्न-भिन्न स्त्रोतों से आने पर, समान वर्तनी में लिखे जाने पर भी शब्दों के अर्थ में व्यत्यास होना सर्वथा साधारण है। ऐसे भिन्न स्त्रोतों से आए हुए भिन्नार्थक समान शब्द हिंदी और मलयालम में बहुत से हैं, जैसेः—

मलयालम शब्द	अर्थ	हिंदी शब्द
पट्टि	कुत्ता	पट्टो

कुट्टि	बालक	कुट्टो
नावेक्र	जीभ	नाक
अरि	चावल	अरि (शत्रु)
तालि	मंगल सूत्र	ताली
भंगि	सुंदरता	भंगी
पाल	दूध	पाल (नगरपाल, डाकपाल आदि में)
मति	बस	मति (बुद्धि)
पाति	आधा	पाती (पत्ती)
काल	टाँग	काल
कायल	नदी मुख	कायल करना
मल	पहाड़	मल
कलम	मिट्टी की हाँडी	कलम
पावम्	बेचारा	पाव
तालम्	थाल	ताल (ताल-तलैया)

2. पर समान स्त्रोत से निकले हुए समान वर्तनी में प्रयुक्त होने वाले बहुत से शब्द मलयालम में प्रचलित हैं जिनमें अर्थ संकोच, अर्थ विस्तार, अर्थापकर्ष, अर्थोत्कर्ष तथा अर्थ विपर्यय हो गया है। अर्थ संकोच के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

मलयालम शब्द	अर्थ	हिंदी शब्द
प्रयासम्	कठिनाई	प्रयास
संतोषम्	खुशी	संतोष
प्रयोजनम्	फ़ायदा	प्रयोजन
भोगम्	सुख भोगना	सुख भोगना वा कष्ट भोगना
उत्सवम्	मंदिर का मेला	उत्सव
दाहम्	प्यास	दाह
गोली	खोलने की गोली	गोली
प्रमेयम्	प्रस्ताव	प्रमेय
कदलि	एक विशेष केला	कदली (केला)
परिपाटि	कार्यक्रम	परिपाटी
प्राणि	कोट	प्राणी
जीवि	कोट	जीव
नष्टम्	घाटा	नष्ट होना
लाभम्	नफ़ा	लाभ
विषमम्	कठिनाई	विषम
सावधानम्	धीरे-धीरे	सावधान

समाधानम्	शाँति	समाधान
क्षीणम्	थकावट	क्षीण
उद्योगम्	नौकरी	उद्योग
आधारम्	दस्तावेज़	आधार
कल्याणम्	शादी	कल्याण
वर्गम्	संप्रदाय	वर्ग
क्षेत्रम्	मंदिर	क्षेत्र
प्रलयम्	वाढ़	प्रलय
राजधानि	महल	राजधानी
देशम्	प्रदेश	देश
शास्त्रम्	विज्ञान	शास्त्र
मनोभावम्	मनोवृत्ति	मनोभाव (मन के भाव)
ध्यानम्	मनन	ध्यान
अनुरंजनम्	बीच बचाव	अनुरंजन
आज्ञ	बड़े अधिकारियों का आदेश	आज्ञा
अनुसरणम्	आज्ञाकारिता	अनुसरण
समाजम्	गोष्ठी	समाज
संकटम्	दु:ख	संकट
नियमनम्	नियुक्ति	नियमन
सम्मानम्	उपहार	सम्मान

3. अर्थ विस्तार के कुछ उदाहरण :

मलयालम शब्द	अर्थ	हिंदी शब्द
सिंदूरम्	कोई भी चूरा	सिंदूर
समुदायम्	समाज	समुदाय
व्यवसायम्	उद्योग	व्यवसाय
कुंकुमम	तिलक लगाने का कोई भी सिंदूर	कुंकुम (लाल)
मृगम्	जानवर	मृग
मणि	1. घंटा 2. बजा 3. दाना 4. मणि	मणि
लोहम	धातु	लोहा
धातु	तत्व	धातु
चिंत	विचार	चिंता
मंदिरम्	इमारत	मंदिर
श्रद्ध	ध्यान	श्रद्धा

विज्ञानम्	विशेष ज्ञान	विज्ञान
भिक्षु	भिखारी	भिक्षु
आलोचन	विचार	आलोचना

4. अर्थापकर्ष के कुछ उदाहरण :

मलयालम शब्द	अर्थ	हिंदी शब्द
मंदिरम्	इमारत	मंदिर
प्रयासम्	कठिनाई	प्रयास
आग्रहम्	इच्छा	आग्रह
श्रद्ध	ध्यान	श्रद्धा
गौरवम्	गंभीरता	गौरव
सम्मानम्	उपहार	सम्मान
गर्व	अहंकार	गर्व
विलक्षणम्	बुरे लक्षण वाला	विलक्षण
विचित्रम्	जो सही न है	विचित्र
शासनम्	डाँटना	शासन
मूर्खन्	निष्ठुर	मूर्ख
शिक्ष	सजा	शिक्षा
अवस्थ	घमंड	अवस्था
आभासम्	अशिष्ठ	आभास
वैराग्यम्	प्रतिकार की भावना	वैराग्य

5. अर्थोत्कर्ष के कुछ उदाहरण :

मलयालम	अर्थ	हिंदी शब्द
मर्याद	शिष्टाचार	मर्यादा
आचारम्	आदर प्रकट करना	आचार
संतोषम्	प्रसन्नता	संतोष
उत्सवम्	मंदिर का मेला	उत्सव
ध्यानम्	मनन	ध्यान
क्षेत्रम्	मंदिर	क्षेत्र
अनुमोदनम्	बधाई	अनुमोदन
मानिक्कुक	आदर करना	मानना
अभिमानम्	गौरव	अभिमान
नटन	अभिनेता	नट
विकृति	नटखट	विकृति
वासन	सुगंध	वासना
अनुसरणम्	आज्ञाकारिता	अनुसरण

परिष्कारम	सभ्यता	परिष्कार
व्यसनम्	दु:ख	व्यसन

6. मलयालम में कुछ ऐसे भी शब्द प्रचलित हैं जिनमें अर्थ विपर्यय की प्रक्रिया भी परिलक्षित होती है। जैसे :—

मलयालम शब्द	अर्थ	हिंदी शब्द
अनुवादम्	अनुमति	अनुवाद
आधारम्	दस्तावेज़	उपन्यास
उपन्यासम्	प्रवंध	उपन्यास
एकदेशम्	करीब	एक देश
कल्पन	आदेश	कल्पना
प्रत्येकम्	विशेष	प्रत्येक
वर्तमानम्	समाचार	वर्तमान
विवरम्	खबर, हाल	विवर
साधु	वेचारा	साधु
धैर्यम्	हिम्मत	धैर्य
चरित्रम्	इतिहास	चरित्र
प्रस्ताविक्कुक	सावित करना, ज़ोर देकर कहना	प्रस्ताव
राजि	इस्तीफ़ा	राजी
संप्रदायम्	रीति	संप्रदाय
संसारम्	वातचीत	संसार
संपादिक्कुक	कमाना	संपादन करना
अपवादम्	वदनामी	अपवाद
वाचकम्	वाक्य	वाचक
भ्रमम्	आकर्षण	भ्रम
संगति	वात	संगति
शरणम्	आशा	शरण
अभयम्	शरणम्	अभय
आश	इच्छा	आशा
कर्कशम्	सख्त	कर्कश
सूत्रम्	चालको	सूत्र
प्रायम्	उम्र	प्राय (क्षीण, प्राय, प्राय:)
प्रसंगम्	भाषण	प्रसंग
निर्बंधम्	अनिवार्य	निर्बंध
संभवम्	घटना	संभव
संभावन	चंदा	संभावना
प्राप्ति	सामर्थ्य	प्राप्ति
संकल्पम्	कल्पना	संकल्प

ऐसे, हिंदी और मलयालम में प्रयुक्त सैकड़ों समान शब्द हैं, जिनके अर्थ दोनों भाषाओं में विभिन्न होते हैं। ये शब्द संज्ञा रूप में ही नहीं अपितु क्रिया, विशेषण, क्रियाविशेषण आदि दूसरे शब्द भेदों में भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे:—

'अनुवादम्' (अनुमति) से 'अनुवादिक्कुक' (अनुमति देना)
'प्रसंगम्' (भाषण) से 'प्रसंगिक्कुक' (भाषण देना)
'श्रद्ध' (ध्यान) से 'श्रद्धिक्कुक' (ध्यान देना)
'संभव' (घटना) से 'संभविक्कुक' (घटना)
'इष्टम्' (पसंद) से 'इष्टमुल्ल' (पसंद का)
'धैर्यम्' (हिम्मत) से 'धैर्यमुल्ल' (हिम्मती)
'गर्व' (अहंकार) से 'गर्वि' (अहंकार करने वाला)
'प्रत्येकम्' (विशेष) से 'प्रत्येकियु' (विशेषकर)

पर कुछ शब्द ऐसे भी पाए जाते हैं जो कई अर्थों में द्योतक हैं और जिनके भिन्न शब्द भेदों में भिन्न अर्थ प्रधान होते हैं, जैसे:—

'प्राप्ति' (सामर्थ्य)—'प्रापिक्कुक' (प्राप्त करना)

'पाकम्' (ठीक)—'पाकम् चेय्युक' (पकाना)
'पाकत' (प्रौढ़ता)—'पाकमाक्कुक' (पकाना)
'जयम्' (जय)—'जयिक्कुक' (पास होना)
'विषयम्' (कठिनाई)—'विषमिक्कुक' (तंग आना)
'अनुसरणम्' (आज्ञाकारिता)—'अनुसरिच्चु' (के अनुसार)
'तात्पर्यम्' (1. आशय 2. प्यार)—'तात्पर्यप्पेटुक' (प्यार से आग्रह करना)
'प्रसिद्ध' (यश)—'प्रसिद्धीकरिक्कुक' (प्रकाशित करना)
'नष्टम्' (घाटा)—'नष्टप्पेटुक' (खोना)
'वर्षम्' (1. वर्ष 2. वर्ष)—'वर्षिक्कुक' (बरसना)
'क्षणम्' (1. पल 2. आमंत्रण)—'क्षणिक्कुक' (आमंत्रण देना)
'समाधानम्' (शाँति)—'समाधानिक्कुक' (सांत्वना पाना)
'क्षमा' (धीरज)—'क्षमिक्कुक' (क्षमा करना)
'नटन' (अभिनेता)—'निटक्कुक' (अहंकार करना)
'विवरम्' (खबर)—'विवरिक्कुक' (विवरण देना)
'वादम्' (1. वाद रोग 2. तर्क करना)—'वादिक्कुक' (तर्क करना)।

1. (आ) असमान वर्तनी में प्रयुक्त शब्दावली

जिन शब्दों की वर्तनी में केवल एक या दो वर्णों का अंतर हो जाता है, परंतु समग्र रूप हिंदी और मलयालम दोनों में समान होता है, ऐसे शब्द इस कोटी के अंतर्गत आते हैं। ये शब्द भी दो प्रकार के होते हैं :—

(च) तत्सम रूप के समान शब्द
(छ) तद्भव रूप के समान शब्द

(च) तत्सम रूपके समान शब्द वे हैं जो कि ध्वन्यात्मक परिवर्तन के कारण कुछ परिवर्तित रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—

मलयालम शब्द	संस्कृत शब्द	मलयालम शब्द	संस्कृत शब्द
मषि	मसि	वायन	वाचन
मेटम्	मेषम्	अनियम्	अनुजन
कर्किटकम्	वर्कम्	चेट्टन	जेयष्ठन
कान्नि	कन्या	वल, वक्त	वलय
मोतिरम्	मुद्रिका	गोतम्पु	गोधूम
		सूक्षम्	सूक्ष्म
पषम्	फलम्	मुलु	मुक्ता

कतिपय शब्दों में से श, ष, का, च में परिवर्तन भी देखा गया है। जैसे :—

मलयालम शब्द	संस्कृत शब्द	मलयालम शब्द	संस्कृत शब्द
चाण	शाण	चूषणम्	शोषणम्
चण	सन		
चिड्ड़म्	शृंखला		
चिप्पि	सीपि	चंड्डाति	संगाति
चिड्डम्	सिंहम्	पिच्च	(भिकषा) भिक्षा
चंकु	शंकु	चक्कर	शर्कर
		चारम्	क्षरम्
		चंकराति	संक्रांति
चैत्तान्	शैतान		
चोर	शोरा		

1. (आ) (छ) तद्भव रूप के समान शब्द के कुछ उदाहरण निम्न हैं :—

मलयालम शब्द	हिंदी शब्द
प्राव्	परेवा (कबूतर)
लाति	लाठी
तोप्पि	टोपी
पिच्चल	पीतल
सरवत्तु	शरबत
मुत्तु	मोती
ताक्कु	तोप
कुटिल्	कुटीर
गुलिक	गोली
लत्त	तोता

6—1 C. H. D./64.

2. द्रविड़ स्त्रोत से गृहीत शब्दावली :—

वैदिक काल में ही संस्कृत में द्रविड़-शब्दों को ग्रहण कर लिया था। ऐसे कुछ शब्द हिंदी तथा मलयालम में समान अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। जसे:—

पल्ली (छिपकली)
पूजा—
कोकिला
काका (कौआ)
मरकट
पप्पडम् (पापड़)
चुरुट—सुरुट
कोप्र—खोपरा
वेट्टिल—वेटिल
नालिकेरम्—नारियल
चिल्लर—चिल्लर
कशु—काजू

3. ईरानी भाषा स्त्रोत से गृहीत शब्दावली :—

मालाबार का समुद्र तट प्राचीन काल से ही विदेशों से व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। अरब के जो व्यापारी ईसा की नवीं शताब्दी से ही आकर केरल में बस गए थे, उनकी भाषा का मलयालम पर प्रभाव पड़ा तथा टीपू सुलतान के प्रभाव के कारण और अँग्रेज़ी शासन में प्रयुक्त अनेक उर्दू-फ़ारसी शब्दों के कारण मलयालम में भी ईरानी भाषा वर्ग के अनेक शब्द आ गए। जैसे :—

मसाल (मसाला)
समोस (समोसा)
सरम (सुरमा)
वक्कील (वकील)
इस्तरी
दरबार
किश्त
दल्लाल
कूलि (कुली)
सरकार
मेश (मेज़)
हाजर
सरदार
तहसीलदार
साक्षि
कुरान
नबी
निकाह
बरकत

ईरानी भाषा वर्ग के शब्दों में अर्थ—परिवर्तन और वर्तनी—परिवर्तन कर अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे :—

सिपाही—शिपायि (चपरासी), (डाकिया)
अर्जी—र्हज्जि
शुपार्श—सिफ़ारिश
कसाई—कसाप्पुकारन
सिरका—चोरुक्क
हलवा—अलुव
रसीद—रशीति
तोप—तोक्कु
खत—कत्तु
कुश्ती—गुस्ति

शरवत—सर्वत्त् (एक विशेष प्रकार का पेय) — खीसा—कोश
गुमाश्ता—गुमस्तन (क्लर्क) — साबुन—सोप्पु
मुंशी—मुनषि (भाषा पंडित) — पहलवान—फेलमान
सद्र (संगीतकारों की गोष्ठी)

4. यूरोपीय भाषा परिवार की शब्दावली :—

पुर्तगालियों के संपर्क में 400 वर्ष पूर्व आने के कारण और सौ डेढ़ सौ वर्ष के अँग्रेज़ी शासन के कारण तथा आज के अंतर्राष्ट्रीय वातावरण के कारण मलयालम में यूरोपीय भाषाओं के अनेक शब्द प्राप्त हैं। इन शब्दों में अधिक संख्या पुर्तगाली और अँग्रेजी शब्दों की है। जैसे :—

पुर्तगाली शब्द	अँग्रेज़ी शब्द
अलमारी	सिगरेट
अचार	चेटियन (Chain)
आया (धाई)	रिबण (Ribbon)
क्रिस्त्यन (क्रिस्तान)	पेष्स् (पर्स)
विस्कट (बिस्कुट)	कोट्
मेस्त्री (मिस्त्री)	षर्ट
सोफ़ (सोफ़ा)	सारी (साड़ी)
सल्लास (सलाद)	पौडर (पाउडर)
जनल (जंगला)	सिल्क (Silk)
लेलम् (नीलाम)	आप्पीस (Office)
पातिरि (पादरी)	स्कूल
	कालेज
	पेन
	वाच्चु (Watch)

उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त अनेक शब्द मलयालम में ऐसे भी मिलते हैं जो कि बहुत स्पष्ट अर्थ के द्योतक हैं तथा हिंदी में जैसे के तैसे प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे :—

घोषयात्रा (जुलूस)	अधःकृत वर्गम् (अनुसूचित जाति)
जलदोषम् (जुकाम)	कारमेघम् (काला बादल)
अहोरात्रम् (दिन और रात)	अपराध बोधम्
लघुभक्षणम् (अल्पाहार)	कोटवरन् (करोड़ पति)
अंतर्वाहिनी (पनडुब्बी)	शीतलपानीय
यंत्र-शाला (कारखाना)	उपजीवनमार्गम् (जीवन निर्वाह का उपाय)
मरण पत्रम् (वसीयत नामा)	अभ्यार्थि (शरणार्थि)
देहरक्ष (ताकत के लिए पौष्टिक पदार्थ खाना)	निमिषकवि (आशुकवि)

अर्थ और अर्थशास्त्र

(शब्दों की वैचारिक पृष्ठभूमि)

गोपाल शर्मा

आर्थिक क्षेत्र की शब्दावली का विचार करते समय यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि 'अर्थ' का तात्पर्य क्या होता है। अर्थशास्त्र एक बहुत प्राचीन विद्या है और अनेक आचार्यों द्वारा रचित ग्रंथों का नाम अर्थशास्त्र है, परंतु फिर भी अर्थ के अंतर्गत विभिन्न लेखकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से मानव व्यापारों का व्यापक उल्लेख किया है। भारतीय विद्वानों के मतानुसार चार मुख्य वेदों के अतिरिक्त चार उपवेद भी बनाए गए थे। इनमें से एक का नाम अर्थवेद था। यह अब उपलब्ध नहीं है।[1] इस ग्रंथ में अर्थ की क्या व्याख्या की गई है यह ज्ञात नहीं। परंतु भारतीय दर्शन में चार पुरुषार्थ माने गए हैं, उनमें धर्म, काम, मोक्ष के साथ अर्थ भी एक है। 'पुरुष+अर्थ' में 'अर्थ' (अर्थ+अच्) का अभिप्राय 'प्रयोजन' है। जिस प्रयोजन से मनुष्य, जीवन में उद्योग, परिश्रम करता है वह अर्थ है। मनुस्मृति में अर्थ को धन का पर्याय माना है।[2] इसके अतिरिक्त इन्द्रिय-विषयों के अर्थ (इन्द्रियार्थ)[3] में भी इस शब्द का प्रयोग होता है, अर्थात् 'अर्थ' शब्द में मानव के उद्योग-श्रम, सम्पत्ति और लौकिक सुख-साधनों का समावेश है। उसका सांसारिक कल्याण जिन विषयों अथवा क्रियाओं में निहित हों वे अर्थ के अंतर्गत आती हैं। वास्तव में अर्थ एक विशुद्ध धर्मातीत (secular) कल्पना है।

प्राचीन काल में शास्त्र का नाम निर्धारित करने में अर्थ और दण्ड को अलग नहीं माना जाता था। राजनीति-विज्ञान के लिए एक प्रचलित शब्द अर्थ-शास्त्र भी था। लौकिक यात्रा से संबंधित, राज्य-सम्पत्ति, या समाज-संगठन इत्यादि की सभी बातें इन शब्दों के दायरे में बाँध दी गई थीं। अतएव कई अर्थशास्त्र, जिनमें बृहस्पति और कौटिल्य के अर्थशास्त्र प्रधान हैं, राजा के कर्त्तव्य और राज्य-व्यवस्था के अंतर्गत सम्पत्ति, उद्योग, श्रम और संगठन संबंधी सभी महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन कर देते हैं। कौटिल्य ने यह माना है कि अर्थ का अभिप्राय मनुष्यों का व्यवसाय है

---

[1] हिंदी विश्वकोश : प्रथम : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ 230।

[2] अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैवं नियोजयेत्। मनुस्मृति 9/11।

[3] इन्द्रियाणिन्द्रियार्थेभ्य : तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। भगवद्गीता 2/58।

परंतु इसका अभिप्राय वह भूमि भी है जहाँ मनष्य रहते हैं । इसलिए अर्थशास्त्र का अभिप्राय वह शास्त्र है जो भूमि के अर्जन, पालन और शासन से संबंध रखता है।[1] राजनीति के लिए अर्थशास्त्र शब्द के प्रयोग का यह स्पष्टीकरण दूरान्वय प्रतीत होता है। फिर भी इस शब्द से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि राजनीति और अर्थ शास्त्र का बड़ा घनिष्ट संबंध है।

दण्डनीति और अर्थशास्त्र शब्दों की चर्चा करते हुए महामहोपाध्याय काणे ने लिखा है कि ये शब्द राज्य-शास्त्रों के लिए दो दृष्टिकोणों से प्रयुक्त होते थे। कामसूत्र में अर्थ की परिभाषा है—शिक्षा, भूमि, सुवर्ण, पशु, धान्य, गृह भाण्डारादि मित्र तथा जो भी अर्जन किया है उसकी वृद्धि। अतएव जब सब प्रकार की सम्पत्ति और समृद्धि को ध्यान में रखकर इस विद्या को नाम देना हो तो इसे अर्थशास्त्र कहते थे और जब जनता का शासन और अपराधियों को दण्ड देने का भाव प्रधान होता था तो उसी विद्या को दंडनीति कहते थे।[2] इसी सम्मिलित कल्पना को परिभाषा में बाँधने का काम शुक्रनीति ने किया है—

श्रुति स्मृत्यविरोधेन राजवृत्तिहि शासनम्।
सुयुक्त्यार्थार्जनं यत्रह्यर्थं शास्त्रं तदुच्यते ।। 4 / 296

इस तरह स्पष्ट हो जाता है आर्थिक विचार की आरंभिक अवस्था में अर्थ और दण्ड को एक ही विद्या के घेरे में रखना उपयुक्त माना जाता था। यूरोप में भी 17 वीं शताब्दी और एडमस्मिथ के समय तक इस विद्या का नाम Political Economy ही था। रंगास्वामी ऐयंगार ने इस विषय की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'अर्थशास्त्र' में प्रायः आधुनिक विधिशास्त्र, राजनीति और अर्थशास्त्र के मिले-जुले रूप होते थे। इसकी तुलना 16 वीं और 17 वीं शताब्दी के बीच उपलब्ध यूरोपियन 'केमरेलिज्म' से की जा सकती है।[3]

इस सम्मिलित कल्पना के बावजूद अगर सूक्ष्मता से व्याख्या की जाए तो हमें कौटिल्य की अर्थ की व्याख्या और शुक्रनीति की अर्थशास्त्र की व्याख्या में आधुनिक संकल्पना के बीज उपलब्ध हो जाते हैं। कौटिल्य ने 15 वें अधिकरण में लिखा है "मनुष्याणां वृत्तिरर्थः। मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः।" अर्थात् वृत्ति और भूमि, 'अर्थ'

---

[1] पृथिव्यालाभे पालने च—यावत्यर्थ शास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि—कौटलीय अर्थशास्त्र 1/1

[2] History of Dharma Sasera, Vol. III, p. 7.

[3] Artha Shastra might therefore be regarded as occupying the same place in our ancient literature, as a combination of Jurisprudence, politics and economics, somewhat on the lines of European kameralism between the 16th and 17th centuries— Ancient Indian Economic thought : K. V. Rangaswami Aiyangar, page 19.

के अर्थ में प्रधान है। वृत्ति से ही वार्ता शब्द बनता है। वार्ता को क्रमशः एक पृथक् रूप प्राप्त हो जाता है। कौटिल्य ने अन्य विचारकों का उल्लेख करते हुए कहा है— 'वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्या' (1/2)। आचार्य बृहस्पति के अनुयायी वार्ता और दण्डनीति ये दो ही विद्याएँ मानते हैं। यहाँ वार्ता दण्डनीति से पृथक् अपने आप में एक पूर्ण विद्या है। उसका उल्लेख वायु पुराण, भागवत पुराण आदि अनेक ग्रंथों में किया गया है। कौटिल्य के अनुसार वार्ता की परिभाषा इस प्रकार है—

कृषि पशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता.....। 1/4

कृषि, गौ आदि पशुओं का पालन और वाणिज्य ये विषय वार्ता के अंतर्गत हैं। शुक्रनीति ने इस परिभाषा में एक विषय और जोड़ दिया है। :—

कुसीदकृषि वाणिज्यम् गोरक्षावार्तयोच्यते। 1/155

इसमें कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा के साथ कुसीद (सूद-व्याज) का भी पृथक् उल्लेख है। आधुनिक अर्थशास्त्र की दृष्टि से उसमें कृषि, व्यापार, उद्योग और बैंकिंग का समावेश था। 'उपभोग' और 'राज्यविता' को छोड़कर उसमें प्रायः सभी विषय किसी न किसी रूप में उपलब्ध होते हैं।

पश्चिमी देशों में प्राचीन काल में अर्थशास्त्र का स्वतंत्र विकास नहीं हुआ था। ग्रीस के विचारकों पर धर्म का गहरा प्रभाव था। प्लेटो,अरस्तू आदि आर्थिक विषयों में रुचि को हीन दृष्टि से देखते थे।[1] इसीलिए हमें आधुनिक 'इकॉनामिक्स' विषय उस समय मात्र गृह-प्रबंध के रूप में मिलता है। Economics का ग्रीक रूप Oikonomikos (और लेटिन रूप Oeconomia), है जिसका अर्थ Oikos=घर, Nomikos-nomos=नियम या व्यवस्था होता है। क्रमशः घर की अर्थव्यवस्था के विचार का विस्तार राज्य तक हो गया, तब इस विषय का नाम Political Economy (राज्य अर्थ व्यवस्था) हो गया। एडमस्मिथ ने इसे एक ओर तो राजनीतिज्ञों और विधायकों के विज्ञान की एक शाखा के रूप में देखा तथा दूसरी ओर इसे राज्यों की सम्पत्ति की प्रकृति और कारणों का शास्त्र माना। इसी विचार से प्रभावित होकर कुछ लोगों ने इसे सम्पत्तिशास्त्र की संज्ञा दी। परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक अर्थशास्त्रियों को यह अनुभव होने लगा कि राज्य-अर्थ-व्यवस्था बहुत ही सीमित अर्थ वाला शब्द है, जबकि प्रस्तुत शास्त्र समाज के आर्थिक संबंधों और आर्थिक परिवर्तनों का अध्ययन करता है और बहुधा इसका राजनीतिक बातों से कोई संबंध नहीं होता। अतएव पाश्चात्य आचार्यों ने इसे Economics या Social Economics नाम दिया। Social Economics नाम वास्तव में जर्मनी में प्रचलित हुआ। सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों के अलग-अलग हो जाने पर 'इकानामिक्स' नाम को और भी पुष्टि मिली।

---

[1] For there are in all three things about which every man has an interest, and the interest about money when rightly regarded is the third and the lowest of them. Midway comes the interest of the body and first of all that of the soul. Laws Bk. V, page 743, Jowett; the Dialogues of Plato, Vol. V, page 126.

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि भारत में आज उसे सम्पत्ति-शास्त्र कहा जाए या अर्थशास्त्र ? बीसवीं शताब्दी के आरंभकाल में नागरी प्रचारिणी सभा की पारिभाषिक शब्दावली का प्रचार करने के उद्देश्य से और आधुनिक विषयों पर पुस्तकों का प्रणयन करने के लिए पं० माधव राव सप्रे तथा पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने Political Economy शब्द के पर्याय के रूप में 'सम्पत्ति शास्त्र' शब्द का ही प्रयोग किया था । प्राचीन पाश्चात्य अर्थशास्त्री इसे धन का विज्ञान ही मानते थे । परंतु आज धन को मात्र साधन माना जाता है । साध्य तो मानवीय कल्याण (Human Welfare) है । इसीलिए मार्शल ने कहा था—'अर्थशास्त्र एक ओर धन का अध्ययन है और दूसरी ओर (जो उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है) मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।[1]' सामाजिक विज्ञान के रूप में वह मनुष्य का अध्ययन है न कि धन का । अतएव इसमें मनुष्य की भौतिक कल्याण की धारणाओं को कुछ निर्धारित कल्पनाओं के प्रकाश में देखने की चेष्टा की जाती है । इस दृष्टि से कौटिल्य की अर्थ-विषयक व्याख्या—'मनुष्याणां वृत्तिरर्थः । मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः । तस्याः पृथिव्या लाभ पालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति' (15/1) में मनुष्य की आर्थिक गतिविधि और भूमि के लाभ और पालन अर्थात् भौतिक कल्याण का समावेश होता है। अतः अर्थशास्त्र शब्द ही आज की कल्पना के सर्वाधिक अनुकूल है । कौटिल्य की कल्पना में व्यवहार-पक्ष प्रधान है और आज का अर्थशास्त्र केवल वैज्ञानिक सिद्धांतक पक्ष पर बल देता है । परंतु 'मनुष्यणां वृत्तिरर्थः' यह व्याख्या हमें ऐसा भाव प्रदान करती है जिसे हम आज की भाषा में Economic man (आर्थिक मनुष्य) कहते हैं । प्रो० राबिन्स की परिभाषा द्वारा मानव के व्यवहारों को दो पहलुओं में बाँटा जा चुका है—आर्थिक और अनार्थिक । राबिन्स के अनुसार—'अर्थशास्त्र, साध्यों और वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों के बीच संबंधों की दृष्टि से मानव व्यवहारों का अध्ययन करता है ।' इस विचार ने अर्थशास्त्र को भौतिक कल्याण के घेरे से उठाकर एक व्यापक आधार-भूमि पर खड़ा किया है । इस अध्ययन से प्रकट होता है कि अर्थ और अर्थशास्त्र शब्द में निहित अर्थ ने भी उतने ही उतार-चढ़ाव देखें हैं जितने कि अँग्रेजी के Economics शब्द ने । जैसे-जैसे किसी ज्ञानक्षेत्र का विकास होता जाता है शब्दों को नए-नए अर्थ प्राप्त होते जाते हैं ।

---

[1] Economics is a study of mankind in the ordinary business of life; it examines that part of individual and social actions which is most closely connected with the attainment and with the use of material requisites of well-being.—A. Marshall.

भीली के तीन दुष्कालवाची शब्द

नेमीचंद जैन

अक्षर और शब्द वाक्य के अविभागी अंश है। इनके द्वारा युगानुयुग से मानव-मन व्यक्त होता आया है। ये हमारी चित्तवृत्तियों, आशा-आकांक्षाओं, हर्ष-विषाद की सदैव से युगपत् व्यंजना करते रहे हैं। बहुधा हमारे लोक-जीवन की जिन घटनाओं को इतिहास अपने भुजपाश में नहीं समेट पाता ये उनकी बड़ी दीर्घजीवी और छविपूर्ण व्यंजना कर लेते हैं। ऐसा करना किसी भी भाषा का दुर्निवार संस्कर है। भीली-भाषा-समुदाय[1] हमारे इस कथन का अपवाद नहीं है। हममें भी ऐसे वीसियों शब्द हैं, जिन्होंने भिल्ल-लोक-जीवन को वाणी दी है और जिनके द्वारा भीलों के न केवल आर्य अपितु प्रागार्य जीवनाचार जाने जाते हैं। भील एक विवादग्रस्त प्रजाति है जिसके आर्य अथवा आर्येतर होने के अचूक न्यास यद्यपि उपलब्ध नहीं हैं तथापि जो-जैसे नृतात्विक अथवा भाषाई न्यास हमें प्राप्य हैं तदनुसार वे नाग-निषदों के पुरखे ठहरते हैं। प्रस्तुत लेख में हम उनके अभावग्रस्त और संघर्षरत जीवन से संबंधित कतिपय शब्दों पर विचार करेंगे। यह निर्विवाद है कि भीलों को आर्यों के भारत-आगम के बाद वे अद्यतन अपने जीवन के लिए जूझना पड़ा और अनगिन राजतंत्रों के शोषण का लक्ष्य वनना पड़ा। इतिहास बताता है कि राजस्थान और गुजरात के भीलों को अनेक भीषण दुष्कालों का सामना करना पड़ा है और अपनी रक्षार्थ निष्क्रांतियाँ करनी पड़ीं। इसीलिए उनके प्राय: सभी भाषा-रूपों में अकालवाची शब्द[2] मिलते हैं और उनमें दुर्भिक्ष-प्रेरित एक विशिष्ट शब्दावली का विकास हो गया है। ठीक इसी प्रकार भीली लोक-गीतों में भी दुर्भिक्षों के वर्णन के लिए एक रूढ़ पदावली ने जन्म ले लिया है।[3] इतना ही नहीं अपितु इन दुष्कालों की तीव्रता को

---

[1] 'भीली' शब्द प्रजात्यर्थी 'भील' शब्द से व्युत्पन्न है। तद्वितवृत्ति पर रचित इस शब्द का अर्थ है 'भील प्रजाति अथवा देश की'। कालांतर से यही शब्द भाषार्थ में रूढ़ हो गया। ययार्थ में भीली देश के लगभग 28,672 वर्गमील में वसे-फैले 2,223,000 (ज०ग० 1951) भीलों द्वारा प्रयुक्त भाषा-समुदाय है जिसके 21 व्याकर्तन हैं। इसके विकास के दो काल स्तर माने गए हैं: 1—प्रागार्य। 2—आर्य। अधुना भीली अपने ध्वनि-रूपों में आचूल आर्यभाषा है।

[2] काल (कोटली, गमती, गरासिया, चौधरी, देहवाली, नोरी, पारधी, पाँचाली, पावरी, बावरी, भिलाली, रेवाकाँठी भीली, मगरी और हाबूड़ी व्यावर्तनों में प्रयुक्त), काळ (चारणी, भावची और रेवाकाँठी में) दुकाळ (कोंकणी, धोड़िया और राठवी में), दुकार (अहीरी में), कार (बारेल में), कहारी (वागड़ी और महीकाँठी में), हुकाणे (सं० शुष्क : रणी में), अकाल (सियालगीरी में)।

[3] पडियो कोठीकाळ कानजी भाई। सोराँ भरवे लागा कानजी भाई।
राँडी डगवे लागी कानी भाई। टोली तयार करो कानजी भाई। (राजस्थान)
हरना पडज्यो कोडीकाळ रे हरनारी वेवण (राजस्थान)
पडचा ढंढुकाळ काळो निनामो रे। लीला लीमड़ हुकाया रे काळो निनामों रे (गुजरात)

व्यक्त करने के लिए दुर्भिक्षों का एक सुसंगत वर्गीकरण तक हो गया है। नीचे ऐसे ही तीन शब्दों—गोहळ्ज्यो, ढंढुकाळ, कोडीकाळ—पर विचार किया गया है।

गोहळ्ज्योकाळ[1] :

इस शद्ध की व्युत्पत्ति के संबंध में तीन अवधारणाएँ संभव हैं। यह संस्कृत की गृह् धातु, गवाक्षः गो–गव+अक्षः अथवा 'घास' शब्द में से किसी एक से व्युत्पन्न है। 'गोहळज्यो' भीली का एक विशेषण पद है जो नीडवाची प्राति-पादित 'गोहतों-ळो' से विकसित है। 'गोहतो-ळो' पुलिंग[2] संज्ञापद है जिसका हिंदी पर्यायी 'घोसला' देशज है। इसके लिए गुजरात के डुंगर्या नीलों में 'नीड़ो-रो' संस्कृत तत्सम भी प्रचलित है। संस्कृत 'गुह' का अर्थ है आच्छादित करना, ढंकना, छिपाना। घौंसला एक प्रकार का तृण-निर्मित आच्छादन ही है तथापि वह व्युत्पत्ति मात्र अनुमानमूलक है अतः अधिक प्रयोजनवती नहीं है। संस्कृत का गवाक्षः>गोक्ख>गोख >भीली (गोखलो>गोहलो-ळो)' से विवेच्य शब्द की व्युत्पत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'गोहला-ळो' में भीली प्रत्यय 'ज्यो' के प्रयोग द्वारा 'गोहळज्यो' पद बनाया गया है। भीली में इस प्रकार की शब्द-रचना प्रचलित है।[3] तीसरी अवधारणा भी अनुमानमूलक है। इसके अनुसार गोहला-ळो शद्ध का पुरखा सं० 'घासः' दिखाई देता है। सं० में ल ('लच्') प्रत्यय विपुलता का द्योतक है: यथा-असंल, वत्सल, फेनल प्रभृति। अतः यह संभव है कि तिनकों की प्रचुरता के कारण' 'गोहलो-ळो' शब्द प्रचलित हो गया हो। भीली में महाप्राण के अल्पप्राण, 'स्' के 'ह्' तथा 'ल्' के 'ळ्' में विवर्तित होने की प्रवृत्ति है।[4] इस तरह घड़े गए 'गोहळ्ज्योकाळ' का अर्थ है वह भीषण दुष्काल जिसमें अन्नकणाभाव के कारण पक्षियों की चोंचे खाली रह जाती है और भूख से अशक्त हो जाने के कारण घौंसलों में ही उनके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। उनके शव सड़ने लगते हैं और उनमें लाल-लाल चींटियाँ लग जाती हैं। क्रमशः वे वृक्ष की सूखी शाखा से धरती पर आ पड़ते हैं जिनसे क्षुधार्त ढोर अपनी भूख मिटाते हैं। इन पँक्तियों के लेखक को राजस्थान के एक भीलवृद्ध ने बताया था कि ऐसे दुष्काल के समय पशु हहरा उठते हैं और वे अपनी उदर तृप्ति इस तरह घौंसलों से करने पर बाध्य हो जाते हैं। उसके अनुसार गाय-भैंसों का दूध लाल पड़ जाता है—(घौंसले के तिनकों के साथ लाल चींटियाँ खा जाने के कारण) और उनके सूखे थनों से इतना कम दूध निकल पाता था कि कठिनाई से बाँस की एक पौर का सुराख पूरी तरह भरा जा सके।

---

[1] भीली में मूर्द्धंय 'ळ' का विकास गुजराती अथवा राजस्थानी की परंपरा पर न होकर अपने ढंग से हुआ है। भील-भाषा में स्वरमध्यग मूर्द्धंयतर 'ड' की व्यवस्था पाली और वैदिक संस्कृत की भाँति ही दिखाई देती है। अर्थात् उसका 'ळ' हो जाता है। इसमें मूयर्द्धंतर 'ढ' का भी 'ळ' हुआ है।

[2] प्रतिमित भीली में तीन लिंग प्रयुक्त हैं।

[3] 'ज्यो' प्रत्यय से तद्धितों की रचना हुई है: यथा—एकहज्यो (संवत् 1881 का दुष्काल), सपंज्यो (संवत् 1956 का दुष्काल इत्यादि)।

[4] महाप्राण से अल्पप्राणः ग्>ध् —गागरों>सं० घर्घरक, गामतो>सं० घर्मित। ह्>से—हाउ>सं० साधु, आहवुं—सं० हस्। ळ्—ल्—कळथी>सं० कुलित्थ, आळेह>सं० आलस्य।

ढंढुकाळ

इस दुष्काल में पशुधन की अपार हानि होती है। 'गोहळज्यों' की तुलना में यह अधिक भीषण और तबाही ढानेवाला होता है। शब्द का पूर्वपद विचारणीय है। हिंदी में 'ढोरढांढा' तथा गुजराती में 'ढोरढांक' 'ढंढू' के लगभग समानार्थी शब्द हैं। गुजराती के पशुवाची शब्द 'ढांढ' 'ढांढो' क्रमशः नपुंसक लिंग और पुलिंग शब्द है जिनका अर्थ है 'वैल, भैंस या ऐसे ही किसी पालतू पशु का शव'। भीली के 'ढांड़' 'ढंढु' इसी स्त्रोत से जनमे दिखाई देते हैं। डिंगल में भी पशु के अर्थ में 'ढांढो' शब्द प्रयुक्त है। इसी सिलसिले में गुजराती का 'ढंढु' (बाजरी का भुट्टा) शब्द भी विचारणीय है किंतु इस तरह की गई व्युत्पत्ति से 'ढंढुकाळ' का प्रयोजनीय अर्थ नहीं मिलता। अतः अन्नवाची शब्द की अपेक्षा पशुवाची शब्द ही अधिक उचित प्रतीत होता है। उक्त टिप्पणी के साथ 'ढंढुकाळ' का अर्थ हुआ दुर्भिक्ष का वह कुसमय जिसमें खेती के काम में आने वाले तथा दूध देने वाले पशुओं के अन्नाभाव के कारण शव पर शव दिखाई देने लगें। भीली लोक-गीतों में इस दुष्काल के भील-निष्क्राँलियों के संदभ में बड़े व्यथापूर्ण वर्णन मिलते हैं।

कोडीकाळ

यह शब्द पूर्ववती दोनों शब्दों की अपेक्षा इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसके द्वारा भीली के प्रागार्य रूप की ओर हमारा ध्यान जाता है। शब्द का पूर्व पद 'कोडी' मुण्डा का मानववाची शब्द है। भाषाविद् डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार उक्त शब्द औष्ट्रिकों में पूर्णांग मनुष्य का बोधक था।[1] कोल्लभिल्ल[2] भाषाओं में अद्यतन उक्त शब्द मानवार्थ में प्रयुक्त है। मूलतः यह उस मनुष्य के लिए प्रयुक्त था जिसके हाथ-पैरों की बीसों अंगुलियाँ साबित होती थीं। आज भी उक्त शब्द भारतीय आर्य भाषाओं में संख्यावाची की भाँति जीवित है: यथा: हिंदी-कोड़ी > वीस, बँगला-कुडि > वीस। किंतु आश्चर्य है कि भीली के उसकी सीमावर्तिनी भाषाओं द्वारा अपदस्थ किए जाने पर भी उक्त शब्द अपने मूलार्थ पर जमा हुआ है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि प्रायः सभी भीलीभाषी क्षेत्रों में 20 को आधार मानकर गिनने की प्रथा अद्यतन है। उदाहरणतः मध्यप्रदेश के पश्चिम निमाड़ ज़िले के भीली-क्षेत्र में 'पचास' के लिए 'वे विह न दोह' (दो वीस और दस) जैसे प्रयोग प्रचलित हैं। कोडी शब्द भीली में प्रयुक्त अन्य आर्येतर शब्दों[3] के साथ भाषाविज्ञान की दृष्टि-से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार सम्पूर्ण शब्द का अर्थ हुआ 'वह चिरकाल दुर्भिक्ष जिसमें अन्नाभाव के कारण अनगिन मनुष्य मरने लगते हैं'।

---

[1] डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारत में आर्य और अनार्य, पृ० 59।

[2] उल्लेखनीय है कि मध्यप्रदेश के पश्चिम निमाड़ तथा गुजरात के डुंगर्या भील स्वयं को भिल्ल (सं० तत्सम भिल्ल > भित् > भेदने) कहते हैं। इनमें संस्कृत के कई तत्सम तद्भव शब्द प्रयुक्त हैं।

[3] भीली : उन्दुरु > चहा, भीली : कपा, कपाह > कपास, भीली : जमुणु-जामना।

- हिंदी के भाषाशास्त्रीय शोध-प्रबंध

- हिंदी और मराठी शब्दों में साम्य

हिंदी के भाषाशास्त्रीय शोध-प्रबंध

केशव दत्त मिश्र

डॉ० बाबूराम सक्सेना का अँग्रेज़ी में लिखित ग्रंथ 'अवधी का विकास' (एवोल्यूशन ऑफ़ अवधी) हिंदी का सर्वप्रथम भाषाशास्त्रीय शोध-प्रबंध है। इसके पहले भाग में, अवधी-ध्वनियों की उत्पत्ति और विकास, स्वर-संयोग, अक्षर, शब्द, स्वराघात, समीकरण, वाक्य, सुर तथा उसकी ध्वनि संबंधी अन्य विशेषताओं की चर्चा है। दूसरे भाग में, संज्ञाओं, विशेषणों, सर्वनामों, परसर्गों क्रियाओं, क्रियाविशेषणों, अव्ययों, बलार्थक प्रयुक्त रूपों और वाक्य-गठन में शब्दक्रम पर विचार हुआ है। सन् 1931 में डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत, यह प्रबंध अपने विषय पर लिखा गया प्रथम और एकमात्र ग्रंथ है। इसमें कायमोग्राफ तथा पैलेटोग्राफ द्वारा प्राप्त चित्र तथा चार्ट आदि दिए गए हैं।

सन् 1935 में श्री धीरेंद्र वर्मा का प्रबंध "ब्रजभाषा" (ल लांग ब्रज) डी० लिट्० के लिए स्वीकृत हुआ। इसके आरंभिक चार अध्यायों में, ब्रज-प्रदेश का भौगोलिक परिचय तथा जनता, साहित्य और आधुनिक ब्रजभाषा का वर्णन है। शेष अध्यायों में, ध्वनि, संज्ञा, सर्वनाम, परसर्ग, क्रिया, अव्यय, वाक्य-गठन और ब्रजभाषा के मुख्य लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। सक्सेना जी का प्रबंध प्रयाग विश्वविद्यालय ने स्वीकार किया ा, वर्मा जी ने पेरिस विश्वविद्यालय से उपाधि पाई।

"ए लिंग्विस्टिक स्टडी ऑव दी सिक्स्टींथ सेंचुरी हिंदी विद् ए स्पेशल रेफरेंस टु मलिक मुहम्मद जायसी'ज अवधी" (मलिक मुहम्मद जायसी की अवधी के विशिष्ट संदर्भ में सोलहवीं शती की हिंदी का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन) विषय पर सन् 1940 में श्री लक्ष्मीधर को लंदन विश्वविद्यालय से पीएच० डी० की उपाधि मिली, जिसमें मध्यकालीन अवधी पर विचार किया गया। किंतु, जीवित बोलियों के अध्ययन की दृष्टि से, श्री नलिनीमोहन सान्याल द्वारा लिखित और कलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् 1953 में स्वीकृत शोध-प्रबंध " बिहारी भाषाओं की उत्पत्ति और विकास" अधिक महत्त्वपूर्ण है। "मैथिली भाषा की रूप रचना" भी इसी कोटि का निबंध है। सन् 1944 में इस पर डा० सुभद्रा झा को पटना विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की उपाधि दी थी। इसमें स्वरों, विशेषणों, क्रियारूपों, क्रियाविशेषणों, संयोजक और विस्मयादिबोधक अव्ययों के अतिरिक्त, द्वित्तकों, बलात्मक रूपों और वाक्यविज्ञान तथा अर्थविज्ञान की समस्याओं का विस्तृत अध्ययन हुआ है।

श्री उदयनारायण तिवारी को उनके शोध-प्रबंध "भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति और विकास" पर सन् 1945 में डी॰ लिट्॰ की उपाधि दी गई। प्रयाग विश्वविद्यालय से स्वीकृत इस शोध-प्रबंध में आरंभिक उपोद्घात के अतिरिक्त, भोजपुरी रचनाओं, लोकगीत-संग्रहों, आधुनिक कवियों और फुटकर पद्य-पुस्तकों का भी विवरण दिया हुआ है। प्रमुखतः व्याकरण, ध्वनितत्त्व और रूपतत्त्व की विवेचना की गई है। डा॰ हरदेव बाहरी का शोध ग्रंथ "हिंदी अर्थ-विज्ञान" भी इसी वर्ष और इसी विश्वविद्यालय द्वारा डी॰ लिट्॰ के लिए स्वीकृत हुआ। इसमें ध्वनि और अर्थ, अर्थ का विकास, अनेकार्थता और उसके कारण तथा प्रभाव, समानार्थी तथा पर्यायवाची शब्दों से इतर अर्थ संबंधी विभिन्नता के लिए आवश्यक परिस्थितियों और महत्त्वपूर्ण विभिन्नताओं पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही प्रयोगों और मुहावरों का अर्थवैज्ञानिक अध्ययन, आलंकारिक प्रयोगों का विवेचन, व्याकरण के रूपों की अर्थवैज्ञानिक व्याख्या और वाक्यगठन के संदर्भ में अर्थ का अध्ययन किया गया है। लंदन विश्वविद्यालय से सन् 1950 में पीएच॰ डी॰ के लिए स्वीकृत श्री विश्वनाथ प्रसाद का "भोजपुरी ध्वनियों और ध्वनि प्रक्रिया का अध्ययन" भी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

अँग्रेज़ी प्रभाव के कारण शब्द-समूह, मुहावरों और कहावतों, व्याकरण विराम चिह्न, कारक, शैली आदि की दृष्टि से हिंदी की अभिव्यंजना शक्ति में जो वृद्धि हुई है, उसका अध्ययन सन् 1950 में प्रयाग विश्वविद्यालय से पी एच॰ डी॰ के लिए स्वीकृत श्री विश्वनाथ मिश्र के शोध ग्रंथ "हिंदी भाषा और साहित्य पर अँग्रेज़ी-प्रभाव" में मिलता है। श्री ओमप्रकाश ने हिंदी मुहावरों का अध्ययन किया था।

"आजमगढ़ ज़िले की फूलपुर तहसील के आधार पर भारतीय ग्रामोद्योग संबंधी शब्दावली का अध्ययन" पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने श्री हरिहरप्रसाद गुप्त को डी॰ फिल॰ की उपाधि सन् 1951 में दी थी। इसमें मिट्टी और खेती, साधारण बातों, वस्तु उत्पादन, पशुपालन, ग्रामोद्योग और ग्रहोद्योगों संबंधी शब्द समूहों, वाक्यांशों और मुहावरों का अध्ययन हुआ है। सन् 1952 में इसी विश्वविद्यालय ने श्री विद्याभूषण को "अभिदान अनुशीलन अर्थात् हिंदी प्रदेश के हिंदू नामों के वैज्ञानिक विवेचन" पर डी॰ फिल॰ की उपाधि दी। इसमें धार्मिक प्रवृत्ति, राजनीति, इतिहास व समाजसंस्थाओं के आलोक में हिंदू पुरुषों के वैज्ञानिक विवेचन के अतिरिक्त अभिव्यंजनात्मक प्रवृत्तियों और अभिधान मिश्रित रूपरेखा भी दी है। व्याकरणिक विवेचन, भाषावैज्ञानिक विश्लेषण, ध्वनि-समूह, शब्दावली का वर्गीकरण, तुलसी की शब्दावली में सामाजिक और सांस्कृतिक संकेतों की दृष्टि से लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत श्री देवकी नंदन का सन् 1953 का शोध-प्रबंध, "तुलसीदास की भाषा" महत्त्वपूर्ण है।

आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत श्री गुणानंद के 1954 के प्रबंध में मध्यपहाड़ी भाषा और उसके हिंदी से संबंध का आलोचनात्मक अध्ययन हुआ है। श्री सितकंठ मिश्र के "खड़ी बोली का आंदोलन : विशद अध्ययन" में भी हिंदी निरुक्त, उत्पत्ति एवं प्राचीन परंपरा का ज़िक्र है। 'गत सौ वर्षों म कविता

के माध्यम के लिए वृजभाषा खड़ी बोली विवाद की रूपरेखा' में श्री कपिलदेव ने भाषा पर ही विचार किया है। हाँ, श्री कन्हैयालाल सहल का स्वीकृत शोध ग्रंथ (राजस्थानी कहावतों का गवेषणात्मक और वैज्ञानिक अध्ययन—राजस्थान विश्वविद्यालय–1955) कहावत के उद्भव और विकास तथा विस्तार के वर्गीकरण की दृष्टि से उपयोगी है।

डॉ० नामवर सिंह का शोध-प्रबंध (पृथ्वीराज रासो की भाषा—हिंदू विश्वविद्यालय—1956) ध्वनि विचार, रूपविचार, कारक, वाक्यविन्यास और संदर्भ कोश प्रस्तुत करता है। अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के आधार पर श्री अंबिकाप्रसाद सुमन को आगरा विश्वविद्यालय ने सन् 1956 में पीएच० डी० प्रदान की। यह ग्रंथ भी श्री हरिहरप्रसाद के ग्रंथ की भाँति है। हाँ, इस में बर्तन, खिलौनों और संदूकों से संवद्ध शब्दावली व पशु व जीव-जंतुओं की शब्दावली भी दी गई है।

"सूर-पूर्व की ब्रजभाषा" पर काशी विश्वविद्यालय ने सन् 1957 में श्री शिवप्रसाद सिंह को पीएच० डी० प्रदान की। इस के आरंभिक (1–5) परिच्छेद अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा इसी वर्ष स्वीकृत व श्री भालचंद्र राव द्वारा लिखित शोध ग्रंथ "भारतीय आर्यभाषा परिवार की मध्यवर्तिनी बोलियाँ—छत्तीसगढ़ी, हलवी, भतरी" में विशुद्ध भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन देखने को मिलेगा। श्री प्रेमनारायण टंडन को 1957 में लखनऊ विश्वविद्यालय से सूरदास की भाषा पर पीएच० डी० मिली। इसमें विषय प्रवेश के अतिरिक्त, परिचय, विस्तार, साहित्य में प्रयोग, पूर्ववर्ती बृज, ध्वनिसमूह, व्याकरण और भाषा रूपों आदि का अध्ययन किया गया है। सन् 1958 का एक ग्रंथ उल्लेखनीय है श्री कैलास भाटिया का "हिंदी में अँग्रेज़ी के आगत शब्दों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन"। आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत इस शोध-प्रबंध में अँग्रेज़ी की ध्वनियों के हिंदी रूपों के अलावा वाक्यविन्यास, आगत शब्द और अर्थविचार, अनुवाद आदि की विवेचना की गई है।

आगरा ज़िले की बोली के अध्ययन पर सन् 1958 में ही प्रयाग विश्वविद्यालय से डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी को डी० फिल० की उपाधि दी गई और इसी वर्ष श्री निर्मला सक्सेना को 'सूरसागर की शब्दावली' पर इसी विश्वविद्यालय ने डी० फिल० की उपाधि दी।

इनके अतिरिक्त, कुछ शोध-प्रबंध ऐसे हैं जिनमें लोक साहित्य का अध्ययन किया गया है, पर, साथ ही तत्संबंधी बोली या उसकी शब्दावली का भी अध्ययन किया गया है। ऐसे प्रबंधों में श्री कृष्णलाल का "निमाड़ी और उसका लोक साहित्य" तथा श्री भगवतीप्रसाद शुक्ल का "बघेली लोक साहित्य : एक अध्ययन" आते हैं। यह तो अत्यंत दुःख का विषय है कि उपरोक्त शोध-प्रबंधों में से अनेक, अप्रकाशित अवस्था में हैं।

भाषानुसंधान विविध रूपों में किया जा सकता है। व्याकरण, संस्कृति, व्यंजना-शक्ति और भाषाविज्ञान में से किसी एक को लकर चल सकते हैं। किंतु, किसी भाषा के या बोली के भाषा वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रमुखतः शब्दों की वर्तनि, अर्थपरिवर्तन और वाक्य-रचना का ही अध्ययन किया जा सकता है।

वस्तुतः, किसी भी बोली, उपबोली या शब्दावली के अध्ययन में विषय की समीचीनता, रुचि और प्रवृत्ति, धैर्य, अध्ययन की भूमिका और श्रम, सामग्री की सुलभता, समुचित निर्देशन ओर विषय की उपादेयता तथा महिमा का महत्त्व होता है।

ग्रियर्सन और केलॉग के द्वारा आरंभ किए गए इस कार्य को निरंतर आगे बढ़ाए रहने की आवश्यकता है। आज सजीव बोलियों और उपबोलियों के संकलन-संबंधी अध्ययन का महत्त्व अत्याधिक है। भाषा के शोधछात्रों के सम्मुख सबसे बड़ी कठिनाई ध्वनिशास्त्र के प्रयोग-प्रशिक्षण एवं यंत्रों द्वारा लेखन की व्यवस्था का अभाव है। डेकन कालेज, पूना की "स्कूल आफ् लिंग्विस्टिक्स" आदि कुछेक संस्थाओं में ही इस प्रकार का प्रबंध है।

हिंदी कम से कम समय में अन्य प्रदेशवासी कैसे सीख सकें, यह एक समस्या है। अन्य भाषाओं से हिंदी में अनुवाद, वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण, पाठ्यसामग्री के निर्धारण, भाषांतर व्याकरण की रचना की समस्याएँ, भाषा विज्ञान के लगनशील विद्यार्थियों द्वारा ही हल की जा सकती हैं। आज हमें हिंदी का देश-विदेशों में प्रचार करना है। यह भाषाओं के सम्यक् अध्ययन द्वारा हो सकेगा।

इधर भारतीय विश्वविद्यालयों में भाषाविज्ञान के अनुसंधित्सुओं को भाषाशास्त्र के अनेक विषय सौंपे गए हैं। अध्ययन हो रहा है, परंतु अभी तक नियमों में स्थिरता का अभाव है। यदि, छतरपुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष, डा० ब्रह्म शर्मा डी० लिट० के लिए मेरठ ज़िले की बोलियों का अध्ययन कर रहे हैं, तो रीवा स्नातकोत्तर महाविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष डा० श्यामसुंदरलाल दीक्षित बुंदेली के उद्भव और विकास जैसे विस्तीर्ण क्षेत्रों में डी० लिट० के लिए अनुसंधान में लगे हैं। वेद में कहा गया है– "वाग्वै सम्राट परय ब्रह्म।" शब्द ही ब्रह्म है। हर्ष का विषय है कि अनेक विद्यार्थियों और विद्वानों की प्रवृत्ति इस क्षेत्र में अनुसंधान की ओर उन्मुख हो रही है।

दिल्ली विश्वविद्यालय की हिंदी अनुसंधान परिषद् सदृश ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है, जो विषयों के पिष्टपेषण का निरीक्षण और चयन की समस्या में संतुलन और व्यवस्था कर सकें। साथ ही, विशुद्ध भाषा वैज्ञानिक समितियों का निर्माण हो, जो निर्देशन और मार्ग-प्रदर्शन करती रहें। यांत्रिक सुविधा अपेक्षित है ही। ऐसे पत्रों की भी आवश्यकता है, जो केवल भाषा-वैज्ञानिक गतिविधियों, समस्याओं और समाधानों संबंधी विद्वत्तापूर्ण लेखों को प्रकाशित करें। तभी भाषा विज्ञान के परिशीलन और शोध का वह आदर्श सफल होगा, जिसके लिए वाक्यदीप में भर्तृहरि ने घोषित किया है –

शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिः
विश्वेस्यास्य निबंधिनी।

इधर विगत पाँच वर्षों में उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों ने डी० लिट्०, पीएच०डी० या डी० फिल० उपाधियों के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबंध स्वीकृत किए हैं, जिनसे उपयोगी सामग्री प्रकाश में आई है।

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् 1958 में डॉ० शंकरलाल शर्मा का शोध-प्रबंध 'कन्नौजी बोली का अध्ययन तथा ठेठ ब्रज से तुलना' और सन् 1960 में डॉ० बाँकेलाल उपाध्याय का शोध-प्रबंध 'संस्कृत मूलक हिंदी-गणितशास्त्रीय शब्दावली का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भाषावैज्ञानिक अध्ययन' पीएच० डी० के लिए स्वीकृत किया ।

प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् 1958 में डॉ० गंगाचरण त्रिपाठी का शोध-प्रबंध, "अवधी, ब्रज और भोजपुरी का तुलनात्मक अध्ययन", सन् 1960 में डॉ० अमर बहादुर का शोध-प्रबंध "भोजपुरी और अवधी सीमा की बोलियों का अध्ययन" व डॉ० शिवनारायण का शोध-प्रबंध 'सीमैंटिक चेंजेज़ इन संस्कृत वर्डस् यूज्ड इन स्टैंडर्ड हिंदी" सन् 1960 में डॉ० अचलानंद का 'हिंदी कोश-साहित्य', डॉ० रामकुमारी मिश्रा का 'बिहारी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन', श्री शालिग्राम शर्मा का 'इलाहाबाद जिले की कृषि-संबंधी शब्दावली का अध्ययन' तथा सन् 1962 में डॉ० महावीरशरण जैन का 'ए सिंक्रोटिक स्टडी ऑफ़ द' डायलक्टस् आफ़ द' बुलंदशहर एण्ड खुरजा तहसील' शोध-प्रबंध डी० फिल० की उपाधि के लिए उपयुक्त माना ।

क० मुं० हिंदी और भाषा वैज्ञानिक विद्यापीठ (आगरा) ने 1959-60 में श्री सी०.वी० रावत को 'मथुरा ज़िले की बोलियाँ', श्री श्रीराम को 'दक्खिनी हिंदी', श्री हरिदत्त भट्ट को "गढ़वाली का शब्द-सामर्थ्य", श्री देवी शंकर द्विवेदी को 'बैसवाड़ी का शब्द-सामर्थ्य' एवं श्री मोहनलाल को "स्वर पल्टी, पदरूपांश तथा वाक्य" नामक शोध-प्रबंध के लिए पीएच० डी० की उपाधि से अलंकृत किया ।

1960 में श्री शिव 'हिन्दी अर्थविज्ञान' तथा श्री हीरालाल माहेश्वरी 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' शोध-प्रबंधों द्वारा डी० फिल० की उपाधि से विभूषित हुए। इन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय ने यह सम्मान दिया ।

गोरखपुर विश्वविद्यालय ने 1961 में डॉ० रामदेव ओझा का शोध-प्रबंध "नाथ संप्रदाय का हिंदी भाषा और साहित्य पर प्रभाव" स्वीकृत किया । पंजाब विश्वविद्यालय ने 1962 में डॉ० रघुवीरशरण का ग्रंथ "हिन्दी भाषा का रूप वैज्ञानिक तथा वाक्य वैज्ञानिक अध्ययन" स्वीकार किया । भागलपुर विश्वविद्यालय ने डॉ० शिवशंकरप्रसाद वर्मा का प्रबंध 'देवनागरी लिपि का ऐतिहासिक तथा भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' उपयुक्त माना । इन ग्रंथों पर भी पीएच० डी० की उपाधि दी गई है ।

लखनऊ विश्वविद्यालय ने 1962 में ही श्री रामसिंह को 'कूर्मांचल प्रदेश की औद्योगिक और कृषि शब्दावलि' पर तथा श्री प्रभाकर शुक्ल को 'जायसी की भाषा' विषय पर पीएच० डी० की उपाधि दी । पिछले वर्ष ही श्री नंदकिशोरसिंह का शोध-प्रबंध 'कुरमाली बोली' विश्वभारती विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत हुआ है ।

इसी प्रकार, लखनऊ विश्वविद्यालय ने सन् 1958 में डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल को उनके शोध-प्रबंध 'बुंदेली बोली का विश्लेषणात्मक अध्ययन' पर पीएच० डी० की उपाधि दे दी थी । संभवत: इसीलिए डॉ० दीक्षित ने जो इसी विषय पर शोध कार्य कर रहे थे—अपना विषय बदल लिया है ।

हिंदी और मराठी शब्दों में साम्य

घनश्यामदास व्यास

भारतीय भाषाओं का विकास समान परिस्थितियों में हुआ है। उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि सभी भाषाएँ एक ही परिवार से नहीं जन्मी हैं, उदाहरणार्थ— दक्षिण की तमिल, तेलुगु आदि। परंतु इसमें संदेह नहीं कि हिंदी और मराठी एक ही परिवार की भाषाएँ हैं। साथ ही दोनों की लिपि भी देवनागरी है। आर्य परिवार की ये भारतीय भाषाएँ कई अंशों में सादृश्यता रखती हैं। किंतु यहाँ पर हम दोनों भाषाओं के शब्द साम्य पर ही विचार करेंगे।

भारतीय भाषाओं पर समान रूप से संस्कृत का प्रभाव है। यहाँ तक कि अन्य परिवार की भारतीय भाषाओं में भी संस्कृतनिष्ठ शब्दों का वाहुल्य है। दक्षिण की तमिल आदि भाषाओं में संस्कृत शब्द प्रचुरता से विद्यमान हैं। अर्ध 'म' का प्रचार भी संस्कृत के कारण ही है। जहाँ तक मराठी और हिंदी का संवंध है, दोनों भाषाओं में प्रचुर मात्रा में शब्द समानार्थं रूप में प्रचलित हैं।

यहाँ विशेष रूप से वे शब्द दिए जा रहे हैं, जो मराठी और हिंदी दोनों भाषाओं में प्रचलित हैं और हिंदी में भी उनका स्वरूप और अर्थ वही है जो मराठी में है।

'अ' से प्रारंभ होन वाले शब्द

अंकगणित	अचानक	अद्भुत	अनुकरण
अंकित	अग्रलेख	अधिक	अन्न
अंकुश	अजीर्ण	अधीर	अप्सरा
अंगार	अणु	अध्याय	अभिनंदन
अंजन	अतिथि	अनर्थ	अश्लील
अंतर्गत	अत्यंत	अनुवादक	अस्थि
अंतर्भाव			अज्ञात

'आ' से प्रारंभ होने वाले शब्द

आंदोलन	आग	आदि	आसपास
आकर्षक	आग्रह	आभारी	आसरा
आकार	आजन्म	आर्थिक	आस्तिक
आकाशवाणी	आटा	आलिंगन	आह्लाद
आक्रोश	आतुर	आशा	आज्ञा
आगंतुक	आदर्श	आश्रित	आस्था

'इ' से प्रारंभ होने वाले शब्द

इंद्रिय	इज्जत	इशारा	इमारत
इच्छा	इतर	इत्यादि	इरादा
इच्छुक	इतस्ततः	इनाम	इलाज

'ई' से प्रारंभ होने वाले शब्द

ईप्सित	ईश्वर	ईश्वरीय

'उ' से प्रारंभ होने वाले शब्द

उग्र	उच्छ्‌वास	उतारा	उत्तर	उदासीन
उचित	उठाव	उत्कृष्ट	उत्सव	उद्‌दाम
उच्च	उड़ाऊ	उत्तम	उत्साह	उपाय
उपासना	उपाधि	उपेक्षा	उलटा	उष्णता

'ऊ' से प्रारंभ होने वाले शब्द

ऊद	ऊँस	ऊव
ऊर्मि	ऊन	ऊस

'ए' से प्रारंभ होने वाले शब्द

एक	एकमत	एकांत	एकादशी
एकत्र	एकमेव	एकांगी	एक्का
एकनिष्ठ	एकवचन	एकाकी	एरंड

'ऐ' से प्रारंभ होने वाले शब्द

ऐक्य	ऐच्छिक	ऐतिहासिक	ऐहिक

'ओ' से प्रारंभ होने वाले शब्द

ओघ	ओज	ओजस्वी	ओप

'औ' से प्रारंभ होने वाले शब्द

औचित्य	औजार	औदार्य	औरस

यहाँ केवल स्वरों से प्रारंभ होने वाले शब्दों की ही सूची दी जा रही है।

इस प्रकार हिंदी और मराठी के समान शब्दों की विस्तृत सूची से अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों भाषाओं के शब्दों में बहुत साम्य है। उपर्युक्त सभी शब्द हिंदी में उसी रूप में लिखे जाते हैं एवं उसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। परंतु मराठी में बहुत से ऐसे शब्द मिलते हैं जिनके लिखने में दीर्घ-ह्रस्व मात्राओं का अंतर है, परंतु समानार्थ में प्रयुक्त होते हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रेषित हैं :—

'अ' वाले शब्द

मराठी	हिंदी	मराठी	हिंदी
अंडें	अंडा	अक्कड	अकड़
अकडणें	अकड़ना	अखाडा	अखाड़ा

'आ' वाले शब्द

मराठी	हिंदी	मराठी	हिंदी
आजकाल	आजकल	आणा	आना

'इ' वाले शब्द

मराठी	हिंदी	मराठी	हिंदी
इमान	ईमान	इधन	ईंधन

कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं जिनमें अनुस्वार का अंतर पड़ जाता है, परंतु लिखने में या अर्थ में अंतर नहीं आता। कुछ शब्दों में एकाध व्यंजन अधिक हो जाता है। इस प्रकार के उदाहरण हमें उपर्युक्त उदाहरणों में ही मिल जाते हैं। अक्कड़ में क अधिक है तथा अखाडा में हिंदी में ड के नीचे बिंदी लगाई गई है।

यदि हम नगरों के नाम लिखते समय ध्यान दें तो मराठी में पुर दीर्घ पूर के रूप में लिखा जाता है। जैसे—नागपुर को मराठी में नागपूर लिखा जाएगा। इसी प्रकार कानपुर को कानपूर लिखा जाता है।

इस प्रकार हम मराठी-हिंदी में समानार्थी शब्दों की प्रचुर मात्रा में उपलब्धि देख सकते हैं, जिनमें कहीं दीर्घ-ह्रस्व का अंतर है, कहीं अनुस्वार का अंतर है, कहीं एकाध व्यंजन अधिक प्रयुक्त होता है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मराठी-हिंदी में शब्द-साम्य अत्याधिक मात्रा में उपलब्ध है।

श्री सुमित्रानंदन पंत की कविता "भारत माता" चौदह भारतीय भाषाओं में

सुमित्रानंदन पंत

श्री सुमित्रानंदन पंत आधुनिक हिंदी कविता के प्रवर्तकों में अग्र-गण्य हैं। हिंदी कविता को स्वतंत्र चिंतन तथा सूक्ष्म अभिव्यंजनाओं से संश्लिष्ट कर विभिन्न मानसिक अभिव्यक्तियों का माध्यम बनाने का श्रेय पंत जी को है।

पंतजी के काव्य में जहाँ एक ओर प्रकृति के रूपों का नया पर्यवेक्षण दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक चेतना के नए विकास-शिखर भी उनकी काव्य-वाणी से मुखरित हुए हैं। गोचर-अगोचर विषयों की प्रांजल अनुभूतियों का चित्रण आपके काव्य की एक प्रमुख विशेषता है।

कवि पंत का जन्म 20 मई, सन् 1900 ई० में कूर्मांचल प्रदेश की मनोरम रम्य स्थली कौसानी (अल्मोड़ा) में हुआ। पल्लव, वीणा, ग्रंथि और गुंजन में प्रकृति पंत जी के काव्य का प्रमुख अंग रही। तद्पश्चात् युगवाणी, ग्राम्या युगपथ आदि में जन-जीवन के विभिन्न स्वरूप उसमें परिलक्षित होते हैं। आध्यात्मिक अभिव्यंजनाओं तथा अरविंद दर्शन से प्रभावित उनकी कविताएँ स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, उत्तरा, अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद, हरी बाँसुरी : सुनहरी टेर में संग्रहीत हैं।

पंत जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। 'पाँच कहानियाँ' नाम का कहानी-संग्रह तथा रजत शिखर, शिल्पी, सौवर्ण नामक काव्य-रूपक तथा ज्योत्स्ना नाटच-कृति पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।

भारत माता

सुमित्रानंदन पंत

भारत माता ग्रामवासिनी !

खेतों में फैला दृग श्यामल,
शस्य भरा जन जीवन आँचल,
गंगा यमुना में शुचि श्रम जल,
शील मूर्ति, सुख दुख उदासिनी !

स्वप्न मौन, प्रभुपद नत चितवन,
ओठों पर हँसते दुख के क्षण,
संयम तप का धरती सा मन,
स्वर्ग कला, भू पथ प्रवासिनी !

तीस कोटि सुत, अर्ध नग्न तन,
अन्न वस्त्र पीड़ित, अनपढ़ जन,
झाड़ फूँस खर के घर आँगन,
प्रणत शीश तरुतल निवासिनी !

विश्व प्रगति से निपट अपरिचित,
अर्धसभ्य, जीवन रुचि संस्कृत,
रूढ़ि रीतियों से गति कुंठित,
राहु ग्रसित शरदेंदु हासिनी !

सदियों का खँडहर, निष्क्रिय मन,
लक्ष्य हीन, जर्जर जन जीवन,
कैसे हो भू रचना नूतन,—
ज्ञान मूढ़ गीता प्रकाशिनी !

पंचशील रत, विश्व शांति व्रत,
युग युग से गृह आँगन श्रीहत,
कब होंगे जन उद्यत जाग्रत ?—
सोच मग्न जीवन विकासिनी !

उसे चाहिए लौह संगठन,
सुंदर तन, श्रद्धा दीपित मन,
भू जीवन प्रति अथक समर्पण,
लोक कलामयि, रस विलासिनी !

সুমিত্ৰানন্দন পন্ত

আধুনিক হিন্দী কবিতাৰ প্ৰবৰ্ত্তক সকলৰ মাজত শ্ৰীসুমিত্ৰানন্দন পন্ত অগ্ৰগণ্য। স্বতন্ত্ৰ চিন্তাধাৰা আৰু সূক্ষ্ম অভিব্যঞ্জনা শৈলীৰে হিন্দী কাব্যক চহকী কৰি বিভিন্ন মানসিক অভিব্যক্তিৰ মাধ্যম হিচাবে গঢ়ি তোলাৰ শ্ৰেয় পন্তজীৰে প্ৰাপ্য।

পন্তজীৰ কাব্যত এপিনে যেনেকৈ প্ৰকৃতিৰ বিভিন্ন ৰূপৰ নতুন নতুন পৰ্য্যবেক্ষণ আছে, তেনেকৈ আনপিনে আধ্যাত্মিক চেতনাৰ নতুন বিকাশ-শিখৰো তেখেতৰ কাব্য-বাণীৰে মুখৰিত হৈছে। ইন্দ্ৰিয়গোচৰ আৰু ইন্দ্ৰিয়াতীত বিষয়ৰ প্ৰাঞ্জল অনুভূতিৰ বৈচিত্ৰ্যময় প্ৰকাশ তেখেতৰ কাব্যৰ এটা প্ৰধান বৈশিষ্ট্য।

1900 ইং চনৰ 20 মেই তাৰিখত কুৰ্মাচল (কুমাউন) অঞ্চলৰ মনোৰম বন্যস্থলী কৌশানী (আলমোড়া)ত কবি পন্তজীৰ জন্ম হৈছিল। পল্লৱ, বীণা, গ্ৰন্থি, গুঞ্জন আদি কাব্যত মুখ্য কাব্য-বিষয় হৈছে প্ৰকৃতি। ইয়াৰ পিছত যুগবাণী, গ্ৰাম্যা, যুগ পথ কাব্যত জন জীৱনৰ বিভিন্ন স্বৰূপ পৰিলক্ষিত হৈছে। আধ্যাত্মিক অভিব্যঞ্জনা আৰু অৰবিন্দ দৰ্শনৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱান্বিত তেখেতৰ কবিতাবোৰ স্বৰ্ণ কিৰণ, স্বৰ্ণ ধূলি, উত্তৰা, অতিমা, বাণী, কলা ওৰ বুঢ়া চাঁদ, হৰি বাঁসুৰী সুনহৰী টেৰ কাব্যবোৰত সংগৃহীত হৈছে।

পন্তজীৰ প্ৰতিভা সৰ্বতোমুখী। তেখেতৰ ৰচিত 'পাঁচ কহানিয়াঁ' নামৰ চুটি গল্প সংগ্ৰহ, কাব্য-ৰূপক 'ৰজত শিখৰ', 'শিল্পী', আৰু 'সৌবৰ্ণ' আৰু 'জ্যোৎস্না' নাটকখনে বিশেষ সুখ্যাতি অৰ্জ্জন কৰিছে।

ভাৰত জননী

শ্ৰীসুমিত্ৰানন্দন পন্থ
অনুবাদ: শ্ৰীনৱাৰুণ

ভাৰত জননী গ্ৰাম নিবাসিনী।
পথাৰত প্ৰসাৰিত দৃষ্টি শ্যামল
শস্যপূৰ্ণ জন জীৱনৰ আঁচল
গঙ্গা যমুনা ভৰা পৱিত্ৰ শ্ৰমজল
শীল মূৰ্ত্তিমতী, সুখদুখ উদাসিনী।

স্বপ্ন মৌন, প্ৰভু পদনত সুনয়ন
ওঁঠতে যেন হাঁহে বেদনাৰ ক্ষণ
সংযম তপোময় ধৰিত্ৰীৰ দৰে মন
স্বৰ্গ কলা, ভূ-পথত-প্ৰবাসিনী।

অৰ্দ্ধ নগ্ন তনু ত্ৰিশ কোটি সন্তান
অন্ন বস্ত্ৰ নিপীড়িত, নিৰক্ষৰ, নাই জ্ঞান
তৃনৰ, খেৰৰ গৃহ আৰু প্ৰাঙ্গণ
অবনত মস্তক, তৰুতল নিবাসিনী।

বিশ্ব প্ৰগতিৰে ।চৰ অপৰিচিতা
অৰ্দ্ধ সভ্য, জীৱন ৰুচি সংস্কৃতা
জড়-অন্ধ কু-ৰীতিৰে জীৱনগতি কুণ্ঠিতা
ৰাহুগ্ৰস্তা, শৰদেন্দু হাসিনী।

শ' শ' বছৰৰ ভগ্নস্তুপ নিষ্ক্ৰিয় 'মন
লক্ষ্যবিহীন, জৰ্জ্জৰ জন-জীৱন।
কেনেকৈ হব বিশ্ব ৰচনা নতুন
জ্ঞান বিমূঢ়া, গীতা প্ৰকাশিনী।

পঞ্চশীল ৰত, বিশ্ব শান্তি ব্ৰত
যুগ যুগ ধৰি গৃহ, প্ৰাঙ্গণ শ্ৰীহত
কেতিয়া নো হব জন উদ্যত, জাগ্ৰত
চিন্তা কাতৰা, জীৱন বিকাশিনী।

আবশ্যক আজি লোহ সংগঠন
সুন্দৰ তনু, শ্ৰদ্ধা প্ৰদীপ্ত মন
বিশ্ব জীৱন প্ৰতি অক্লান্ত সমৰ্পন
লোক কলাময়ী ৰস বিলাসিনী।

ଶ୍ରୀ ସୁମିତ୍ରାନନ୍ଦନ ପନ୍ତ

ଶ୍ରୀ ସୁମିତ୍ରାନନ୍ଦନ ପନ୍ତ ଆଧୁନିକ ହିନ୍ଦୀ କବିତାରେ ଯୁଗପ୍ରବର୍ତ୍ତକ ମାନଙ୍କ ମଧ୍ୟରେ ଅଗ୍ରଗଣ୍ୟ । ହିନ୍ଦୀ କବିତାରେ ନୂତନ ଶୈଳୀ ଏବଂ ସୂକ୍ଷ୍ମ ଅଭିବ୍ୟଞ୍ଜନା ପ୍ରୟୋଗ କରି ବିଭିନ୍ନ ମାନସିକ ଅଭିବ୍ୟକ୍ତିର ମାଧ୍ୟମରେ ତାଙ୍କୁ ପରିବେଷଣ କରିବାର ବାହାଦୁରୀ ତାଙ୍କୁହିଁ ଦିଆଯାଏ ।

ପନ୍ତଜୀଙ୍କ କାବ୍ୟରେ ପ୍ରକୃତି ଚିତ୍ରଣର ନବତମ ପର୍ଯ୍ୟବେକ୍ଷଣ ସଙ୍ଗେ ସଙ୍ଗେ ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ଚେତନାର ବିକାଶଭଙ୍ଗୀ ସ୍ୱଚ୍ଛଳତାର ସହିତ ପ୍ରକାଶିତ । ଗୋଚର ଏବଂ ଅଗୋଚର ବିଷୟର ପ୍ରାଞ୍ଜଳ ଅନୁଭୂତିର ଚିତ୍ରଣ ତାଙ୍କ କାବ୍ୟଧାରାର ଚରମ ଅଭିବ୍ୟକ୍ତି କହିଲେ ଅତ୍ୟୁକ୍ତି ହେବ ନାହିଁ ।

କୁର୍ମାଚଳ ପ୍ରଦେଶ ଅନ୍ତର୍ଗତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ମଣ୍ଡିତ କୌସନୀ (ଆଲମୋଡ଼ା) ଅଂଚଳରେ ୧୯୦୦ ମସିହା ମଇ ୨୦ ତାରିଖ ଦିନ କବିବର ଭୂମିଷ୍ଠ ହୁଅନ୍ତି । ପଲ୍ଲବ, ବୀଣା, ଗ୍ରନ୍ଥି ଏବଂ ଗୁଞ୍ଜନ କାବ୍ୟରେ ପ୍ରାକୃତିକ ଚିତ୍ରଣ କୁ ସେ ପ୍ରଧାନ ଉପଜୀବ୍ୟ ଭାବେ ଗ୍ରହଣ କରନ୍ତି । ତା ପରେ ଯୁଗବାଣୀ, ଗ୍ରାମ୍ୟା, ଯୁଗପଥ ଆଦିରେ ଜୀବନର ବିଭିନ୍ନ ସମସ୍ୟା ଉପସ୍ଥାପିତ ହୁଏ । ସ୍ୱର୍ଣ୍ଣକିରଣ, ସ୍ୱର୍ଣ୍ଣଧୂଳି, ଉତ୍ତରା, ଅତିମା, ବାଣୀ, କଳା ଓ ବୁଢ଼ା ଚାନ୍ଦ, ହରୀ ବାଁସୁରୀ ଆଦି କାବ୍ୟକୃତିରେ କବିଙ୍କର ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ଅଭିବ୍ୟଞ୍ଜନା ଏବଂ ଅରବିନ୍ଦ ଦର୍ଶନର ଅଭିପ୍ରେରଣା ପ୍ରସ୍ଫୁଟିତ ।

ପନ୍ତଜୀଙ୍କ ପ୍ରତିଭା ସର୍ବତୋମୁଖୀ । ପାଞ୍ଚ କାହାନିୟାଁ ଗଳ୍ପ ସଂଗ୍ରହ, ରଜତ ଶିଖର, ଶିଳ୍ପୀ, ସୌବର୍ଣ୍ଣ ଆଦି କାବ୍ୟରୂପକ ଏବଂ ଜ୍ୟୋତ୍ସ୍ନା ନାଟ୍ୟ-କୃତି ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ସବୁଥିରେ ସେ ଲେଖନୀର ଜନ୍ମ ଜନ୍ମକାର ବିଦ୍ୟୋତିତ ॥

ଭାରତ ମାତା

ସୁମିତ୍ରା ନନ୍ଦନ ପନ୍ତ
ଅନୁବାଦକ - ରଜନୀକାନ୍ତ ଦାସ

ଭାରତ ମାତା ମୋର ଗ୍ରାମ ବାସିନୀ !

ଶ୍ୟାମଳ କ୍ଷେତେ ବ୍ୟାପ୍ତ ନୟନ ନୀଳ
ଜନ ଜୀବନ - ଶସ୍ୟଭରା - ଦୂକୂଳ
ଗଙ୍ଗା ଯମୁନା ଶୁଚି-ଶ୍ରମ 'ସଲୀଳ
ସୁଖେ ଦୁଃଖେ ଉଦାସୀ ସର୍ବସହିଣୀ !

ଘୁମନ୍ତ ମଗ୍ନ, ପ୍ରଭୁ ପଦେ ନିରନ
ଅଧର ପ୍ରାନ୍ତ ହସେ ଦୁଃଖ ଦାରୁଣ
ସଂଯମ ତପସ୍ୟାର ଅଟଳ ମନ
ଭୂତଳେ ଉପେକ୍ଷିତା, ସୁର ଶୋଭିନୀ !

କୋଳେ ଧରିଚି ତ୍ରିଂଶ କୋଟୀ ସନ୍ତାନ
ନିର୍ବସ୍ତ୍ର, ନିରାହାର, ଶିକ୍ଷା ବିହୀନ
ପର୍ଣ୍ଣ- କୁଟୀର ବାସୀ ରିକ୍ତ ଅଂଗନ
ଶୀତେ ପ୍ରଣମି ତରୁତଳ ଶାୟିନୀ
ବିଶ୍ୱ ପ୍ରଗତି କିସ ନୁହେଁ ତା' ଜ୍ଞାତ
ଅର୍ଦ୍ଧସଭ୍ୟ, ଜୀବନ ରୁଚି ସଂସ୍କୃତ,
ସଂସ୍କାର ପୁରାତନ, ଗତି କୁଣ୍ଠିତ
ରାହୁ-ଗ୍ରସ୍ତ ଶରତ ଇନ୍ଦୁ ହାସିନୀ !
ଶତାବ୍ଦୀ ଧ୍ୱଂସସ୍ତୂପ, ନିଷ୍କ୍ରାନ୍ତ ମନ
ଲକ୍ଷ୍ୟହୀନ, ବର୍ବର ଜନ ଜୀବନ
ନୂତନ ତା କାହିଁ ସେ କରେ ଦର୍ଶନ
ଜ୍ଞାନ ବିମୂଢ଼ା ଆଜି, ଗୀତା ଭାଷିଣୀ !
ବିଶ୍ୱଶାନ୍ତି ଓ ପଞ୍ଚଶୀଳରେ ଧ୍ୟାନ
ଯୁଗେ ଯୁଗେ ଅଂଗନ ଗୃହ ଶ୍ରୀହୀନ
କହ ଗୋ କେବେ ହେବ ତାର ଉତ୍ଥାନ
ଚିନ୍ତାମୟୀ ଜନନୀ ସୃଷ୍ଟି-କାରିଣୀ !

ତୋ ଲାଗି ଚଲାଡ଼ା ଏକ ବଳିଷ୍ଠ ଜାତି,
ସୁନ୍ଦର ତନୁ, ଶ୍ରଦ୍ଧା - ଦୀପିତ - ମତି ,
ଦେଶ ଦଶର କାମେ ଅଟଳ ପ୍ରୀତି
ଜନକଲ୍ୟାଣମୟୀ ରସ ଦାୟିନୀ ।

سُمترا نندن پنت

جناب سمترا نندن پنت جدید ہندی شاعری کے بانیوں کی صفِ اوّل میں ہیں۔ ہندی شاعری کو آزاد برَدازیٔ فکر و لطافتِ اظہار سے روشناس کر کے گونہ گوں ذہنی کیفیتوں کا متحمل بنانے کا سہرا پنت صاحب کو ہے۔

جناب پنت کے کلام میں جہاں ایک سمت فطرت کے مناظر کا نیا مشاہدہ نظر آتا ہے۔ وہیں دوسری سمت ان کا کلام روحانی وجدان کی نئی بلندیوں کو چھوتا ہے۔ نمایاں و پنہاں کے عمیق تریں احساس کی عکاسی ان کے یہاں بہ حیثیتِ اُتم موجود ہے۔

موصُوف کی پیدائش ۲۰ مئی ۱۹۰۰ء کو علاقہ کورمانچل کے خوبصورت مقام کوسانی (المورٹہ) میں ہوئی۔ 'پلّو' 'وینا' 'گرنتھی' اور 'گنجن' میں فطرت ان کی شاعری کا مرکز رہی۔ ازاں بعد 'یگ وانی' 'گرامیا' 'یگ پتھ' وغیرہ میں ان کے سخن نے عوامی زندگی کے مختلف پہلوؤں کو اپنا موضوع بنایا۔ مابعدالطبعیاتی احساس اور اروند کے فلسفے سے متاثر ان کی نظمیں 'سورن کرن' 'سورن دھولی' 'اُترا' 'اتیما' 'وانی' 'کلا اور بوڑھا چاند' 'ہری بانسری سنہری ٹیر' وغیرہ مجموعوں میں ہیں۔

پنت صاحب ہمہ گیر صلاحیتوں کے مالک ہیں۔ اُن کے افسانوں کا مجموعہ 'پانچ کہانیاں' منظوم ڈرامے 'رجت شکھر' 'شلپی' اور 'سوورن' عنوانات سے اور ڈرامہ 'جیوتسنا' نے بہت کافی مقبولیت حاصل کی ہے۔

بھارت ماتا

سُمترانندن پنت

ترجمہ اُردو: کرشن کمار

نادر ہند — دیہات نشیں

کشادہ دیدۂ نیلم مثال کھیتوں میں
حیاتِ خلق کا داماں سبزہ سے معمور
وہ آبِ گنگ و جمن پاک جو رہا نہیں ہے،
مجسمۂ وفا، بے نیازِ سوز و سرور

بہ نقشِ ہستی، مطلق نگہ، سکوتِ خواب
لبوں پہ ایک تبسم فسردہ لمحوں کا
ریاضِ ضبط، دلِ پُر وقار گیتی سا
کمالِ عرش یہ جس کا سفر زمیں پہ ہوا

چراغ تیس کروڑ اور جسم نیم عریاں
اسیرِ نانِ شبینہ فقط، یہ نورِ نظر
اور ایک جھونپڑی پتوں کی سر چھپانے کو
یا سر جھکائے ہوئے بیٹھ جانا زیرِ شجر۔

کہ ارتقاءِ جہاں سے کمال لاعلمی
نہ واقفیتِ تہذیب گو ہے ذوقِ حیات
تعصبات و روایات سے پابہ گرفت
بسی کہ چاند گہن میں ہو ایک سردی رات

نراس دل جو کھنڈر ہو چکا ہے صدیوں کا
زوالِ بختِ عوام اور زیستِ بے مایہ
حیاتِ نو کی ہو تعمیر کس طرح لیکن..
نہ علم و ہنر و شعور اور حکایتِ گیتا

خیال سچ شلا، امن عالمی مقصد
گو ایک عہد سے دیوار و در پہ آب نہیں
یہ لوگ ہوں گے کب آمادۂ عمل آخر؟ -
ہے شمعِ محفلِ ہستی بہ فکرِ دود نشیں

اسے طلب ہے کہ فولاد سی بنے تنظیم
حسین جسم، ضیائے وفا سے دل پُر نور
نثار کر تو سکیں خود کو زندگی کے لئے
یہ مطربۂ غمِ زیست وجد سے معمور ।

ಸುಮಿತ್ರಾನಂದನ ಪಂತ್

ಶ್ರೀ ಸುಮಿತ್ರಾನಂದನ ಪಂತರು ಆಧುನಿಕ ಹಿಂದಿ ಕವಿತೆಯ ಪ್ರವರ್ತಕರಲ್ಲಿ ಅಗ್ರಗಣ್ಯರು. ಹಿಂದಿ ಕವಿತೆಗೆ ಸ್ವತಂತ್ರ ಚಂದನೆ ಕೊಟ್ಟು ಸೂಕ್ಷ್ಮ ಅಭಿವ್ಯಂಜನೆಗಳಿಂದ ಸಂಶ್ಲಿಷ್ಟ ಮಾಡಿ ವಿಭಿನ್ನ ಭಾವನೆಗಳ ಅಭಿವ್ಯಕ್ತಿಗಳ ಸಾಧ್ಯತೆ ಮಾಡುವ ಶ್ರೇಯ ಶ್ರೀ ಪಂತರಿಗಿದೆ.

ಪಂತರ ಕಾವ್ಯದಲ್ಲಿ ಪ್ರಕೃತಿಯ ನವೀನ ಸಂಪರ್ಕಗಳ ಜೊತೆಯಲ್ಲಿ ಆಧ್ಯಾತ್ಮಿಕ ಚೇತನೆಗಳು ಸೂಕ್ಷ್ಮ ಮಧುರವಾಗಿವೆ. ಗೋಚರ- ಅಗೋಚರ ವಿಷಯಗಳ ಪ್ರಾಂಜಲ ಅನುಭೂತಿಯ ಚಿತ್ರಣಗಳು ಇವರ ಕಾವ್ಯಗಳ ಒಂದು ಪ್ರಮುಖ ವಿಶೇಷತೆ.

ಕವಿವರ ಪಂತರ ಜನ್ಮ ಮೇ ತಿಂಗಳು ೨೦ನೆಯ ತಾರೀಖು 1900 ರಲ್ಲಿ ಕೂರ್ಮಾಂಚಲ ಪ್ರದೇಶದ ರಮ್ಯ ಪ್ರಕೃತಿಯ ಮಡಿಲಲ್ಲಿ (ಅಲ್ಮೋಡಾ) ಆಯಿತು. ಇವರ ಸಾಹಿತ್ಯದಲ್ಲಿ ಪ್ರಕೃತಿ, ಜನಜೀವನದ ವಿಭಿನ್ನ ಸ್ವರೂಪ, ಆಧ್ಯಾತ್ಮಿಕ ಚಿಂತನೆ, ಅರವಿಂದರ ದರ್ಶನ ಮುಖ್ಯವಾಗಿ ಗೋಚರವಾಗುತ್ತದೆ.

ಪಂತರ ಪ್ರತಿಭೆ ಸರ್ವತೋಮುಖವಾಗಿದೆ. ಕತೆ, ನಾಟಕ, ನಿಬಂಧಗಳಲ್ಲೂ ಅವರ ಪ್ರತಿಭೆಯ ದರ್ಶನವಾಗುತ್ತದೆ. ಇತ್ತೀಚಿನ ಮಹಾಕಾವ್ಯ ಅವರನ್ನು ಮಹಾಕವಿಯಾಗಿ ಸ್ಥಾಪಿಸಿದೆ.

ಪಂತರ ಪ್ರಮುಖ ಗ್ರಂಥಗಳು- ಪಲ್ಲವ, ವೀಣಾ, ಗ್ರಂಥಿ, ಗುಂಜನ, ಯುಗವಾಣಿ, ಗ್ರಾಮ್ಯಾ, ಯುಗಾಂತ, ಸ್ವರ್ಣ- ಕಿರಣ, ಉತ್ತರಾ, ವಾಣಿ, ಇತ್ಯಾದಿ

ಭಾರತ ಮಾತೆ

- ಸುಮಿತ್ರಾನಂದನ ಪಂತ -

ಅನು: ಕಮಲ ನಾರಾಯಣ

ಭಾರತ ಮಾತೆ ಗ್ರಾಮ ವಾಸಿನಿ.
ಹೊಲಗಳಲ್ಲಿ ಹಸಿರು ಪಸರಿಸಿದೆ
ಜನ ಜೀವನವೆಲ್ಲ ಸಸ್ಯಶ್ಯಾಮಲ ವಾಗಿದೆ,
ಗಂಗೆ ಯಮುನೆಗಳಲ್ಲಿ ಕಂಬ ಶ್ರುಜಲವಿದೆ
ಶೀಲಮೂರ್ತಿ ಸುಖ ದುಃಖ ಉದಾಸಿನಿ.
ಮೌನ ಮುಗ್ಧತೆಯ ತಳೆದು ಪ್ರಭು ಪದ ನತಳಾಗಿ,
ಶೋಕ ನಿಶ್ಶಬ್ದತೆಯಲ್ಲಿ ಮುಂದಿನ ವಾಸನ ಗೆಂಡುಡು.
ಸಂಯಮ ತಪಸ್ಸುಗಳ ನೆಲೆಯಾಗಿ ನಿಂತವಳೆ.
ಸ್ವಾಭಿಮಾನ ಸೌಂದರ್ಯಗಳ ಭೂಮಿಕೆಯಾಗಿದ್ದವಳೆ,
ಮೂವತ್ತು ಕೋಟಿ ಮಕ್ಕಳು ಅರ್ಧ ನಗ್ನರು,
ಅನ್ನ ವಸ್ತ್ರ ಪೀಡಿತರು, ಓದು ಬರಹವಿಲ್ಲದವರು,
ಕಸ ಕಡ್ಡಿಗಳಿಂದ ನಿರ್ಮಿತ ಗುಡಿಸಲು ವಾಸಿಗಳು,
ತಲೆಯ ತಗ್ಗಿಸಿ ಮರದ ನೆರಳಲ್ಲಿ ಬಾಳುವವಳೆ.
ಜಗದ ಪ್ರಗತಿಯ ಗಾಳಿ ಬೀಸಿಲ್ಲ ಇಲ್ಲಿ,
ಸಭ್ಯತೆಯ ಸುಳಿವಿಲ್ಲ, ಸಂಸ್ಕೃತಿ ನೆಲವಿಲ್ಲ,
ರೂಢಿ ರೀತಿಗಳಿಂದ ಪ್ರಗತಿ ಕುಂಠಿತವಾಗಿ,
ದಾಸ್ಯ ಶೃಂಖಲೆಯಾದ ಶರದೇಂದು ರಾಹುವಿನಿಂದ,
ನೂರಾರು ವರ್ಷಗಳಿಂದ ನಿಂತು ಜಡವಾದವಳ,
ಗುರಿಯಿಲ್ಲದ ಜರ್ಝರಿತ ಜನ ಜೀವನ,
ಭೂ ಮಿತಿ ಜಾಗೆ ನಗರದ ನಿರ್ಮಾಣ ಸಾಮ್ರಾಜ್ಯ...?
ಜ್ಞಾನ ಮೂರ್ತಿಯಾಗಿರುವ ಗೀತೆಯ ಬೆಳಗಿದವಳೆ.
ಪಂಚಶೀಲ ರತಳಾಗಿ ಶಾಸ್ತ್ರ ಶಾಂತಿ ಪ್ರತಿಳಾಗಿ....
ಯುಗ ಯುಗಗಳಿಂದ ಕಳೆದುಂಟು ತಿರುವೆ,
ಇಂದು ಜನರೆಚ್ಚತ್ತು ಬದುಕಿ ಬಾಳುವರೋ?...
ಚಿಂತೆಯಲ್ಲಿ ಮುಳುಗಿದವಳೆ ಜೀವನದ ಬೆಳಗುವವಳೆ.
ಲೋಕ ಸಂಸ್ಕೃತಿಯ ಜೀವ ಪ್ರದು ನಿನಗೆ,
ಸೌಂದರ್ಯ ಭರಿತ ಜನ ಶ್ರದ್ಧೆ ಬೆಳಗದ ಮನಸ್ಸು,
ಭೂ ಜೀವನದಲ್ಲಿ ಎಡೆಬಿಡದ ಪರಾಕ್ರಮವೇ.
ಲೋಕದ ಕಲ್ಯಾಣದ ರವಿವಿಲಾಸಿನಿ.

सुमित्रा नंदन पंत

श्री सुमित्रा नंदन पंत छि मौजूदेह हिंदी शाइरी ह्यद पोछेर दिनि वाल्यत मंज़ पेश पेश। आज़ाद सोचुक ते लतीफ एहसासुक म्युल केरिथ हिंदी शइरी ब्युन ब्युन किस्मे क्यन नफसियाती ख्यालन हिंदि इज़हारुक ज़रिये वनावनस छु पंतजी नी दसे तुलमुत ।

अकि तरफे छु पंत जी संद्यन वोतन मंज कुदरत क्यन ब्युन ब्युन रंगन हुदं नौव इज़हार नज़ीर गछान ते ब्ययि अंदे छु तिमन वोतन मंज़ रूहानी एहसासिक नेवि नेवि थेंगि ति रौशन ते मुनव्वर सपदान लबने इवान । यहन्दियन वोतन हंज़े अख खास खूबी छे ये ज़ि यिमन मंज़ छु तमि एहसासुक ते तजरुबुक इज़हार युस एहसास ते तजरुबे द्रीठमान क्यहो अद्रींठ मसलन सने नह सैतँ ते तिम च़रचने सैतें पैदह सपदान छु ।

पंत जी छि वुह मे (20) मई 1900 ई० मंज कोरमाचल प्रदेश किस हसीन अलाके कौसाणी (अलमोडा) मंज़ थने पैमेत । पंतजी संज़ेन 'गुंजन' 'ग्रंथि' 'वीणा' ते 'पल्लव' वावेच्यन तखलीक़न मंज छु त्यहुंद खास मौजुव कुदरतक मंज़ेर आसमेत । तौपत छे 'युगवाणी', 'ग्राम्या', ते 'युग-पथ' वगैरह तखलीक़न मंज़ तिमौ सानि इसानी ज़िंदगीहिंद ब्युन ब्युन पहलू बयान केरमेति ।

रूहानी तजरुबौ ते एहसासौ निशि, क्यहो अरविंदु, संदि फलसफ निशि मुतासिर तेहिंद वॉथ छि 'स्वर्ण किरण' 'स्वर्ण धूलि', 'उत्तरा', 'अतिमा', 'वाणी', 'कला और बूढा चाँद', 'हरि बाँसुरी' ते 'सुन्हरी टेर' नावे च्यन तखलीक़न मंज़ यक्जा ।

पंतजी संज़ शुहरथ छे प्रेथ अदंह प्रजलविन। 'पाँच कहानियाँ' नावुक त्यहुंद कहानियन हुदं मजमुवे ते 'रक्तशिखिर', 'शिल्पी', ते 'सौवर्ण' नावक गीतिकाव्य (गनायया) ते अमि इलावो 'ज्योतिस्ना' नावुक ड्रामा छि: ब्रुंह हैं स्यठाह मशहूर सवदेमत ।।

भारत माता

मूल : सुमित्रा नंदन पंत
कश्मीरी रूपांतर : मक्खनलाल बेकस

सॉन्य भारत मोज गामन मंज बसिथ,
सब्ज ज़ाराह, फसले अँबाराह खलन,
लुख छि हलमन क्येथ भरिथ धानिक अंबर,
श्रूचे पूवदेह गंगायि तै जमनायि आब,
मेहनतेक गुमे प्यर लुकन ह्यंद यथ अंदर।
माजि हंजे मूरथ छे कोचाह पूवज़े ते ब्वज़े,
प्रेथ अकिस दादयेन दुखन ग्वसि व्यन थवान।।

तस छि लब खामोश, जन ख्वाबस अंदर,
पूवज़े नज़र ब्वुन कुन छे देयि पादन नमान,
दव्ख ते छव्ख अंदरयुम वुठन प्यठ तेस विसान,
तप करान ज़न पान स्व छे कौवू करिथ,
दिल वसीह तस, मन छु तस कूताह अनीख,
ज़न छे स्वर्गच् शूब, धरती प्यठ बंसिथ।।

शुरे अहिंदें त्रे करोर, अडि न्यथे नेन वदन,
फाके फेर, स्यदें ब्वदिं, छि यिम अछि गाशे रव्स्त,
पहरि छेयि पश दिथ ते मेचि् हिदं हुजरे यिम,
मोज कले न्वमरिथ विहिथ कुछ छायि तल।

आलमेकि अंदाजे निशि ग्वसि. बेनियाज़,
पथ स्यठाह, वकतस मगर, मच् जिंदगीय,
नाले गामचे बेडि रसमन हंज़े यमिस
लूसमेच्, लोगमुत छु ज़न तसे जूनि ग्रोन।

वाँसि छंद्रयोमुत ते मन्स्योमुत ये मन,
यस मशिथ मंज़िल, ते व्यसरयोमुत छु ह्यसे,
सपदि किथ केन पैदह् व्ययि नेव जिंदगी,
लागि किथे पाँठे जॉमे नँव वुथराथ नाले,
अक़लि गढ़े यलि आसि गीता हावि वथ।।

पंच शीलस प्यठ छे तस यछ् पछ् स्यठाह,
प्वुँख रटान अमनुक ते काँछानं रुतं ब्येयन,
छुस मगर घरे छवुन छु ज़न देयिवुन फ़िज़ा
कर सना येयि ह्येस लुकन, कर फेरि वुंछे
बस छे यी सोबान, ज़ि क्यथे फवीले जिंदगी,
मोज़ काँछ़ान असे गछौ आसेन समिथ,
तन स्यठाह मज़बूत, मन श्रद्धायि हवुत,
आँथि रुव्स्तीय लोल, युसे अरपण करान,
युसे रछ़ान लूकन, ते, अमरयथ बोगरान!!

8—1 C, H, D,/64,

શ્રી સુમિત્રાનંદન પંત

શ્રી. સુમિત્રાનંદન પંત આધુનિક હિંદી કવિતાના પ્રવર્તકોમાં અગ્રગણ્ય છે. સ્વતંત્ર ચિંતન તથા સૂક્ષ્મ અભિવ્યંજનાઓ સંશ્લિષ્ટ કરીને હિંદી કવિતાને ભિન્ન અભિવ્યક્તિઓનું માધ્યમ બનાવવાનું શ્રેય પંતજીનું છે.

પંતજીનાં કાવ્યોમાં પ્રકૃતિની આત્મીયતાભર્યા અનુભવનું નિરૂપણ અને વિશ્વચેતનાનું અભિલાઈભર્યું દર્શન—એ બે વાનાં એમનામાં તરત આગળ તરી આવે છે. ખરું જોતાં આમાંની બીજી વસ્તુ પ્રકૃતિચિત્રણ દ્વારા પણ પ્રગટ થતી હોય છે—ગોચર અગોચર વિષયોની પ્રાંજલ અનુભૂતિઓ એમના કાવ્યોમાં દૃષ્ટિગોચર થાય છે.

કવિ પંતનો જન્મ 20મી મે, 1900માં થયો હતો. કવિનું જન્મસ્થાન કૌસાની. આંખ સામે, કાકગતિએ પંદરેક માઈલ દૂર, હિમાલયની સ્ફટિક શુભ્ર શિખરમાળા. "અડીસો માઈલ સુધી પથરાયેલી હિમાદ્રિમાળાનાં એકી સાથે દર્શન થઈ શકે એવાં કૌસાની જેવાં સ્થળ ઓછાં જ હશે. 'પલ્લવ', 'વીણા', 'ગ્રંથિ', 'ગુંજન'માં પ્રકૃતિ તેમના કાવ્યોનું મુખ્ય અંગ છે. ત્યારપછી 'યુગવાણી', 'ગ્રામ્યા', 'યુગપથ', આદિ કાવ્યસંગ્રહોમાં માનવજીવનના ભિન્ન ભિન્ન સ્વરૂપોનું આલેખન જોવા મળે છે. આધ્યાત્મિક અભિવ્યંજનાઓ તથા અરવિંદ દર્શનથી પ્રભાવિત તેમની કવિતાઓ 'સ્વર્ણ કિરણ', 'સ્વર્ણધૂલિ', 'ઉત્તરા', 'અતિમા', 'વાણી', 'કલા ઔર બૂઢા ચાંદ', 'હરી બાંસુરી' અને 'સુનહરી ટેર' કાવ્ય સંગ્રહોમાં સંગ્રહીત છે.

પંતજીની પ્રતિભા સર્વતોમુખી છે. 'પાંચ કહાનિયાં' નામનો વાર્તાસંગ્રહ 'રજતશિખર,' 'શિલ્પી', 'સૌવર્ણ' નામક કાવ્યરૂપક અને 'જ્યોત્સના' નાટ્યકૃતિ પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી ચૂક્યાં છે.

ભારતમાતા

સુમિત્રાનંદન પંત

અનુવાદિકા : વર્ષા દેસાઈ

ભારતમાતા ગ્રામવાસિની

ખેતર પર રહી પાથરી દષ્ટિ શ્યામલ
અન્ન ભર્યાં જગજીવન આંચલ :
ગંગાયમુનામાં શુચિ ક્ષમજલ,
શીલમૂર્તિ, સુખ-દુઃખ ઉદાસિની !

સ્વપ્ન મૌન, પ્રભુપદ નત ચિતવન
હોઠ ઉપર હસતી દુઃખની ક્ષણુઃ
ધરા સમું તપનિશ્ચલ અંતર,
સ્વર્ગ કલા ભૂમિપથ-પ્રવાસિની !

ત્રીસ કોટિ, સુત, અર્ધનગ્ન તન
અન્ન-વસ્ત્ર-હીન-અજ્ઞાની જન,
મૂઢ઼ા ઘાસ ભર્યું ઘર-આંગણ,
શીશ નમે, તરુતલ નિવાસિની !

વિશ્વપ્રગતિથી સાવ અપરિચિત
અર્ધસત્ય જીવનરુચિ સંસ્કૃતઃ
રૂઢિબંધનોથી અતિ કુંઠિત
રાહુગ્રસિત શરદેન્દુહાસિની !

સદીઓથી ખંડેર નિષ્ક્રિય મન,
લક્ષ્યહીન જર્જર જનજીવન,
કેમ બને ભૂ-રચના નૂતન !
જ્ઞાન-મૂઢ ગીતા પ્રકાશિની !

પંચશીલરત, વિશ્વશાંતિવ્રત
યુગયુગથી આંગણ શ્રીવંચિત,
ક્યારે થશે જન ઉદ્યત-જાગ્રત ?
ચિંતનમગ્ન જીવન વિકાસિની !

કરવું પડશે અતૂટ સંગઠન,
સુંદર તન, શ્રદ્ધાશોભિત મન.
ભૂમિજીવન પ્રતિ અથક સમર્પણ,
લોક-કલામયી, રસ વિલાસિની !

திரு. சுமித்ராநந்தன் பந்த்

திரு சுமித்ராநந்தன் பந்த் இக்கால ஹிந்தி மொழிக் கவிதையின் படைப்பாளர்களில் தலைசிறந்தவர். ஹிந்திக் கவிதைக்குச் சுதந்திர சிந்தனையும் கம்பீரமான கருத்துக்களும் கொடுத்து, அதனை நம் மனத்தை எழுப்பும் பலவிதமான பாவனைகளை வெளிப்படுத்தும் சாதனமாக்கிய புகழ் பந்த் அவர்களுக்கு உரியது.

கவிஞர் பந்த் எழுதிய காவியத்தில் ஒருபுறம் பிரகிருதியின் பலவிதமான ரூபங்களின் நவீன ஆராய்ச்சி காணப்படுகிறது. அதே சமயத்தில் மறுபக்கம் ஆன்மீக உணர்வின் உயர்ந்த ரூபத்தையும் அவர் காவியத்தின் மூலமாக வெளிப்படுத்தியிருக்கிறார். காட்சிப் பொருள் கருத்துப் பொருள் ஆகியவற்றை நன்கு உணர்ந்து கூறும் அநேக வர்ணனைகள் அவர் காவியத்தின் சிறந்த பகுதி ஆகும்.

கவிஞர் பந்த், கூர்மாசல் பிரதேசத்தின் கௌஸானி (அல்மோடா) என்ற மிக அழகான இடத்தில் 1900-ம் ஆண்டு மே மாதம் 20-ம் தேதி பிறந்தார். கவிஞர் பந்தின் காவியத்தில் பிரகிருதி ஒரு சிறந்த அரசமார்க விளக்கத்துவதை அவருடைய பல்லவ, வீணா, கிரந்தி, குஞ்ஜன் முதலிய நூல்களில் காணலாம். மேலும் யுகவாணி, கிராம்யா, யுகாந்த் ஆகிய நூல்களில் மனித வாழ்க்கையின் பல ரூபங்கள் காணப்படுகின்றன. ஆன்மீக உணர்வுகளையும், அரவிந்த மத சம்பந்தமான கருத்துக்களையும் கொண்ட அவர் கவிதைகள் ஸ்வர்ண-கிரண், ஸ்வர்ண-தூலி, உத்தரா, அதிமா, வாணி, கலா ஔர் பூடா சாந்த், ஹரிபாஸுரி : ஸுநஹரி டேர் ஆகிய நூல்களில் தொகுக்கப்பட்டிருக்கின்றன.

பந்தின் அறிவுத் திறன் பல திசைகளிலும் பரவி உள்ளது. அவரது பாஞ்ச் கஹானியா (ஐந்து கதைகள்) என்ற சிறு கதைத் தொகுதி, ரஜத் சிகர், சில்பீ, ஸௌவர்ண என்ற காவிய நாடகங்கள், ஜ்யோத்ஸ்னா என்ற நாடகம் முதலியவை நிறைந்த புகழுடன் விளங்கின.

பாரத மாதா

திரு சுமித்ராநந்தன் பந்த்

தமிழ் மொழிபெயர்ப்பு ஜமுனு

கிராமவாசி நீ பாரதத் தாயே!

வயல்வெளியிலே நிறைபசுமை பரந்திருக்கத் தாவும்
வளத்துடனே நெற்கதிர்கள் நாடெங்கும் மேவும்
வியர்வையது யமுனை கங்கை ஆறுகளாய்ப் பாயும்
வெறுத்திட்டாய் இன்பதுன்பம் ஒழுக்கமெனும் மூர்த்தி!

கனவைப்போல் மௌனமாய்க் கடவுள் திரு வடிவைக்
கருதினாய்: துன்பமெல்லாம் கண்டு நகைத்திடுவாய்
வனமேவும் தவசியைப் போல் அடங்கிடலாய்; புவியில்
வாழ் பொறுமை யுள்ளவுலகினை வானுலகக் கலையே!

முப்பதெனும் கோடி மக்கள் முன்னேறக் கல்வி
முழுவதுவும் உடையதுவும் இல்லாமல் அலைவார்
தப்பு நிறை சிறு குடிசை வாழ்வோரைக் கண்டு
தருவடியில் வாழும் நீ தனித்த துன்பம் அடைவாய்!

உலகத்தின் முன்னேற்றம் ஒன்றும் அறியாமல்
உயர் வாழ்வின் சுவையறியாதும் ஒரு பண்பும் இன்றி
பல பழைய வழக்கத்தால் பாழ்படுதல் கண்டு
பாம்பு விழுங்கும் மதி போல பால்ஒளி மங்கிடுவாய்!

பலபல நூற்றாண்டுகளாய் பாழ்பட்ட சமூகம்
பாருக்குச் சுறிச் கோள முயற்சி பற்றும் மாந்தர்
நலம் நிறையும் புதுப்பண்பாட்டு நாட்டும் அறிவில்லா
நாட்டினர் தம் தாயே! நீ நயந்துரைத்தாய் கீதை

பஞ்சசீலத் தொழுக்கில் பாடுபட்டு முழுகிப்
பாரமதி கண்டு பொலிவிழந்தார் நின் மக்கள்
தஞ்சமளித் தன்னோர்தம் முன்னேற்ற வளர்ச்சி
தந்திடுக் கவலையுறும் பாரதத்தாய் நீயே!

மக்களிடம் உடல் உறுதி வனப்புடைய தேகம்
மாசில்லா உற்சாகம் நிறை மனவலிமையும் தியாகம்
தக்கபெரு நாட்டிற்குச் செய் பண்பும் தழைத்தால
தாயவள் தான் விரைவிலினி தனியின்பம் அடைவாள்!

సుమిత్రానందన్ పంత్

శ్రీ సుమిత్రానందన పంత్, ఆధునిక హిందీ కవితా ప్రవర్తకులలో అగ్రగణ్యుడు. పంత్ గారికి హిందీ కవిత్వమును, స్వతంత్ర చింతనము, సూక్ష్మాభివ్యంజనములతో సంశ్లిష్టమొనర్చి, విభిన్న మానసికాభివ్యక్తులకు మాధ్యమముగా నేర్పరచిన ఘనత కలదు.

పంత్ జీ కావ్యములో, ఒకవైపు ప్రకృతిరూపసులకు క్రొత్త పర్యవేక్షణ్యము కానవచ్చిన, మరియొకవైపు ఆధ్యాత్మిక చేతనయొక్క నవ వికాస శిఖరములు కూడ ఆయన కావ్యవాణిచే ముఖరితములైనవి. ప్రత్యక్షాప్రత్యక్ష విషయానుభూతులను సు[illegible]గా చిత్రించుట ఆయన కవితా శిల్పమందలి ప్రధాన వైలక్షణ్యము.

పంత్ జీ క్రీ. శ. 1900 సంవత్సరము మే నెల 20వ తారీఖున కూర్మాచల సీమకు చెందిన, ప్రకృతి రామణీయకమును జెందు కౌసాన (అల్మోరా)లో జన్మించెను. ఆయన కావ్యకృతులైన 'పల్లవ్' 'వీణా' 'గ్రంథి' 'గుంజన్'ల యందు ప్రకృతి వర్ణన ప్రధానమైన కావ్యాంగముగా శోభించినది. అటుపిమ్మట 'యుగవాణి' 'గ్రామ్య' 'యుగపథ్' మొదలగు వానిలో సాధారణ జనజీవనముయొక్క విభిన్న స్వరూపములు మూర్తికట్టి మనకు గోచరించును. ఆధ్యాత్మికాభివ్యక్తి మరి అరవింద దర్శనముచే ప్రభావితములైన ఆయన కావ్యకృతులు 'స్వర్ణ కిరణ్' 'స్వర్ణ ధూళి' 'ఉత్తరా' 'అతిమా' 'వాణీ' 'కళ—బూఢా చాంద్' 'వాంకీ శాంఖురి' 'సునహరి చేర్' అను వానియందు సంగృహీతములై యున్నవి.

పంత్ జీ ప్రతిభ సర్వతోముఖీనము. 'పాంచ్ కహానియాఁ' అను కథాసంగ్రహము, 'రజత శిఖర్' 'శిల్పి' 'సౌవర్ణ' అను కావ్యరూపకములు 'జ్యోత్స్న' అను నాట్యకృతి పర్యాప్త ప్రసిద్ధిగాంచి రాణించినవి

భారతమాత

మూలము: సుమిత్రానందన పంత్

అనువాదం: అయాచితుల హనుమచ్ఛాస్త్రి

భారతమాతా! గ్రామవాసినీ!
మడి, పడి పర్వైన శ్యామల దృక్కులు
శస్య భరితజన జీవ నాంచలములు
గంగా యమునల శుచి శ్రమ జలములు,
శిలమూర్తి! సుఖదుఃఖ హాసినీ!
స్వప్నం! మౌనం! ప్రభు వదన నమతి
సంకట వేళాస్ఫుట మధు హాసనం!
తపస్సంయమం ధాత్రీ హృదయం!
స్వర్గ కళా. భూపథ ప్రవాసినీ!

త్రింశత్కోటి సుతులర్ధ నగ్నులు
అక్షితా నగ్నులు. పుదాభుగ్నులు.
ఎండు టాకుల. పొఅరు గుబురు లిండ్లు
పూరి గుడిసెల. పెంపజు ముంగిళ్ళు
ప్రణత శీర్ష తరుతల వాసిని!
విశ్వ పురోగతి తెలియని అజ్ఞుల
గిరిగీచిన కుంఠిత జీవన గతి
మిడి మిడి సభ్యత. మిడి మిడి జ్ఞానం
మిడి మిడి జీవనరుచి సంస్కారం
రాహు గ్రసిత శర దిందు హాసినీ!

జర్జర జన జీవనమిది! నిష్క్రియ
చేతస్కము. లక్ష్యము లేనిది. శత
శతాబ్ద శిథిల భగ్నావ శేషం!
ఏవిధమో? నూతన భూశిల్పం!
జ్ఞాన మూఢ గీతా ప్రకాశిని!
పంచ శీలరత. విశ్వశాంతి వ్రత
భారత జనత. యుగ యుగాలుగానె.
శ్రీ విహీన గృహాంగణ మెన్నడో
ఉర్వ్య జ్ఞాగ్రద వస్త్రాక మోట?
శోచమగ్న జీవన వికాసినీ!

స్వాహా సమైక్యత వలయున్. వలయున్
సుందర తనువున్. శ్రద్ధా దీపిత
మనమున్. వలయున్. వలయున్ ప్రార్థిప
[illegible]వన విధాన మర్పిత జనమున్!
లోక [illegible]భామయి! [illegible] విలాసినీ!

ਸੁਮਿਤਰਾਨੰਦਨ ਪੰਤ

ਸ੍ਰੀ ਸੁਮਿਤਰਾਨੰਦਨ ਪੰਤ ਆਧੁਨਿਕ ਹਿੰਦੀ ਕਵਿਤਾ ਦੇ ਉਸਰੱਈਆਂ ਵਿਚੋਂ ਮੋਢੀ ਗਿਣੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ । ਹਿੰਦੀ ਕਵਿਤਾ ਨੂੰ ਸੁਤੰਤਰ ਚਿੰਤਨ ਅਤੇ ਸੂਖਮ ਸੁਝਾਵਾਂ ਨਾਲ ਸੰਜੋਕੇ ਵੱਖ ਵੱਖ ਪਰਕਾਰ ਦੇ ਮਾਨਸਿਕ ਪ੍ਰਗਟਾਵਿਆਂ ਦਾ ਮਾਧਿਅਮ ਬਨਾਉਣ ਦਾ ਸਿਹਰਾ ਪੰਤ ਜੀ ਦੇ ਸਿਰ ਹੈ।

ਪੰਤ ਜੀ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿਚ ਜਿਥੋਂ ਇਕ ਪਾਸੇ ਪ੍ਰਾਕਿਰਤੀ ਦੇ ਰੂਪਾਂ ਦਾ ਨਵਾਂ ਅਧਿਅਨ ਹੈ ਉਥੇ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਅਧਿਆਤਮਿਕ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਨਵੇਂ ਵਿਕਾਸ ਦੀ ਸਿਖਰ ਵੀ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿਚ ਪਰਤੱਖ ਹੈ। ਦਿੱਖ ਅਦਿੱਖ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਦੇ ਤਰਲ ਅਨੁਭਵਾਂ ਦਾ ਚਿਤਰਨ ਵੀ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਦੀ ਮੁਖ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਹੈ।

ਕਵੀ ਪੰਤ ਦਾ ਜਨਮ 20 ਮਈ, ਸੰਨ 1900 ਈ: ਵਿਚ ਕੁਰਮਾਚਲ ਪਰਦੇਸ਼ ਦੀ ਸੁੰਦਰ ਤੇ ਰਮਣੀਕ ਧਰਤੀ ਕੋਸਾਨੀ (ਅਲਮੋੜਾ) ਵਿਚ ਹੋਇਆ। ਪਲੱਵ, ਵੀਣਾ, ਗ੍ਰੰਥਿ ਔਰ ਗੁੰਜਣ ਵਿਚ ਪ੍ਰਾਕਿਰਤੀ ਪੰਤ ਜੀ ਦੇ ਕਾਵਿ ਦਾ ਪਰਮੁਖ ਅੰਗ ਰਹੀ । ਇਸ ਪਿਛੋਂ ਯੁਗਵਾਣੀ, ਗ੍ਰਾਮਿਆ, ਯੁਗਪਥ ਆਦਿ ਵਿਚ ਜਨਜੀਵਨ ਦੇ ਵੱਖ ਵੱਖ ਰੂਪ ਵਿਖਾਈ ਦਿੰਦੇ ਹਨ । ਅਧਿਆਤਮਿਕ ਸੁਭਾਅ ਅਤੇ ਅਰਵਿੰਦ ਦਰਸ਼ਨ ਤੋਂ ਪਰਭਾਵਿਤ ਉਨਾਂ ਦੀਆਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਸਵਰਨ-ਕਿਰਨ, ਸਵਰਨ ਧੂਲਿ, ਉੱਤਰਾ, ਅਤਿਮਾ, ਵਾਣੀ, ਕਲਾ ਔਰ ਬੂੜਾ ਚਾਂਦ, ਹਰੀ ਬਾਸੁਰੀ : ਸੁਨਹਰਿ ਅਖਰੇ ਸੰਗ੍ਰਹ ਵਿਚ ਅੰਕਿਤ ਹਨ ।

ਪੰਜ ਜੀ ਦੀ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਸਰਬਮੁਖੀ ਹੈ। ਪੰਜ ਕਹਾਣੀਆਂ ਨਾਂ ਦਾ ਕਹਾਣੀ ਸੰਗ੍ਰਹ ਤੇ ਰਜਤ ਸ਼ਿਖਰ, ਸ਼ਿਲਪੀ, ਸੋਵਰਣ ਨਾਮ ਦਾ ਕਾਵਿ-ਰੂਪਕ ਤੇ ਜਯੋਤਸਨਾ ਨਾਟਕ ਕ੍ਰਿਤ ਕਾਫੀ ਪਰਸਿਧਤਾ ਪਰਾਪਤ ਕਰ ਚੁਕੇ ਹਨ।

ਭਾਰਤ ਮਾਤਾ

ਮੂਲ : ਸੁਮਿਤ੍ਰਾਨੰਦਨ ਪੰਤ
ਕਾਵਿ-ਅਨੁਵਾਦ : ਕ੍ਰਿਸ਼ਨ ਅਸ਼ਾਂਤ

ਭਾਰਤ ਮਾਤਾ ਪਿੰਡਾਂ ਦੇ ਵਿਚ ਵੱਸਣ ਵਾਲੀ !
ਖੇਤੋਂ ਦੇ ਵਿਚ ਫੈਲੇ ਨੇ ਸੁਰਮਈ ਨਜ਼ਾਰੇ
ਜਿਸ ਦੀ ਗੋਦ਼ੀ ਵਿਚ ਹਰਿਆਲੀ ਠਾਠਾਂ ਮਾਰੇ
ਵਹਿਣ ਪਵਿਤਰ ਗੰਗਾ ਜਮਨਾ ਦੇ ਜਲ ਧਾਰੇ
ਦੁਖ ਸੁਖ ਤਾਈਂ ਜਿਸਨੇ ਇਕੋ ਕਰਕੇ ਮੰਨਿਆ !
ਇਸ਼ਵਰ ਧਿਆਨ ਮਘਨ ਚੁੱਪ ਸੁਪਨੇ ਵਰਗੀ ਧਾਰੀ
ਹੋਠਾਂ ਤੇ ਦੁੱਖ ਦੇ ਛਿਨ ਦੀ ਮੁਸਕਾਨ ਪਿਆਰੀ
ਸੰਜਮ ਤਪ ਕਾਰਨ ਮਨ ਧਰਤੀ ਜਿਉਂ ਧਲਕਾਰੀ
ਸਵਰਗ ਕਲਾ ਵਾਲੀ, ਵਾਸਾ ਭੰਏਂ ਤੇ ਚੁਣਿਆ !
ਤੀਹ ਕੋਟੀ ਜਿਸਦੇ ਅੱਧ ਨੰਗੇ ਪੁਤ੍ਰ ਪਿਆਰੇ
ਅਣਪੜ੍ਹ, ਅੰਨ ਤੇ ਹਰ ਵਸਤੂ ਦੀ ਥੁੜ ਦੇ ਮਾਰੇ
ਘਾਹ ਫੂਸ ਦੀਆਂ ਕੁਲੀਆਂ ਅੰਦਰ ਰਹਿਣ ਵਿਚਾਰੇ
ਸੀਸ ਝੁਕਾ, ਰੁਖਾਂ ਦੀ ਛਾਵੇਂ ਉਸੇ ਮਾਂ ਵਸੇਰਾ ਕਰਿਆ !
ਵਿਸ਼ਵ ਉੱਨ੍ਤੀ ਤੋਂ ਗਾਫਿਲ ਅਪਣੇ ਵਿਚ ਖੋਈ
ਅੱਧ-ਸਭਿਆਂ, ਜੀਵਨ ਰੁਚੀ ਪੁਰਾਤਨਤਾ ਦੇ ਵਿਚ ਸਮੋਈ
ਟੂਟੀਆਂ ਰੀਤਾਂ ਦੇ ਸਗ ਚਾਲ ਹੈ ਜਕੜੀ ਹੋਈ
ਰਾਹੂ ਗਰੱਸੀ, ਮੂੰਹ ਤੇ ਠੰਡੇ ਚੰਦਰਮਾ ਜਿਹਾ ਹਾਸਾ ਖਿੜਿਆ !
ਮਨ ਕਿਰਿਆ ਤੋਂ: ਰਹਿਤ ਜਿਵੇਂ ਸਦੀਆਂ ਦਾ ਖੰਡਰ
ਜੀਵਨ ਅਤ ਜ਼ੰਗਾਲਿਆ ਲਖਸ਼ ਨਾ ਜਿਸਦੇ ਅੰਦਰ
ਉਸ ਥਾਂ ਨਵੀਂ ਕੋਈ ਭੂ ਰਚਨਾ ਕੀ ਹੋਵੇ ਫਿਰ
ਗਿਆਨ ਮੂੜ ਅਜ ਹੋਈ ਜਿਸ ਗੀਤਾ ਨੂੰ ਰਚਿਆ !
ਪੰਚਸ਼ੀਲ ਦੀ ਪ੍ਰੇਮਣ, ਵਿਸ਼ਵ ਸ਼ਾਨਤੀ ਚਾਹਵੇ
ਜਿਸਦੇ ਵਿਹੜੇ ਜੁਗਾਂ ਤੋਂ ਹੀ ਇਕ ਵੀਰਾਨੀ ਕਿਕਲੀ ਪਾਵੇ
ਉਸਦੀ ਸੁਤੀ ਜਨਤਾ ਖਬਰੇ ਕਦੋਂ ਹੋਸ਼ ਦੇ ਅੰਦਰ ਆਵੇ
ਇਸੇ ਸੋਚਾਂ ਅੰਦਰ ਜਾਏ ਜੀਵਨ ਲੰਘਿਆ !
ਉਸ ਮਾਤਾ ਨੂੰ ਚਾਹੀਏ ਲੋਹੇ ਜਿਹੀ ਏਕਤਾ
ਸੁੰਦਰ ਤਨ ਤੇ ਮਨ ਜਿਉਂ ਸ਼ਰਧਾ ਦੀਪਕ ਬਲਦਾ
ਪ੍ਰਿਥਵੀ ਜੀਵਨ ਪ੍ਰਤੀ ਅੱਥਕ ਸਮਰਪਣ ਸ਼ਰਧਾ
ਲੋਕ ਕਲਾਵਾਂ ਵਾਲੀ ਤੇ ਜੀਵਨ ਵੀ ਹੋਏ ਵਿਲਾਸਾਂ ਭਰਿਆ ।

সুমিত্রানন্দন পন্ত

শ্রীসুমিত্রানন্দন পন্ত আধুনিক হিন্দী কবিতার প্রবর্ত্তকদের অগ্রগণ্য। হিন্দী কবিতাকে স্বতন্ত্র চিন্তন তথা সূক্ষ্ম অভিব্যঞ্জনার সঙ্গে বিভিন্ন মানসিক অভিব্যক্তির মাধ্যমের রূপ দেওয়ার শ্রেয় শ্রীপন্তের।

শ্রীপন্তের কাব্যে একদিকে যেমন প্রকৃতির রূপের পর্য্যবেক্ষণ দেখা যায়, সেখানেই অন্যদিকে আধ্যাত্মিক চেতনার নতুন বিকাশ-শিখরও তাঁর কাব্যে মুখরিত হয়েছে। গোচর অগোচর প্রাঞ্জল অনুভূতির চিত্রণ তাঁর কাব্যের প্রমুখ বৈশিষ্ট্য।

1900 খৃষ্টাব্দের 20শে মে কুর্মাচলের মনোরম রম্যস্থলী কসৌলীতে (আলমোড়া) কবি পন্ত জন্ম গ্রহণ করেন। পল্লব, বীণা, গ্রন্থি ও গুঞ্জনে প্রকৃতি পন্তের কাব্যে প্রাধান্য পেয়েছে। পরবর্ত্তীকালে যুগবাণী, গ্রাম্যা, যুগপথ ইত্যাদি কাব্যে জন জীবনের বিভিন্ন রূপ পরিলক্ষিত হয়। আধ্যাত্মিক অভিব্যঞ্জনা ও অরবিন্দ দর্শন প্রভাবিত তাঁর কবিতাগুচ্ছ স্বর্ণ-কিরণ, স্বর্ণ-ধূলি উত্তরা, অতিমা, বাণী, কলা আউর বূঢ়া চাঁদ, হরী বাঁশুরী, সুনহরী টের প্রভৃতিতে সংকলিত হয়েছে।

শ্রীপন্তের প্রতিভা সর্ব্বতোমুখী। 'পাঁচ কহানিয়াঁ' নামক সংগ্রহ তথা রজত শিখর, শিল্পী, যৌবন নামক কাব্যরূপক তথা জ্যোৎস্না নাট্যকৃতি যথেষ্ট প্রসিদ্ধি পেয়েছে।

ভারত মাতা

সুমিত্রানন্দন পন্ত
অনুবাদ : কাঞ্চন মুখোপাধ্যায়

ভারত মাতা গ্রাম বাসিনী।

মাঠে-ঘাটে ছড়ানো দৃশ্য শ্যামল
শস্য ভরা জনজীবন আঁচল,
গঙ্গা যমুনাতে শুচি শ্রমজল
শীর্ণ মূর্ত্তি, সুখ-দুখ উদাসিনী।

স্বপ্ন মৌন, প্রভুপদ নমিত নয়ন,
ওষ্ঠেতে হাসে দুখময় ধন,
তপ সংযম ধরিত্রী মন,
স্বর্গকলা ভূ-পথ প্রবাহিনী।

ত্রিশ কোটি সন্তান, অর্দ্ধনগ্ন তন,
অন্ন বস্ত্র পীড়িত নিরক্ষর জন,
খড়ে ছাওয়া ঘরের অঙ্গন,
প্রণত শীর্ষ তরুতল নিবাসিনী।

বিশ্ব প্রগতির সাথে সে অপরিচিত,
অর্দ্ধ সভ্য, জীবন রুচি সংস্কৃত,
রীতি-রেওয়াজে গতি তার কুণ্ঠিত,
রাহু গ্রসিত শরদেন্দু হাসিনী।

শতাব্দীর ধ্বংসাবশেষ, নিষ্ক্রিয় মন,
লক্ষ্যহীন, জর্জর জনজীবন,
কেমনে হইবে নব পৃথিবী পত্তন, ...
জ্ঞান মূঢ় গীতা প্রকাশিনী।

পঞ্চশীল রত, বিশ্বশান্তি ব্রত, ...
যুগ যুগ হতে গৃহ অঙ্গন শ্রীহত,
কবে হবে জন উদ্যত জাগ্রত? ...
চিন্তা মগ্ন জীবন বিকাশিনী।

চাই তার লৌহ সংগঠন,
সুন্দর তন, শ্রদ্ধা দীপিত মন,
ভূ জীবনের প্রতি সম্যক সমর্পণ,
লোক কলাময়ী, রস বিলাসিনী!

सुमित्रानंदन पंत

श्री सुमित्रानंदन पंत आधुनिक हिंदी कवितेच्या प्रर्वतकांमध्यें अग्रणी आहेत. हिंदी कवितेला स्वतंत्र चिंतन आणि सूक्ष्म अभिव्यंजनेने संश्लिष्ट करून, विभिन्न मानसिक अभिव्यक्तींचे माध्यम बनविण्याचे श्रेय पंत यांना आहे.

पंताच्या काव्यांत एकीकडे निसर्गाच्या रूपांचे नवीन पर्यवेक्षण दिसून येते; व दुसरीकडे आध्यात्मिक चेतनेचे नवे विकास-शिखर त्यांच्या काव्य-वाणींत प्रकट झाले आहेत. गोचर-अगोचर विषयांच्या प्रांजल अनुभूतींचे चित्रण त्यांच्या काव्याचे एक मुख्य वैशिष्टय.

कवि पंताचा जन्म 20 मे, 1900 खिस्ताब्दांत कूर्मांचल प्रदेशाच्या मनोरम रम्यस्थली कौसानी (अलमोड़ा) येथे झाला त्यांच्या पल्लव, वीणा, ग्रंथि आणि गुंजन या काव्यसंग्रहांतून प्रमुख काव्य विषय निसर्ग होय. त्यानंतर युगवाणी, ग्राम्या युगपथ इत्यादींत जनजीवनाचे विभिन्न स्वरूप परिलक्षित होते. आध्यात्मिक अभिव्यंजनेचे व अरविंद तत्त्वज्ञानाने प्रभावित त्यांच्या कविता स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, उत्तरा, अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद, हरी बाँसुरी : सुनहरी टेर मध्यें संकलित आहेत.

पंतांची प्रतिभा सर्वतोमुखी आहे. पाँच कहानियाँ नांवाचा एक लघुकथा-संग्रह आणि रजत-शिखर, शिल्पी, सौवर्ण नावाचे काव्यरूपक व ज्योत्स्ना नावाची नाटय-कृति बरीच प्रसिद्ध आहेत.

भारत माता

सुमित्रानंदन पंत

अनुवाद : प्रभाकर माचवे

भारत माता ग्रामवासिनी !

शेतांतुन पसरे दृग-श्य-मल
शस्यपूर्ण जन-जीवन अंचल
गंगे-यमुनेतुंन शुचि श्रम-जल
शीलमूर्ति सुखदुख उदासिनी !

स्वप्न मौन, प्रभुपदनत लोचन
ओठांवर हसरे दुःखी क्षण
संयम तप धरणी जैसे मन
स्वर्ग कला, भू-पथ प्रवासिनी ।

तीस कोटि सुत, अर्धनग्न तन
अन्न वस्त्र शिक्षण वंचित जन
तरु, गवत कुडाचे घर अंगण
प्रणत शीर्ष तरु तल निवासिनी !

विश्व प्रगति पासून अपरिचित
अर्ध सभ्य, जीवन रुचि संस्कृत
रूढ़ि-रीतिने गति ही कुंठित
राहुग्रसित शरदेन्दु-हासिनी

शतकांचे खंडित निष्क्रिय मन
लक्ष्यहीन, जर्जर जन जीवन
कशी घडे भू-रचना नूतन
ज्ञान मूढ़ गीता-प्रकाशिनी ।

पंचशील-रत विश्वशांति व्रत,
युगांतुनी घर-अंगण श्री-हृत
कधि होतिल जन उद्यत जागृत ?
चिंताकुल जीवन विकासिनी ।

हवे तिला तर लौह संघटन
सुन्दर तन, श्रद्धा-दीपित मन
भूजीवन-प्रत अथक समर्पण
लोक-कलामयि, रंस-विलासिनी ।

സുമിത്രാനന്ദൻ പന്ത്

ശ്രീ. സുമിത്രാനന്ദൻ പന്ത് ഇന്നത്തെ ഹിന്ദീകാവ്യശാഖയെ വളർത്തിയെടുത്തവരിൽ അഗ്രഗണ്യനാകുന്നു. ഹിന്ദീകവിതയിൽ സ്വതന്ത്രമായ ചിന്തനത്തേയും സൂക്ഷ്മമായ അഭിവ്യഞ്ജനാശക്തിയേയും സംയോജിപ്പിച്ച് വിവിധമനോഭാവങ്ങളെ പ്രകടിപ്പിക്കുന്നതിനുള്ള ഒരു മീഡിയമാക്കുന്നതിന് ശ്രീ. പന്ത് വളരെയധികം സഹായിച്ചിട്ടുണ്ട്

ശ്രീ. പന്തിന്റെ കവിതകളിൽ പ്രകൃതിയുടെ രൂപത്തോടൊപ്പം ആദ്ധ്യാത്മിക ചേതനയും കാണാവുന്നതാണ്. ഗോചരങ്ങളും അഗോചരങ്ങളുമായ വിഷയങ്ങളുടെ സൂക്ഷ്മമായ അനുഭൂതിയെ ചിത്രീകരിക്കുന്നതിൽ പന്തിന് പ്രത്യേകം പാടവമുണ്ട്..

ശ്രീ. പന്ത് 1900 മെയ് 20-ാംനു കൂർമ്മാചല് (കുമായൂൺ) പ്രദേശത്ത് പ്രകൃതിസുന്ദരമായ കൌസാനി (അൽമോറ)യിൽ ആണ് പിറന്നത്. പന്തിന്റെ 'പല്ലവ്', 'വീണ', 'ഗ്രന്ഥി', 'ഗുഞ്ജൻ', എന്നീ കൃതികളിൽ പ്രകൃതിയ്ക്കാണ് പ്രാധാന്യം. അതിനുശേഷം രചിച്ച 'യുഗവാണി', 'ഗ്രാമ്യ', 'യുഗപഥ്', മുതലായ കൃതികളിൽ ജനജീവിതത്തിന്റെ പല രൂപങ്ങളും കാണാം. ആദ്ധ്യാത്മിക തത്വങ്ങളും അരവിന്ദ സിദ്ധാന്തങ്ങളും സ്വാധീനം ചെലുത്തിയിട്ടുള്ള കവിതകളാണ്. 'സ്വർണ്ണകിരൺ', 'സ്വർണ്ണധൂളി', "ഉത്തരാ', 'അതിമാ', 'വാണീ', 'കലാ ഓർ ബൂഢാചാന്ദ്', 'ഹരിബാസുരീ', 'സുൻ ഹരീ ടേർ', എന്നീ പുസ്തകങ്ങളിൽ സംഗ്രഹിച്ചിരിക്കുന്നത്.

ശ്രീ. പന്തിന്റെ പ്രതിഭാ നനാമുഖമാണ്. 'പാഞ്ച് കഹാനിയാം' അദ്ദേഹത്തിന്റെ കഥാസമാഹാരമാണ്. 'രജതശിഖർ', 'ശില്പീ', 'സൌവർണ്' ഇവ കാവ്യരൂപങ്ങളത്രെ. 'ജ്യോത്സ്നാ' നാട്യരൂപകവും. ഇവക്കും ധാരാളം പ്രസിദ്ധിയുണ്ട്.

ഭാരത മാതാവ്

സുമിത്രാനന്ദൻ പന്ത്

തർജ്ജമ: രവിവർമ്മ

ഭാരത ജനനീ! ഗ്രാമവാസിനി!
വയലുകൾ തോറും വയലുകൾ തോറും
നിൻമിഴികളിലെ ശ്യാമളിമ
ശസ്യാഢ്യം ജന ജീവിതാഞ്ചലം
ഗംഗാ യമുനകളിൽ ശുചിയാം നിൻ
ശ്രമനീരം, ഹേ ശീല മൂർത്തി,
സുഖദുഃഖ വിസംഗിനി!

സ്വപ്നമൗന നീ, വിഭുപദ നത ദൃഷ്ടി
ദുഃഖത്തിന്റെ വിനാഴികകൾ
ചിരിയായ് വിടരുന്നു ചുണ്ടുകളിൽ
ഭുവെപ്പോൽ സംയമവും തപവും
ചേർന്നമനം, ഒരു നാക കല
ലോക പഥത്തിലുഴന്നു നടക്കും
നീ പ്രവാസിനീ, ഹേ ജനനി!

മുപ്പതുകോടിപ്പുത്രരുണ്ടവർ
അർദ്ധനഗ്ന, രന്ന വസ്ത്രഹീനർ, അനക്ഷരർ
പാഴ്പുൽ പുരകളിലവർ തൻ വാസം
പ്രണതശീർഷ തരുതല നിവാസിനി!

ലോകപുരോഗതി യൊട്ടറിയാത്തോർ
ജീവന രുചിയാൻ സംസ്കൃതരെങ്കിലു-
മർദ്ധസദ്യ, രന്ധവിശ്വാസത്താൽ
പിന്നെ യനാചാരത്താൽ അവരുടെ
യുൽഗതിയാകെ മുടക്കപ്പെട്ടു
രാഹുഗ്രസ്തശരദിന്ദുഹാസിനി!

നൂററാണ്ടുകൾ തൻ അറാശിഷ്ടംപോൽ
ജഡമാനസമായ്, ലക്ഷ്യഹീനമായി
ജർജ്ജരമായ് തീർന്ന ജന ജീവിത
മിവിടെ പുതിയൊരു ലോകം തീർക്കേ-
ണ്ടതുവിധമെന്നറിയാ തുഴലുന്ന
നീ ജനനീ! ഗീതാ പ്രകാശിനി!

പഞ്ചശീല തല്പരരെന്നാലും
വിശ്വശാന്തിതാൻ വ്രതമെന്നാലും
പലയുഗങ്ങളായ് ജനകോടികൾ തൻ
ഗൃഹമുഖങ്ങൾ ശ്രീ കെട്ട മട്ടിലായ്
എന്നാണിനിയവരുണരുക, യിവരിനി-
ച്ചെന്നാണയരാൻ ഉദ്യതരാവുക
എന്ന ചിന്തയിൽ മുഴുകിയിരിപ്പൂ
നീ ജനനീ, ജീവിത വികാസിനി!

ലൌഹ സംഘടനയത്രെ വേണ്ടതു്
സുന്ദരതനു, നിഷ്പാദീപ്തമാം മന-
സ്സിഹ ലൌകികമാം ജീവിതത്തോടായ്
തളരാതുള്ള സമർപ്പണ ഭാവം
ലോക കലാമയി, രസ വിലാസിനി!

संस्कृत

श्री सुमित्रानंदन पंत

श्री सुमित्रानंदन नामा पंत महोदयो साम्प्रतिकहिन्दीकविता प्रवर्त के ष्वग्रगण्योवर्तते । हिन्दीकवितां स्वतंत्रचिन्तनै-स्तथा सूक्ष्माभिव्यञ्जनाभि : संश्लिष्य विभिन्न मानसिकाभिव्यक्तीनां माध्यमनिर्माणस्य पन्तमहोदयस्यैव श्रेयः ।

अस्य (पंत) महोदयस्य काव्ये यत्र एकतः प्रकृतेः रूपाणां नूतनं पर्यवेक्षणं-दृश्यते तत्रैवापरत्राध्यात्मिक चेतनायाः नूतनविकासशिखराण्यपि, अल्प काव्यवाण्या मुखरितानि सन्ति । गोचरागोचरविषयाणांप्राञ्जलानुभूतीनां चित्रणमस्य कवेः काव्यस्य प्रामुख्यं विद्यते ।

कविपंतस्य जन्मर्मईमासस्य विंशतितमेदिवसे (२० मई) एकोनविंशति शततमे (१९००) ईशवीयवर्षे कूर्मांचलप्रदेशस्य मनोरमरम्यस्थल्यां कौसान्या (अल्मोडा) मभवत्, पल्लव, वीणा, ग्रन्थि, गुञ्जनादिषु पंतकाव्यषु प्रकृतिः प्रामुख्य मस्ति । तथैव युगवाणी, ग्राम्या, युगपथादिषुजनजीवनस्य विभिन्नरूपाणि परि-लक्ष्यन्ते । आध्यात्मिकाभिकञ्जनाभिररविन्ददर्शनच प्रभाविताः कविताः स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ाचान्द, हरीबांसुरी इत्यादिकाः सुमधुरलये संगृहीतासन्ति ।

पंत महोदयस्य प्रतिभासर्वतोमुखी वर्तते । 'पांच कहानियाँ, नामकः कथा-संग्रहस्तथा 'रक्त शिखर, 'शिल्पी, 'सौवर्ण, नामकं काव्यरूपकं, 'ज्योत्स्ना' नाम्नी नाट्यकृतिश्च पर्याप्तप्रसिद्धिं गता ।

भारत माता

सुमित्रानंदन पंत

संस्कृत अनुवाद: विहारीलाल व्यास

क्षत्रेषु व्याप्ता शुभदृष्टि श्यामा
शस्यैर्भरा या जनजीवनांचला ।
सूर्यात्मजागंगजलाश्रमस्य
शीलस्यमूर्तिः सुखदुःखतुल्या ।।

स्वप्नेषुमौना प्रभुपादनेत्रा
चोष्ठेषु दुःखस्य क्षणाः हसन्ति ।
पृथ्वीवचिन्ता तपसंयमेषु
दिवःकला भूमिपथे हि प्राप्ता ।।

नग्नार्धदेहा ननु कोटिशःसुता
वासोन्नशिक्षारहिता प्रपीड़िता ।
काष्टैस्तृणै निर्मितचत्वरगृहा
अधोमुखी वृक्षतले निवासिनी ।।

संसारगत्याऽविदिता नितांतं
संस्कारशुद्धा अपिचार्धसभ्या ।
रूढ्यादिभिर्कुंठित पादचारा
या राहुग्रस्ता शरदिंदुबिम्बा ।।

चित्तं शतीभ्यः त्रुटितावशेष-
मुद्देश्यहीनं जनजीवनञ्च ।
भूमेः कथं स्याद्रचना नवीना
मूढेषु गीतागुणज्ञान दक्षा ।।

शांतिव्रता या धृतपंचशीला
युगांतरैः श्रीहत चत्वरगृहा ।
कदोद्यतास्युः मनुजासजागराः
चिन्तारता जीवनवृद्धिकामा ।।

वाञ्च्छास्तितस्या दृढसंघसंधौ
श्रद्धाप्रदीप्तं हृदयं सुदेहं ।
भूजीवनाश्रांत समर्पणं हि
रम्या सदा लोककला ललामा ।।

9—1 CHD/64
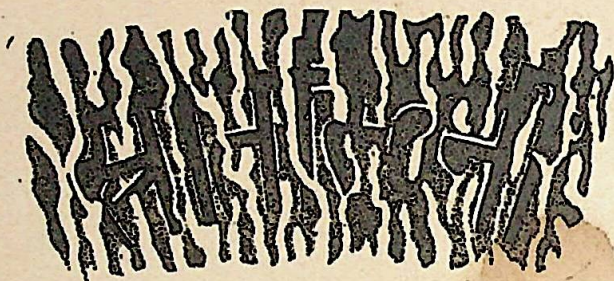
अज्ञात

लेखक : अरविंद गोखले हिंदी अनुवाद : शरद मोझरकर

'एकाकिनी' कादंबरीवरील चर्चा ऐन रंगांत आली होती. सभागार श्रोत्यांनीं ओसंडत होतं. खुर्च्या, गॅलऱ्या होत्याच,पण बाहेरच्या हिरवळीवर लाऊडस्पीकर आवाज देईल तिथवर लोक बसले होते. अनेक तऱ्हेचे वाचक, प्राध्यापक, साहित्यिक. स्त्री-वर्गाची उपस्थिती विशेष जाणवत होती. व्यासपीठासमोरच्या खुर्च्यांवर प्रतिष्ठीत नागरीक, विद्वान्, थोर साहित्यिक, प्रकाशक बसले होते. आणि व्यासपीठावर वयोवृद्ध साहित्यभूषण दादासाहेब देखणे अध्यक्षस्थानीं होते. 'एकाकिनी' च्या गुणदोषांची निर्भिड व सखोल चर्चा करणारे वक्ते एकामागून एक भाषणं करीत होते. नवे नवे मुद्दे मांडले जात होते. आधीच्या वक्त्यांचीं मतं खोडून काढायचा व त्यानें सभेवर पाडलेली छाप पुसून टाकायचा नंतरच्या वक्त्यांचा यत्न चालला होता. सामान्य वाचक व व्यासंगी टीकाकार, विद्यार्थी व गृहिणी-वक्त्यांत समाजांतील सर्व प्रतिनिधींचा समावेश झालेला होता. 'एकाकिनी' कादंबरीनें सगळीकडे एकच खळबळ माजवली होती व त्याचच प्रतिबिंब सभेंत उमटलं होतं. कादंबरीला लाभलेली लोकप्रियता प्रत्येक वक्त्याच्या भाषणांत दिसत होती. तेच भाव अधीऱ्या श्रोत्यांच्या चहेऱ्यावर व हृदयांत पडसाद उमटवीत होते. लोक केव्हांपासून आ वासून ऐकत होते. हास्याच्या लाटा उसळत होत्या. टाळ्याच्या कडकडाट होत होता. शांतता पसरे ती जग थांबल्यासारखी. सगळे सभेशीं समरस झाले होते. दुसरा विचार, दुसरी हालचाल नव्हती.

कुठेंतरीं कोपऱ्यांत, मागें, दाटीवाटींत तो बसला होता. त्याच्या मागें असलेल्या खिडकीला चार पांच विद्यार्थी लोंबकाळले होते. थोडा फार येणारा वारा त्यामुळें बंद झाला होता. पुढेंच एक म्हातारा व त्याची मुलगी विलक्षण भक्तीभावानें ऐकत होती. प्रत्येक वाक्याला म्हातारा पसंती नापसंतीची मान हालवीत होता. मुलगी हासण्याचं, टाळ्या वाजविण्याचं काम करीत होती. वाजचं तरूणांचं टोळकं कादंबरीची स्तुति झाली कीं निषेधाचे आवाज काढीत होतें. त्या विचित्र गर्दींत तो अंग चोरून, अपराध्यासारखा बसला होता. उकडत होतं, कुणी कॉलर पकडेल असं वाटत होतं.

अज्ञात

मूल लेखक : अरविंद गोखले   अनुवाद : शरद मोझरकर

'एकाकिनी' उपन्यास पर हो रही चर्चा अब पूरे ज़ोर पर थी। सारा हाल श्रोताओं से भरा था। अंदर कुर्सियाँ, गेलरी थीं ही, बाहर भी लोग घास पर वहाँ तक बैठे थे जहाँ तक कि लाउडस्पीकर की आवाज़ पहुँच रही थी। उपस्थित लोगों में सभी प्रकार के पाठक, प्राध्यापक, साहित्यिक थे, जिनमें स्त्रियों की संख्या विशेष रूप से नज़र आ रही थी। रंगमंच से लगी हुई कुर्सियों पर प्रतिष्ठित नागरिक, विद्वान, ऊँचे साहित्यिक तथा प्रकाशक बैठे थे। रंगमंच पर वयोवृद्ध साहित्यभूषण दादा साहब अध्यक्ष का पद सँभाले थे। 'एकाकिनी' उपन्यास पर एक के बाद एक वक्ता आकर उसमें गुण-दोषों की विशद व्याख्या कर रहे थे। नए-नए विचार सामने आ रहे थे। पूर्व वक्ता की बात को काटकर अपने मत की छाप डालने का प्रयत्न जारी था। वक्ताओं में सामान्य पाठक, बड़े आलोचक, विद्यार्थी, गृहणी आदि सभी शामिल थे। 'एकाकिनी' उपन्यास ने चहुँ ओर समाज में एक हलचल सी मचा दी थी, इसका स्पष्ट प्रमाण जनता की उपस्थिति थी। प्रत्येक वक्ता के भाषण से उपन्यास की लोकप्रियता पर प्रकाश पड़ रहा था और श्रोता भी अधीर होकर सुन रहे थे। हास्य की लहरें उठ रही थीं, तालियों की गड़गड़ाहट गूँज रही थीं सभी लोग वातावरण में डूब गए थे, समरस हो गए थे।

पीछे की ओर किसी कोने में 'वह' बैठा था। उसके पीछे वाली खिड़की में चार पाँच विद्यार्थी झुके थे जिससे हवा आना एकदम बंद हो गया था। सामने की ओर एक वृद्ध व उनकी लड़की भक्तिभाव से सुन रही थी। वृद्ध प्रत्येक वाक्य पर अपना मत हावभाव से व्यक्त कर रहा था, तथा लड़की हँसने व ताली बजाने का काम कर रही थी। उपन्यास की प्रशंसा होने पर बगल में खड़ी युवकों की टोली विरोधात्मक आवाज़ें करती। उस भयंकर भीड़ में वह दुबका-सा अपराधी समान बैठा था। गर्मी बेहद हो रही थी। कभी लगता कि कोई कालर न पकड़ ले। कभी उठकर बाहर जाने की इच्छा होती। परंतु वहाँ तो शरीर हिलाने-डुलाने की भी गुंजाइश न थी। उसे बार-बार लगता कि ऐसी जगह में वह क्यों बेकार में आ गया?

तिथून उठून जावं असं वाटत होतं. पण शरीर हालवायलाहि जागा नव्हती. असल्या ठिकाणीं कासावीस व्हायला कशाला आलों, असं त्याला सारखं वाटत होतं.

वक्त्यानें टेबलावर मूठ आपटून नवा मुद्दा मांडला व टाळ्यांचा कडकडाट झाला. क्षणभर त्याचीहि छाती फुलून आली. डोळे पाणावले. मग तो सगळीकडे विचित्रपणें, पाहूं लागला. वळीवाचा पाऊस पत्र्यावरून कोसळावा तशा टाळ्या वाजल्या; कीं फटाक्याच्या सरी लावाव्यात तशा....... तो स्वतःशींच विचार करूं लागला. आपल्या विचारांचं त्याला हसू आलं. तेवढयांत जवळच कुणीतरी कुजबुजल्याचं त्याला ऐकू आलं,

'किती हालचाल करतोय हा माणूस.... जात कां नाहीं निघून ?.... एवढी गरम झाल्याय सभा, पण हा टाळयासुद्धां, वाजवीत नाहीं...कादंबरी तरी वाचलीय कीं नाहीं कोण जाणे..........'

त्याच्या अंगावर कांटा उमटला. खांकेंत घाम सांचला. वळून पाहावं असं वाटलं, पण तेवढं धाडस झालं नाहीं. एवढया सभेंत टाळ्या न वाजवणारे आपणच एकटे असणार! भाषणं लक्षपूर्वक ऐकतों आहोंत, हंसतों आहोंत, नापसंती दाखवीत आहोंत पण टाळ्या कांहीं वाजवीत नाहीं! त्यानें आपलें तळहात डोळ्यापुढें धरले, एकमेकांवर चोळले व पुन्हां तो बसून राहिला. भाषण ऐकण्याचा यत्न करूं लागला.

'एकाकिनी' वरील चर्चा पुन्हां पुन्हां तिच्या लेखकाभोंवतीं फिरत होतीं. 'एकाकिनी' सह तीन कादंबऱ्या व दोन लघुनिबंधांचे संग्रह लिहिणाऱ्या लेखकाची अनुपस्थिती सगळयांना जाणवत होती. लेखकाचा परिचय, फोटोहि कुठें प्रसिद्ध झालेला नव्हता. लेखक आनंद अक्षीकर कुणाच्या ओळखीचा, माहितींतला नव्हता. त्याचा प्रकाशकच त्याच्या लेखनाचा सर्व व्यवहार पाहात होता व अक्षीकरची व वाचकाची गांठ पडूं देत नव्हता. अक्षीकर हजारों लोकांना अज्ञात होता. आनंद अक्षीकर हें नांव घेऊन एक नामवंत प्राध्यापकच लेखन करतो असा अनेकांचा तर्क होता. अक्षीकर तो मीच अशी—गुप्त बातमी सांगत फिरणारा एक लेखक अनेकांना माहित होता पण अक्षीकरांच गूढ पूर्ण उलगडलं गेलं नव्हतं. आणि लेखकाबद्दलचं कुतूहल त्याच्या लेखनापेक्षां अधिक शिगेला जात होतं.

'पुस्तक वाचून हा लेखक प्राध्यापक पेशांतील नसावा अशी खात्री पटते....ही कादंबरी नक्कीच एका स्त्रीनें लिहिली असावी.....प्रकाशकानें पुढें येऊन ह्या सभेंत लेखकाचं खरं नांव सांगण्याचं सौजन्य दाखवावं'.......वक्ते लेखकाबद्दलच्या कुतूहलाची तार छेडीत होते आणि सर्व सभागृह संमतीदर्शक माना डोलावीत होतं. टाळ्या वाजवून उत्तेजन देत होतं. आपल्या आवडत्या कादंबरीचा आवडता लेखक त्यांना पाहायचा होता. त्याशिवाय चर्चेत, साहित्याच्या स्वादांत उणेपणा येत होता.

सभा संपली व आनंद अक्षीकरबद्दल बोलतच लोक बाहेर पडले. लेखकाबद्दल फार कल्पना ताणीत नेऊन रसस्वादांत विकल्प आणू नये म्हणून केलेली अध्यक्षांची सूचना कुणाला रूचली नाहीं. पुढल्या रांगेंत बसलेले पुस्तकाचे प्रकाशक गालांतल्या गालांत हंसत होते, ह्याचाहि लोकांना राग आला. नायकाच्या वर्णनावरून लेखकाचं चित्र रंगविण्याचा यत्न करणाऱ्या एका स्त्री वक्त्याचं सर्वांना कौतुक वाटत होतं. कटु अनुभवांनीं पोळलेले काळेंशार डोळे, अंमळ टक्कल, शेलाटी आकृति—आनंद अक्षीकरची आकृति डोळयापुढें आणायचा यत्न करीत जो तो रस्त्याला लागत होता.

किसी वक्ता ने टेबिल पर ज़ोर से घूँसा मारकर अपना विचार व्यक्त किया और तालियों की गड़गड़ाहट हुई। एक क्षण को उसका भी सीना फूल गया। आँखें गीली हो उठीं, उसने चारों ओर एक विचित्र नज़र से देखा तथा सोचने लगा कि यह तालियों की आवाज़ टीन पर पड़ रहे ओलों के समान है अथवा पटाखों की लगातार लड़ें छूट रही हैं........स्वयं के विचारों पर उसे हँसी आ गई, तभी उसे बगल में कोई कानाफूसी करते सुनाई पड़ा।

'कितनी हलचल कर रहा है यह व्यक्ति......जाता क्यों नहीं यहाँ से?.... चर्चा में इतनी गर्मी है लेकिन इससे ताली भी नहीं बजाई जाती........भगवान जाने इसने उपन्यास पढ़ा भी है या नहीं।........'

उसके शरीर पर काँटे उठ आए, बग़ल से पसीना छूटने लगा, इच्छा हुई कि पीछे घूमकर देखूँ परंतु उतना साहस न कर सका। इतने बड़े समुदाय में क्या मैं अकेला ही ताली नहीं बजा रहा? ध्यान से भाषण सुन रहा हूँ, हँस रहा हूँ। अपनी पसंद दर्शा रहा हूँ, बस केवल ताली नहीं बजा रहा हूँ। उसने आँखों पर हथेलियाँ रखीं. फिर उन्हें आपस में रगड़कर हाथ नीचे छोड़ दिए और भाषण सुनने का प्रयत्न करने लगा।

'एकाकिनी' पर हो रही चर्चा बार-बार आकर उसके लेखक पर ठहर रही थी। सभी को 'एकाकिनी' सहित तीन उपन्यास एवं दो लघुनिबंधों के संग्रह को लिखने वाले लेखक की अनुपस्थिति बेहद खटक रही थी। लेखक का परिचय, फोटो कहीं भी छापा नहीं गया था। उपन्यास का लेखक 'आनंद अक्षीकर' किसी से परिचित न था। उसका प्रकाशक ही उसका सारा कामधाम संभालता था और पाठकों से उसका संबंध ही न आने देता था। अक्षीकर हज़ारों लोगों के लिए एक अज्ञात व्यक्ति था। अनेक लोगों की यह धारणा थी कि कोई विद्वान प्रोफ़ेसर ही आनंद अक्षीकर का उपनाम रख कर लिख रहा है। एक लेखक अपने आप को ही आनंद अक्षीकर कहता फिरता था। परंतु अक्षीकर अभी एक रहस्य ही बना हुआ था। उपन्यास की अपेक्षा उसके लेखक के बारे में ही कौतूहल चरम सीमा को पहुँच रहा था।

'पुस्तक पढ़ने के बाद यह निश्चित हो जाता है कि लेखक प्रोफ़ेसर की जमात का नहीं होगा........यह उपन्यास निश्चित ही किसी लड़की ने लिखा है......, प्रकाशक को इस सभा में लेखक का परिचय देने की उदारता दिखानी चाहिए....' आदि अनेक विचार वक्ता व्यक्त कर रहे थे तथा श्रोता तालियाँ बजा उनके मतों का समर्थन कर रहे थे। उन्हें अपने प्रिय उपन्यास के प्रिय लेखक को देखना था, उसके बग़ैर चर्चा में, साहित्य के वास्तविक रसास्वादन में कमी नज़र आ रही थी।

सभा समाप्त हुई और आनंद अक्षीकर के बारे में बोलते हुए लोग बाहर निकले। किसी को भी अध्यक्ष की यह अंतिम बात कि लेखक के बारे में ज्यादा तर्क वितर्क कर रसभंग न करें, कुछ अच्छी न लगी। पहली पंक्ति में बैठे उपन्यास के प्रकाशक को मुस्कराता देख श्रोताओं को गुस्सा आ रहा था। एक स्त्री वक्ता ने नायक के आधार पर ही लेखक का एक काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किया, जिसे सभी ने सराहा। कटु अनुभवों के कारण हुई काली आँखें, थोड़ी सी चाँद निकला सिर, इकहरा बदन आदि अनेक आकृतियाँ बनाते बिगाड़ते लोग राह से लगे।

"रानडे.... अहो, राजाभाऊ. . ." एवढया गर्दीतून त्याला कुणीतरी हांक मारीत होतं. आवाज कानावर आला, पण प्रथम त्याला कांहीं बोध झाला नाहीं. चष्मा नीट करीत तो गर्दीतून वाट काढीत होता. 'राजाभाऊ—' अगदी जवळून आवाज आला व तो भानावर आला. पाण्यांतून बुडबुडे उडवीत, नाकतोंड वर काढावं तसा. आपल्या एवढया घाईगर्दीत कुणी मुद्दाम हांक मारावी हें त्याला कससंच वाटलं. वळून पहाण्याच्या आंतच त्याच्या कामावरचा अकौंटंट कोकीळ जवळ आला व पाठीवर थाप मारून म्हणाला, "तुम्ही नि वाङ्मय चर्चेच्या जागीं?—आम्हांला वाटलं तुम्ही नुसतं वाचन करतां, सतार वाजवतां, फोटोग्राफी करतां. . ."

तो कांहींच बोलला नाहीं. कोकीळशी त्याची सलगी नव्हती. कोकीळ पुस्तकं वाचतो हेंहि त्याला ठाऊक नव्हतं.

"बाकी चर्चा मस्त झाली हं. पुस्तक सामान्य असून चर्चा रंगली. लेखक अज्ञात म्हणूनच अधिक रंग चढला. म्हणूनच पुस्तक ग्रेट ठरलं....."

चष्म्यांतून रोखून तो कोकीळकडे पाहूं लागला. कोकीळ वाटला तितका उथळ नाहीं तर ! थबकून त्यानें म्हटलं,

"वाचली आहे तुम्हीं कादंबरी? "

"तर ! तुम्हांला माझी कॉपी देईन हवी असली तर—"

"विकत घेतलीत ? "

"मराठी पुस्तकं घेत नाहीं मी. लेखकानीच भेट प्रत दिली तर--अक्षीकरनें घरीं आणूनच दिली मुद्दाम—"

"तुमच्या ओळखीचा आहे म्हणतां ? कोण आहे तो ?"

"तें सिक्रेट आहे." कोकीळ भाना करून म्हणाला, "मी त्याला चांगला ओळखतों. अहो, टोपण नांव घेतलं म्हणून एवढी प्रसिद्धी मिळाली. नाहींतर....."

नाहींतर काय झालं असतं हें सांगायला कोकीळ थांबू शकला नाहीं. मागून आलेल्या लोकांच्या लोंढयाबरोबर पुढें ढकलला गेला. तो बाजूच्या एका उंचट चौथऱ्यावर उभा राहिला. कोकीळकडे पहात राहिला.

सभागृह झपाट्यानें रिकामं होत होतं. किती माणसं इथें मावली होतीं, एकचित्तानें तीन तास ऐकत होतीं. व्यासपीठावरच्या टेबलावर ठेवलेली फुलं इथूनहि मोहक वाटत होती. बायकांचा घोळका एका दारानें रेंगाळत बाहेर पडत होता. तेवढया गर्दीत 'एकाकिनी' ची कोरी प्रत मिरवीत एक तरूणी उभी होती. बाजूच्या सायकल स्टँडवर झिम्मड उडाली होती. मोटारी मार्गस्थ होत होत्या व रस्ते सभेला आलेल्या श्रोत्यांनीं वाहात होते.

सगळं दृश्य पाहून क्षणकाल त्याचं काळीज भरून गेलं. हा वाचकवर्ग, ही रसिकता, कुतुहल, प्रेम, व्यासंग, वादविवाद, स्तुति, सार्थक. अनेक भावनांचे थवे. दाद ! ही दाद मिळावी म्हणून कलावंत जिवाचं रान करतो, सारा आटापिटा करतो. इतर अनेक मोह सोडतो. ह्या मोहांत घालण्यासाठीं ह्यासाठीं तो आपली छबी छापतो, मुलाखत देतो, भाषणं करतो स्वाक्षरी देतो. लपेटदार अक्षरांत स्वतःचं नांव कोरतो, कागदाच्या तुकडयावर, चेकबुकावर, वाङमयाच्या इतिहासांत हार घालून घेतो, बोटं दाखवून घेतो, कौतुकाच्या नजरांनीं न्हाऊन निघतो.............

दादासाहेब देखण्याशीं बोलत प्रकाशक पुढून चालला होता. तो एकदम भानावर आला व अंग आकसून चौथऱ्यावरून खालीं उतरला. प्रकाशकानें त्याला पाहिलं.

'रानडे ऽऽऽ........ अरे राजाभाऊ........' भीड़ में से कोई उसे आवाज़ दे रहा था। यद्यपि उसे आवाज़ सुनाई दी, परंतु समझ में न आया कि कहाँ से आ रही है। वह चश्मा नाक पर ऊपर सरकाते आगे बढ़ रहा था, तभी....... राजाभाऊ........ एकदम पास से ही आवाज़ आई और वह चौंका। इस समय उसे इतनी भीड़ में अपने नाम का पुकारा जाना कुछ अच्छा.सा न लगा। पलटकर देखते ही उसके आफ़िस का एकाउंटेंट एकदम सामने आ पीठ पर धप्प जमाते हुए बोला— "आप और साहित्य-चर्चा की जगह पर ? मैं तो सोचता था कि आप केवल पढ़ते हैं, सितार बजाते हैं। फ़ोटोग्राफी करते हैं........"

वह कुछ भी न बोला। एकाउंटेंट कोकील से उसकी ज्यादा दोस्ती न थी। वह यह भी नहीं जानता था कि कोकील भी पुस्तकें पढ़ता है........

"कुछ भी हो चर्चा में मज़ा आ गया—पुस्तक सामान्य होते हुए भी चर्चा खूब जमी। लेखक के अज्ञात होने से उसमें और रंग आया या यूं कहो इसी कारण वह ग्रेट ठहराई गई........"

वह चश्मे में से कोकील की ओर घूरकर देखने लगा, उसने झट से पूछा—"आपने उपन्यास पढ़ा है ?"

"पढ़ा क्यों नहीं ? तुम्हें चाहिए हो तो मैं अपनी प्रति लाकर दूंगा तुम्हें.....'

"क्या खरीदी है ?"

"मैं मराठी पुस्तकें खरीदता नहीं, लेखक ने स्वयं भेंट की थी ....अक्षीकर स्वयं घर आकर दे गए......"

"तो क्या वे तुम्हारे परिचित हैं ? कौन हैं वह ?"

"यह एक सीक्रेट है....." कोकील बहाना बनाते हुए बोला—"मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। अरे भाई, दूसरा नाम रख कर लिखा, इसी लिए तो इतनी ख्याति मिली, नहीं तो......."

"नहीं तो क्या होता......" यह बताने के लिए कोकील ठहरा नहीं, पीछे से आ रहे भीड़ के धक्के के साथ वह आगे ढकेल दिया गया।

हाल तेज़ी से खाली हो रहा था। कितने सारे लोग इसमें बैठे दत्तचित्त होकर सुन रहे थे। रंगमंच पर रखे फूल दूर से भी सुंदर दिखाई दे रहे थे। एक बग़ल में दरवाज़े से महिलाओं का जत्था निकल रहा था। उतनी भीड़ में भी एक युवती 'एकाकिनी' की एक नई प्रति लेकर खड़ी थी। पास ही साइकल स्टेंड पर धमा-चौकड़ी मची थी। कारें आगे बढ़ रही थीं और रास्ता लोगों से पट गया था।

यह सारा दृश्य देख कर क्षण भर के लिए उसका दिल भर आया; यह पाठकों का वर्ग, उनकी रसिकता, कौतूहल, प्रेम, वादविवाद, चर्चा, स्तुति, अनेक भावों का आना जाना, प्रशंसा, कीर्ति, इसी प्रशंसा को पाने के लिए कलाकार रात दिन एक कर देता है। अन्य सारे मोह छोड़ कर मेहनत करता है। इसी मोह को पाने के लिए, इसी प्रशंसा की खातिर, वह अपनी फ़ोटो छपवाता है, इंटरव्यू देता है, भाषण करता है, आटोग्राफ़ देता है। लहरदार अक्षरों में वह स्वयं का नाम लिखता है, कागज़ों के टुकड़ों पर, चैकबुक पर और साहित्य के इतिहास में कलाकार का हार पहनता है। लोगों की कौतुहलपूर्ण दृष्टियों को ग्रहण कर स्वयं को धन्य समझता है......

नको म्हटलं तरी स्मिताची एक सूक्ष्म रेषा त्याच्या चेहऱ्यावर तरळली. त्यानेंहि प्रतिसाद दिली. वाटलं . . . .पण चष्मा सांवरीत व हातरूमाल शोधीत तो गर्दीत लपला. दादासाहेब देखण्यांचे कादंबरीबद्दलचे धन्योद्गार स्वीकारीत प्रकाशक पुढें चालूं लागला व गर्दीत मिसळत, मार्ग काढीत तो घराकडे निघाला.

* * *

बायको सज्ज्यांत वाट पहात होती. तो आलेला पहातांच ती जरा रागानेंच दार उघडायला धांवली. तिनें आपली वाट पाहावी हें आज तरी त्याला कससंच वाटलं. तिचा रागहि त्याला आधींच जाणवला. तिला टाळून तो आपल्या खोलींत गेला व कपड उतरूं लागला.

"सभेला गेला होतात ना ?" तिनें कमरेवर हात ठेवून उंबरठ्यावरूनच विचारलं.

"तुला कसं कळलं ? " तो संपूर्ण उघडा होत म्हणाला.

"तुमचा चेहरा सांगतोय. किती बदललाय......."

त्यानें आश्चर्य दाखविल्यासारखं तिच्याकडे पाहिलं. ती खोलींत येत म्हणाली, "अगदीं ढवळून निघालाय. खूप आनंद झालाय. नि वेदनासुद्धां."

तो मनापासून मोठ्यानें हंसला

"लेखकाची पत्नी शोभतेस !"

"तेवढं म्हणालांत हेंच पुष्कळ आहे. तेवढंदेखील सुख मला नाहीं. . . .आत्ता शेजारचे अण्णा नि ताराबाई सभेहून आल्या, त्या बोलत होत्या. केवढं कौतुक झालं तुमच्या कादंबरीचं. आनंद अक्षीकर कोण असेल म्हणूनहि खूप चर्चा झाली म्हणे . . . .कुठं बसला होतात तुम्ही ? "

त्यानें घरेलू कपडे चढवले, झब्बा नि पायजमा. केसावरून हात फिरवीत तो म्हणाला, " वाढ मला—"

"कुठेंतरीं कोपऱ्यांत बसला असाल. पुढची मानाची खुर्ची तुमची. स्टेजवर देखील बसवलं असतं तुम्हांला. हार घातले असते. सभा संपल्यावर म्हणे देखण्यांच्याकडे मेजवानी आहे. तुमचे प्रकाशक नि कमळाबाई जाणार आहेत...."

त्याची भूक एकदम गेली. कमळाबाई बासुंदी कशी भुरकेल हेंच चित्र त्याला दिसत राहिलं. मग अगदीं जवळ आलेल्या आपल्या पत्नीकडे त्यानें पाहिलं. लेखकांपेक्षां त्यांच्या बायकाच किती मिरवितात, कौतुक करून घेतात, साहित्याबद्दल बडबडतात हें त्याला माहित होतं. हिला तर आपला नवरा लेखक आहे म्हणून सांगायची चोरी! तिला सगळं होतं. दागिने, मुलं....पण हजारों स्त्रियांना न लाभणारं लेखकाची पत्नी म्हणून मिरविण्यांच भाग्य तिच्यापासून हिरावून घेतलेलं होतं, नवरा लेखक नसतां तर तिला हळहळ वाटली नसती पण तो असतांना.........

तो थकून पलंगाला टेकला. त्याला वाटलं, तिची समजूत घालावी. . . .पण हे सगळं पूर्वी झालेलं होतं तो टोपण नांवानें लेखन करूं लागला तेव्हां तिची संमती होती, साहाय्य होतं. स्त्रीला अशक्य असणारं गुपित सांभाळण्यांच काम तिनें कसोशीनें पाळलं होतं. शेजारचे अण्णा व ताराबाई वाङ्मयाची वेडी. स्वतःच्या घरीं नव्या नव्या पुस्तकां-मासिकांचे ढीग, खुद्द बाप मराठीचा प्राध्यापक—पण तिनें आनंद अक्षीकर नांव धारण

आज के अध्यक्ष दादा सा व देखणे के साथ प्रकाशक आगे-आगे जा रहा था । वह एकदम चौंका-सा और अपने अंग समेट भीड़ में घुसा । प्रकाशक ने उसे देख लिय और मुस्कराहट का आदान-प्रदान हुआ । चश्मा सँभालता हुआ वह भीड़ में खो गया । उधर प्रकाशक दादा साहव देखणे के प्रशंसोद्गारों को स्वीकार करता आगे बढ़ गया ।

* * *

पत्नी छज्जे पर उसकी प्रतीक्षा में खड़ी थी । उसे आता हुआ देख वह ज़रा गुस्से में ही दरवाज़ा खोलने आई । आज पत्नी का प्रतीक्षा करना भी उसे कुछ अजीब सा लगा । वह उसके गुस्से को भी जान गया । पत्नी को टाल कर वह अपने कमरे में गया और कपड़े उतारने लगा ।

"सभा सुनने गए थे ना ?" पत्नी ने कमर पर हाथ रख कर पूछा ।

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?" कपड़े उतारते हुए उसने पूछा ।

"तुम्हारा चेहरा वता रहा है, कितना बदल गया है......"

उसने यूँ पत्नी की ओर देखा, मानो सुनकर वेहद आश्चर्य हो रहा हो ।

"एकदम मथ गया है । खूव आनंद हुआ और कष्ट भी ।"

वह खुल कर हँसा ।

"लेखक की पत्नी दिखती हो ।"

"इतना कहा, यही वहुत है, मेरे नसीव में इतना सुख भी नहीं....... अभी पड़ौस के अण्णा और तारावाई सभा से लौट कर वातें कर रहे थे । कितनी प्रशंसा हुई है, तुम्हारे उपन्यास की । कह रहे थे आनंद अक्षीकर कौन होगा, इसको लेकर भी खूव चर्चा हुई...... कहाँ वैठे थे आप ?"

उसने नाइटड्रेस के कपड़े पहने और वालों पर हाथ फिराता हुआ वोला—"अच्छा चलो परसों मुझे" ।

"किसी कोने में वैठे होंगे । सामने की कुर्सी तुम्हारे मान सम्मान की थी । लोगों ने तुम्हें स्टेज पर भी वैठाया होता । मालाएँ पहिनाई होतीं । सुना है सभा समाप्ति के वाद अध्यक्ष देखणे के घर भोज है, तुम्हारे प्रकाशक और कमला बाई जाने वाले हैं......"

उसकी भूख एकदम उड़ गई । उसकी आँखों के सामने बस यही दिखने लगा कि कमला वाई वहाँ खड़ी कैसे खाएगी । तभी उसने अपने एकदम पास आई पत्नी की ओर देख कर सोचा कि अन्य लेखकों की पत्नियाँ लेखकों की अपेक्षा ज्यादा मान सम्मान पाती हैं, लोगों की प्रशंसा स्वीकारती हैं, साहित्य के वारे में खूव चर्चा करती हैं । परंतु उसकी पत्नी को तो यह कहना भी गुनाह है कि वह लेखक की पत्नी है । उसके पास सव कुछ था, आभूषण, बाल-वच्चे......परंतु हज़ारों महिलाओं को न मिलने वाला लेखक की पत्नी होने का सौभाग्य ही उससे छुड़ा लिया गया था । यदि उसका पति लेखक न होता तो कोई वात न थी, उसे रंज न होता परंतु पति के लेखक होते हुए भी......

वह थककर पलंग पर लेट गया उसकी इच्छा हुई कि वह पत्नी को समझाए.... परंतु यह सब तो पहले ही हो चुका था....जब उसने दूसरे नाम से लिखना चालू किया तो उसमें पत्नी की सम्मति एवं सहयोग था । नारी द्वारा रहस्य छिपाना एक असंभव सा काम है परंतु उसकी पत्नी ने वह काम पूरी तरह से किया । पड़ौस में

करून साहित्यांत तळपणारी व्यक्ति म्हणजे राजाभाऊ रानडे, माझे पति असं गाफील क्षणींसुद्धां उच्चारलं नाहीं. सगळी चर्चा, गप्पा, कुतुहल, स्तुति मनांत उचंबळणाऱ्या भावना दाबून ऐकली. प्रकाशकाशींसुद्धां ह्याबद्दल कधीं बोलणं काढलं नाहीं. ओळख दाखवली नाहीं. पांच वर्षं ! तीन कादंबऱ्या, पंचवीस-तीस लघुनिबंध. पण घरीं कधीं कुणी लेखक आले नाहींत. स्वाक्षरी घ्यायला कुणी डोकावलं नाहीं. कुठें सभेला, संमेलनाला निमंत्रण आलं नाहीं. जसा कांहीं वाङ्मयाशीं संबंधच नाहीं.

"पूर्वी मला काहीं वाटलं नाहीं—" त्याला जेवायला वाढून आपलं पान घेत ती म्हणाली, "उलट ह्या गुपिताची गंमतच वाटायची. आपल्यासमोर आपल्या कलाकृतीची चर्चा चालली की मौज वाटायची. अभिमान. तुमचा अभिमानहि वाटायचा ! नांवाला, प्रसिद्धीला लेखक किती लोभावलेले असतात हें मी पाहिलंय. बाबांकडे असे लोक येंत असत. तुम्हीं—" तिनें हातांतला घास ताटांत ठेवून अपार कौतुकानें त्याच्याकडे पाहिलं. त्याचा घास त्याच्या घशांत घोटाळला. दिवा जाळीत तो लिहीत बसला, त्याच्या नव्या पुस्तकाची प्रत आली, प्रकाशकाकडून पैसे आले, कीं ती अशीच डोळ्यांतली सगली स्निग्धता एकवटून त्याच्याकडे पाहात राही.

तो क्षीण हंसला. प्रसिद्धी, कौतुक, स्तुति, सन्मान—अन् खरं म्हणजे त्याला ह्या सगळ्याची ओढ वाटत नव्हती. मुळांतच नव्हती कीं त्यांतला फोलपणा आतां अधिकच पटला होता ? ओढ नाहीं असं तरी कां म्हणायचं ? आज सभेंत तो कसा अस्वस्थ झाला होता ! तिनें पाहिलं असतं तर ......म्हणून तर त्यानें तिला न्यायचं टाळलं. अन् स्वतः जायच नाहीं हें ठरवून अखेर तो धांवत तिथें गेलाच !......कां ?

"आतां हा खेळ पुरे झाला असं तर तुला नाहीं सुचवायचं ?" तो मुद्दाम हंसला व भरभर जेवून उठला.

दहा वाजून गेले होते. दोन्हीं मुलं झोपली होतीं. रस्त्यावरचं आणलेलं हाडूक चघळण्यांत कुत्रं पुढील दारीं गुंगलं होतं. टेबलावरच्या ट्रेमध्यें नव्या कादंबरीची लिहून झालेलीं पहिलीं पंचवीस पानं पडलीं होतीं. कादंबरीला योग्य नांव सांपडत नव्हतं अन् लेखकाचं नांव आधीं लिहिलेलं होतंच.

एका विचित्र अनुभवावर त्यानें दोन लघुनिबंध सहा वर्षांपूर्वी लिहिले. साहित्यांत नांव कमवायची, सतत लेखन करण्याची-कांहींच आकांक्षा नव्हती. राहावेना म्हणून कागद खरडले व कल्याणला दाखवले. मास्तरकी सोडून प्रकाशनाचा धंदा करणाऱ्या कल्याणला ते अतोनात आवडले. अधिक आठ दहा लघुनिबंध लिहून झाले. आणि मग एक दिवस कल्याण ते प्रसिद्ध करायच्या गोष्टी बोलू लागला मासिकांतून कांहीं छापून आणायचे, अन् मग सगळ्यांचा एकदम संग्रह काढायचा. त्याला ही कल्पना फारशी स्वागतार्ह वाटली नाहीं. एक चाकोरी बाहेरचं जग त्यानें पाहिलं होतं. आणि त्यांतले अनुभव, अपरिहार्य म्हणून, शद्बांकित केले होते. पैसा, प्रसिद्धी कसलाच हेतु नव्हता. पण कल्याण हट्टच धरून बसला. आपल्या अंगीं लेखनगुण आहेत, आपलं लेखन सकस आहे हा अभिप्राय ऐकून तो चकित झाला; अन् मग भांबावून गेला.

अण्णा व ताराबाई साहित्य के पीछे पागल थीं। उनके स्वयं के घर में नई-नई पुस्तकों तथा पत्रिकाओं के ढेर लगे रहते थे तथा पिता मराठी के प्रोफ़ेसर थे, परंतु उस नारी ने कभी भूल कर भी कहीं यह नहीं कहा कि आनंद अक्षीकर याने उसके पति राजाभाऊ रानडे ही हैं। आज तक उसने हर जगह चर्चा में, गप्पों में, कौतूहल, स्तुति आदि के प्रसंगों में, अपने हृदय में उठने वाली भावनाओं को दबाकर रखा। किसी से भी इस बारे में बात तक न की। लगातार पाँच वर्ष से रहस्य बनाए रखा। तीन उपन्यास, पच्चीस-तीस लघु निबंध लिखे परंतु घर पर कभी कोई अन्य लेखक न आया। कोई आटोग्राफ़ लेने न आया। किसी सभा, सोसायटी, संमेलन का निमंत्रण नहीं, जैसे मानों उसका साहित्य से कोई संबंध ही नहीं हो......

भोजन परोसते हुए पत्नी बोली—"पहले मुझे कभी इसका एहसास नहीं हुआ, उल्टे इस रहस्य का आनंद आता था। अपने सामने अपनी ही कृति की चर्चा सुन बड़ा मज़ा आता था। तुम्हारे प्रति अभिमान उत्पन्न होता। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि लेखक अपनी कीर्ति के लिए कितने पागल रहते हैं। मेरे पिताजी के पास ऐसे अनेक लोग आया करते थे। आप....." उसने हाथ का कौर थाली में रख कर पति की ओर कौतुक से देखा। लाइट जला कर वह लिखने बैठा। उसकी नई पुस्तक की प्रतियाँ आईं, प्रकाशक की ओर से पैसे आए,। ऐसे समय वह इसी प्रकार हृदय की सारी स्निग्धता को आँखों में भर स्नेहिल भावों से एकटक उसकी ओर देखती रहती।

वह हल्के से मुस्कराया। कीर्ति, कौतुक, स्तुति, सम्मान– सच पूछो तो इस सब के प्रति उसका कभी लगाव या आकर्षण नहीं रहा। एक तो पहले से ही न था दूसरे उसने अब उसका खोखलापन भी देख लिया था। लेकिन यह कैसे कहा जाए कि लगाव न था? आज की सभा में वह कैसा अस्वस्थ हो रहा था। कहीं उसकी पत्नी ने देख लिया होता तो...... इसीलिए तो वह पत्नी को ले जाने की बात टाल गया था। स्वयं भी न जाने का निश्चय करके भी वह आखिर वहाँ गया ही। क्यों?..

"कहीं तुम यह तो नहीं कहना चाहतीं कि अब यह नाटक बंद करो....." वह जानबूझकर हँसा व भोजन करके उठ गया।

दस बज गए थे, दोनों लड़के सो गए थे, सामने के दरवाजे पर कुत्ता कहीं से लाई हुई हड्डी चूस रहा था। टेबिल पर रखे ट्रे में नए उपन्यास के लिखे पहले पच्चीस पन्ने रखे थे। इस नए उपन्यास का अभी कोई नाम ही नहीं सूझ रहा था। वैसे लेखक का नाम पहले से ही लिख दिया गया था।

आज से छह वर्ष पूर्व उसने अपने एक अनुभव के आधार पर दो लघु निबंध लिखे थे। उन दिनों साहित्य में नाम कमाने, सतत लिखने आदि की कुछ भी आकाँक्षा नहीं थी। उसके अंतर के भाव उमड़ रहे थे, अतः कागज़ पर घसीट मारे और उन्हें कल्याण को बताया....... मास्टरी छोड़ प्रकाशक का धंधा करने वाले कल्याण को वे बहुत पसंद आए। और भी आठ-दस निबंध लिखे गए थे। फिर एक दिन कल्याण उन्हें प्रकाशित करने की बात करने लगा। पहले कुछ निबंधों को पत्रिकाओं में छपवाने और फिर सबको एक संग्रह में प्रकाशित करने की योजना बनी। उसे यह विचार विशेष अच्छा न लगा। उसका जीवन एक विशिष्ट दायरे में बीता था, उसी में उसने जो देखा, अनुभव किया उसे शब्दों में अंकित कर दिया था। उसके पीछे पैसा, कीर्ति आदि उद्देश्य न था। परंतु कल्याण तो पीछे ही पड़ गया। कल्याण के मुंह से यह सुनकर कि उसमें लेखन प्रतिभा है, उसकी लेखनी वज़नदार है, उसे

'निदान-स्वतःच्या नांवावर नको, टोपण नांव घेऊं' त्यानें मनाच्या एका ताणलेल्या अवस्थेंत ठरविलं. त्याला त्या सुमारांस मूल होणार होतं- व त्यांचं नांव 'आनंद' ठेवायचं ठरविलं होतं. मूल जन्मतांच गेलं आणि त्यानंच 'आनंद' नांव धारण करून पुस्तक प्रकाशकाकडे दिलं. आनंद अक्षीकर. अक्षीकर हें आडनांव कसं सुचलं कुणास ठाऊक. प्रास जुळण्यासाठीं अक्षय्य तृतियेला प्रकाशकाशीं ह्या गुपिताचं ठरलं म्हणून ? कीं आणखी कांहीं ? नेमकं कारण तो विसरून गेला. एव्हांना तो एक कादंबरी पुरी करीत होता. लघुनिबंधाच्या पुस्तकाचा बोलवाला होतो न होतो तों कादंबरी प्रसिद्ध झाली. आणि मग आनंद अक्षीकर व त्याचं साहित्य हा एक चर्चेचा, लोकप्रियतेचा विषय झाला.

धंदेवाल्यापेक्षांहि कल्याण दोस्तासारख वागला. राजाभाऊ रानडेचं रहस्य त्यानें शिताफीनें सांभाळलं. प्रथम गंमत म्हणून, अन् मग अटीतटीनें. एक नवा लेखक उजेडांत आणण्याचं , यशाच्या शिखरावर नेण्याचं श्रेय पुरं उपभोगतां येईना, राजाभाऊला टीकाकारांना, वाचकांना, लेखकलोकांना 'दाखवतां' येईना. पण प्रकाशनाच्या तापदायक व्यवसायांत हें टोपण नांवाचं गूढ थोडी गंमत आणीत होतं. राजाभाऊला लेखन करायला मोकळं ठेवून स्तुतिनिंदेचे, काळजीचे व व्यवहाराचे सर्व वार प्रकाशकानें आपल्या अंगावर घेतले.

केवढी मोकळीक ! मन:पूर्वक लिहावं व बाजूला सरावं. स्तुतीनें बिघडायला नको. कीं टीकेनें अडायला नको. कांठावर उभं राहून हवं तर गंमत बघावी. त्यानें दुसरी कादंबरी लिहिली, आणिक आठदहा ललीत लेख लिहिले. तिसरी कादंबरी लिहिली. चवथी हातीं घेतली.....एखाद्या निरागस बालिकेचं नृत्य, फुलपांखराचं बागडणं, रंगांची आकाशांत उधळण, प्रतिमेचं स्वैर भराऱ्या घेणारं विमुक्त लेखन...... गेली पांच वर्षं त्यानें हे निर्भर सुख अनुभवलं. तंत्राचा, विषयाचा, टीकेचा भडिमार माजवायचा नाहीं. हवं तें हवं तसं लिहायचं व कल्याणच्या स्वाधीन करायचं. प्रसिद्ध झालेलं पाहायचं व पुढें लिहायला लागायचं. टीका, प्रतिटीका, अभिप्राय, चर्चा-कसलाच ताप नको. पांच वर्षं केवळ लेखन करण्याचा आनंद. निरपेक्ष,निर्भेळ सुख.

पण त्याच्या निर्भर प्रतिभेला दृष्ट लागूं लागली. त्याच्या अज्ञातवासाबद्दल अफवा उठूं लागल्या. टोपण नावांबद्दल विकृत कुतूहल उत्पन्न झालं स्तुतिनिंदेच्या लाटा त्याच्यापर्यंत पोचूं लागल्या. कसल्याशा अज्ञात ओढीनें तो सभेला गेला. अण्णा व ताराबाई बोलत, प्राध्यापक सासरा व्याख्यानं देई. प्रकाशकाकडे साहित्यिकांच्या अड्डयांत चर्चा चाले-पण शेंकडो वाचक 'एकाकिनी' वरची चर्चा ऐकतांना स्वतःच्या डोळ्यांनीं बघितलं तेव्हां तो हेलावून गेला. त्यांतच आतां बायकोचा आग्रह......

बायको आली व दार लावून पलंगावर पसरली. प्रथम त्यानें तिच्याकडे पाहाण्याचं टाळलं. अन् मग ती रूसली आहे कां तें तो निरखून पाहूं लागला. डोळ्यांवर हात टाकन ती निमूट निजली होती. आज तिला काय झालं होतं ? आजवर केवढी समंजसपणें वागली होती. लेखनास पूर्ण एकांत मिळवून दिला होताच ; पण नवरा लेखन करतो ही गोष्ट आपल्या पोटच्या मुलांपासूनहि तिनें लपवून ठेवली होती. आतां ती कंटाळली, थकली ? एखाद्या वांझ स्त्रीसारखी विकृत झाली?

स्वयं आश्चर्य हुआ। आखिर उसने निश्चय किया कि स्वयं के नाम से ही नहीं तो किसी अन्य नाम से वह लिख सकता है। उन दिनों उस के यहाँ बच्चा होने वाला था और उसने उसका नाम 'आनंद' रखने का सोचा था परंतु लड़का होते ही चल बसा और फिर उसने आनंद नाम से ही प्रकाशक को पुस्तक छपने दी। उसके बाद आनंद अक्षीकर कैसे हो गया उसे कुछ याद नहीं। शायद अनुप्रास की खातिर या फिर अक्षय तृतीया को ही प्रकाशक से बात हुई थी, इस कारण अक्षीकर हुआ उसे याद न रहा। असली कारण वह भूल ही गया। इस समय वह एक उपन्यास पूरा कर रहा था। लघुनिबंध प्रकाशित होते ही लगे हाथ उपन्यास भी छप गया और फिर आनंद अक्षीकर एवं उसका साहित्य एक चर्चा का विषय बन गया। . . .

धंधे की अपेक्षा कल्याण ने अपनी मित्रता ही निभाई। राजाभाऊ रानडे के रहस्य को उसने बड़ी सफाई से छिपा रखा। पहले तो एक खेल के नाते और बाद में गंभीरता के साथ। कल्याण से एक नए लेखक को प्रकाश में लाने का पूरा श्रेय उपभोग न करते बना, कारण कि वह राजाभाऊ को उसके पाठकों के समक्ष, लेखकों, आलोचकों के सामने न ला सकता था। प्रकाशक के कष्टदायक कामों में यह रहस्य एक नया रंग भर रहा था। उसने राजाभाऊ को केवल लिखने का काम सौंपा इसके अलावा अन्य व्यावहारिक काम प्रकाशक स्वयं करता तथा स्तुति-निंदा भी सुनता। . . . .

कितनी स्वतंत्रता! जी भर के लिखो और दूर रहो स्तुति से। बिगड़ने का डर नहीं और न निंदा से डरने का; बस दूर से तमाशा देखो। उसने फिर दूसरा उपन्यास लिखा तथा आठ-दस निबंध लिखे। तीसरा उपन्यास लिखा, चौथा लिखना आरंभ किया. . . . .किसी अबोध बालिका के नृत्य समान, फूलों के खिलने सदृश, आकाश में बनते रंगों के समान स्वच्छंद लेखन. . . . . पिछले पाँच साल में उसने इस आनंद का अनुभव किया। आलोचना की चिंता से निरपेक्ष जो मन में आया लिखा, और कल्याण के सुपुर्द किया। प्रकाशित साहित्य को देखना और आगे लिखना बस इतना ही। आलोचना-समालोचना, संमतियाँ, चर्चा, किसी की भी चिंता नहीं। पाँच साल तक केवल लिखने का आनंद, निरपेक्ष सुख, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। केवल आनंद।

आगे चल कर उसके आनंद में विघ्न आने लगे। उसके अज्ञातवास को लेकर अफ़वाहें उड़ने लगीं। छद्मनाम को लेकर विकृत कौतूहल उत्पन्न होने लगा। स्तुति निंदा की बातें उसके कानों तक पहुँचने लगीं। एक अनजाने आकर्षण में खिंचकर वह सभा में गया। अण्णा व ताराबाई उस के बारे में बातें करते, उसके प्रोफ़ेसर ससुर भाषण देते। प्रकाशक के यहाँ साहित्यिकों के अड्डे में चर्चा होती, लेकिन जब उसने अपनी आँखों से आज सभा में हजारों पाठकों को 'एकाकिनी' की चर्चा करते सुना तो उसका दिल भर आया और ऊपर से आज पत्नी की ये बातें. . . . .

पत्नी दरवाज़ा लगाकर लौटी और पलंग पर लेट गई। पहले तो उसने पत्नी की ओर देखना टाला और फिर यह देखने कि वह रूठी तो नहीं है उसकी ओर निहारने लगा। आँखों पर हाथ रखे वह चुपचाप पड़ी थी। आज उसे क्या हो गया? आज तक वह कितनी समझदारी से रहती आई है। उसने लिखने के लिए एकांत व सारी सुविधाएँ दीं, यहाँ तक कि अपने पेट के बच्चे से भी उसने पति के लेखक होने की

तो तिच्याजवळ बसला. खरं म्हणजे त्याचीच चूक होती . उगाचच सभेला जाण्यांत त्याचा स्वतःचाच तोल गेला होता. अन् आतां तिला तो बोल लावत होता. तो नेटाने वागला तर ती नक्कीच साथ देईल. तिचे डोळयावरील हात दूर करीत, आपल्या हातांत धरून ठेवीत तो म्हणाला, "शकू, असं वेडयासारखं काय बरं ! माझं नावं जाहीर झालं तर मी वर्णन केलेल्या व्यक्ति, माझे अनुभव मतं-सगळयांना एक वेगळं स्वरूप नाहीं कां येणार ? कितीतरी जणांशीं आपले संबंध विघडतील. पुन्हां मला इतक्या निर्भरतेनें, बेछुटपणें लिहितां यायचं नाहीं. अन् प्रसिद्धीचं लचांड मागें लागलं तर माझी काय अवस्था होईल...."

तिनें कुशी बदललीं व म्हटलं,

"मी कांहीं म्हणत्येय का? प्रतिभा म्हणजे पत्नीची सवत. असलं कांहीं तुम्हीं एका लेखांत लिहिलंय ना ! मग सवतीला उजळ तोंडानें मिरवा असं मी कशाला म्हणू? चालू दे तुमचं चोरून ! ......तुमच्या लेखनाबद्दल मला कांहीं माहीत नाहीं——असंच नाहीं कां आपण ठरविलेलं?.....कशाला काढतां तो विषय...."

त्यानें तिची आक्रसणारी बोटं सोडून दिली व टेबलावर लिहून ठेवलेल्या कादंबरीच्या कागदाकडे पाहिलं. वाटलं, लेखनसमाधीला आपल्या पत्नीची दृष्ट्र लागणार. इतके दिवस किती व्यवस्थित चाललं होतं ! चार भिंतीआड आपण लेखन करीत राहिलों. आपण नि आपल्या बायकोनें एक गुपित जोपासलं, आज उगाचच आपण सभेला गेलों नि त्या रहस्याला डाग लावला. आपणच पत्नीशीं, प्रतिभेशीं प्रतारणा केली. विलक्षण अस्वस्थ झाला व टेबलावर लिहून टाकलेली कादंबरीची पानं वाचावयाचा प्रयत्न करूं लागला.

* * *

तीन चार दिवसांत त्याच्या हातून एक ओळहि लिहिली गेली नाहीं. दोन दिवस कारखान्याला सुट्टी होती. मुलं आजोळीं गेलीं होतीं व शकूहि पापड करण्याच्या गड-बडींत माजघरांत अडकून पडली होती. भरपूर वेळ होता व खूप लिहायचं होतं. कथानकानें गति घेतली होती व कादंबरीलाहि आकार येत चालला होता. 'एकाकिनी' गाजत असतांनाच नवी कादंबरी बाजारात येणें इष्ट होतं. आनंद अक्षीकरच्या आगामी कादंबरीची जाहिरात कल्याण प्रकाशननें सुरूं केली होती.

पण आनंद अक्षीकर टेबलाशीं बसून, पेन उघडून कागद पुढें ओढून लिहूं शकत नव्हता. प्लॅस्टीकच्या कारखान्यांतील जाहिरात विभागाचा प्रमुख राजा रानडेच त्या कागदांना कुरवाळीत बसला. राजा रानडे, त्याचा संसार, त्याची नौकरी सारं नाहीसं होत असे व आनंद अक्षीकर आपल्या अनुभवविश्वाचा आविष्कार करीत कलाकृति निर्माण करी. आतां ही किमया काळवंडली होती. पलीकडे पत्नी पलंगावर पसरली आहे असं वाटे. उद्यां कोकीळ म्हणेल, 'तुम्हीं, हें लिहीलंत ? माय गॉड्—!" अन् सासरेबुवा तर अवाक् होऊन पहातच रहातील. स्वाक्षरी मागणारे, सत्कार करणारे.........राजाभाऊ रानडे ते लिहून पडलेले कागद वरखालीं करीत रंगीबेरंगी स्वप्न पाहूं लागला.

पूर्वी असं कधी झालं नव्हतं. स्तुतिप्रसिद्धीची पहिली झुळूक पहिल्या पुस्तकाच्या प्रकाशनानंतर आली तेव्हां क्षणभर वाटलं होतं की पुढें व्हावं व सन्मानाचा वर्षाव अंगावर घ्यावा. त्यांतला उन्माद उपभोगावा. क्षणभरच ! मग आपण बाजूला

बात छिपाई। अब वह इस नाटक से ऊब गई, थक गई क्या ? बाँझ नारी समान विकृत हो गई क्या ?

वह उठकर उसके पास बैठा। सच पूछो तो उसकी ग़लती थी। सभा में जाने का आकर्षण न रोक पाने के कारण ही उसका संतुलन डगमगा गया और अब वह पत्नी से बोलने को कह रहा था। यदि उसने अपना निश्चय क़ायम रखा होता तो पत्नी ने भी ईमानदारी से साथ दिया होता। पत्नी के हाथ आँखों से दूर कर अपने हाथों में लेकर उसने कहा "शकू, यह क्या पागलों के समान कर रही हो ? यदि मैंने अपना नाम प्रकाश में ला दिया तो आज तक की स्थिति को एक नया ही रूप मिलेगा। न जाने कितनों से हमारे संबंध विगड़ जाएँगे। फिर मुझसे इतनी स्वेच्छा से लिखते नहीं बनेगा। एक बार प्रसिद्धि का भूत पीछे लग गया तो न जाने मेरी फिर क्या हालत होगी......"

पत्नी ने करवट बदल कर कहा "मैं कुछ कह रही हूँ क्या ? प्रतिभा याने पत्नी की सौत— यह तुमने अपने किसी लेख में लिखा है ना ? फिर मैं अपनी सौत का विज्ञापन कैसे चाहूँगी ? चलने दो अपना यह चोरी से लेखन कार्य....... तुम्हारे लेखन के बारे में मुझे कुछ नहीं मालूम..... हमने यही तय किया था ना ?...... फिर क्यों उस विषय को सामने लाते हो ?......"

उसने उसकी अँगुलियों को छोड़ दिया और टेबिल पर रखे, लिखे हुए उपन्यास के पन्नों की ओर देखा। उसे लगा कि अब इस लेखन सामग्री पर उसकी पत्नी की नज़र लगेगी। इतने दिनों तक कैसा अच्छा कारभार चल रहा था। चहारदीवारी के भीतर मैं लेखन करता रहता था। मैंने व पत्नी ने मिलकर एक रहस्य को छिपाया। आज मैं बेकार सभा में गया। आज उस रहस्य को दाग़ लग गया। मैंने प्रतिभा को, पत्नी को प्रताड़ित किया; ऐसा सोच कर वह बेहद अस्वस्थ-सा हो गया और टेबिल पर बिखरे उपन्यास के पन्ने पढ़ने का प्रयत्न करने लगा।

* * *

तीन चार दिन में उससे एक पंक्ति भी न लिखी गई। दो दिन आफिस की छुट्टी थी। बच्चे ननिहाल गए थे, शकू भी पापड़ बेलने में व्यस्त रही। खूब समय था और खूब लिखना था। कथानक में भी गति आ गई थी और उपन्यास जमता जा रहा था। 'एकाकिनी' की चर्चा समाप्त होने के पूर्व ही नया उपन्यास बाज़ार में आ जाना चाहिए। कल्याण ने भी आनंद अक्षीकर के आगामी नए उपन्यास की सूचना प्रकाशित कर दी थी।

लेकिन आनंद अक्षीकर टेबिल के सामने बैठ पेन हाथ में ले, कागज़ पास में खींचकर भी लिख नहीं पा रहा था। प्लास्टिक के कारखाने के विज्ञापन विभाग का प्रमुख राजाभाऊ रानडे उन कागज़ों को लेकर केवल बैठा रहा। राजा रानडे, उसकी नौकरी, उसकी गृहस्थी सब कुछ भूल कर उसकी जगह आनंद अक्षीकर अपने अनुभवों के आधार पर नई कलाकृति का निर्माण करता था। अब वह प्रक्रिया बंद थी। बग़ल के पलंग पर पत्नी लेटी थी। वह सोचता, कल कोकील कहेगा....."यह सब तुमने लिखा ? माई गाड। और फिर कलके दिन ससुर साहब तो अवाक् होकर देखते ही रह जाएँगे। आटोग्राफ़ माँगने वाले, सम्मान करने वाले.... राजा भाऊ रानडे उन काग़ज़ों की ओर देखते रंग-बिरंगे स्वप्न देखने लगा...।

अाहोंत, अज्ञात आहोंत ह्यांचं त्याला वरंच वाटलं. प्रसिद्धी प्रमुखाचं काम करीत तो प्लॅस्टीकच्या खेळण्यांच्या जाहिराती खरडीत होता. एका वेगळ्या वातावरणांतली चित्रं रंगवीत कादंबऱ्या लिहीत होता. प्लॉस्टीकची खेळणीं तडाखेबंद विकलीं जात होतीं. तऱ्हेतऱ्हेचे वाचक त्याच्या लेखनावर खूष होते. आणि तो हा सगळा खेळ अलिप्त-पणें पाहात होता. स्तुतीची, प्रसिद्धीची त्याला एवढीही ओढ वाटली नाहीं. स्वभा-वतःच लाजरा अन् साहित्य सृष्टितले राग लोभ त्याच्या मनांत उबग निर्माण करून बसलेले. मराठीचा प्राध्यापक असलेल्या सासऱ्यानें जांवईबापू साहित्यांत रस घेत नाहीत म्हणून नापसंती दर्शविली. एका लेखक मित्रानें त्याची कादंबरी त्यालाच भेट दिली. त्याला भेटावं म्हणून ऐंशी वर्षांची एक आजारी स्त्री प्रकाशकाच्या दारीं धरणं धरून बसली. परदेशच्या सफरीची संधी आली—पण आनंद अक्षीकरचा बुरखा त्यानें काढला नाहीं. आपल्या नादांत मशगूल राहून तो लेखन करीत राहिला.

पण स्तुतिप्रसिद्धीचा स्रोत प्रखर झाला व वेसावधपणें त्याची बुबुळं दीपवून गेला. लेखनसमाधी लागेना. प्रतिभा स्पष्ट झाली व वायकोहि नाराज झाली. त्यानें अखेर असहाय्य होऊन शकूला हांक मारली.

पदर मोकळा करीत ती आली. तिचे डोळे वेगळे वाटत होते. नवरा लिहिण्याच्या खटपटींत आहे हें तिच्या गांवीहि नव्हतं. वेपर्वाईनें ती म्हणाली,

"काय काम काढून बसले आहांत—एवढं? सुट्टीतहि ऑफिसचं काम कशाला आणता? ....मी चालल्यें आहे बाजारांत. तारावाईच्या सुनेचं परवां डोहाळजेवण आहे. मला खरेदी करायला हवी....."

निर्विकारपणें त्याच्यासमोर ती साडी बदलूं लागली.

शकूनें असहकार सुरू केला होता. परगांवीं नोकरी धरली व तिच्यावरोवर चोरून पत्रव्यवहार चालूं ठेवला तेव्हां ती अशीच वैतागली होती. प्रेम प्रकट करायला, लग्न करून एकत्र राहायला आतुर झाली होती. तेव्हां तिच्यापुढें अखेर त्याला हार खावी लागली. आतां आपण पुन्हा हार खाणार? अज्ञात राहून लेखन करण्यामागचं आपलं तत्वज्ञान तिला फोल वाटूं लागलं? अखेर ती आपल्या जातीवरच चालली ? मुलांना, वडिलांना ती सांगे की हे ऑफिसचं काम करीत आहेत, त्यांना त्रास देऊं नकां. अन् आतां सरळ वेड पांघरून नवरा ऑफिसचं काम करतो आहे म्हणून स्वतःच तक्रार करीत होती. त्याच्या गुपितांतून ती वाजला होणार नि मग......

बायकोबरोबर बाजारात जायचा त्याला मनस्वी कंटाळा असे. पण आज तो निमूटपणें निघाला. तिच्या कलानें घ्यावं. नाहींतरीं बसलं तर अगदींच भुतासारखं वाटायचं. खुळखुळे व गलोती पहात चार पांच दुकानं दोघं हिंडली व मग एका साडयांच्या दुकानांत शिरली. तीं तऱ्हेतऱ्हेच्या साडया हाताळूं लागली व तो दाराशींच कांचेआड ठेवलेली मेणाची तरूणी पाहात उभा राहिला.

जरा वेळानं त्यानें पाहिलं . तों ती दुकानांत कमळाबाईंशीं गप्पा मारीत उभी होती. दोघींची ओळख होती, पण आता जणूं त्या जिवाभावाच्या मैत्रिणींसारख्या कुजबुजत होत्या. प्रकाशकाच्या पत्नीशीं ती काय बोलत असेल ? कालच्या सभेवद्दल ? आनंद अक्षीकरच्या रहस्यावद्दल ? म्हणजे, कल्याणनें आपल्या पत्नीलाहि आपलं गुपित सांगितलं असेल ? कल्याणवर त्याचा विश्वास होता. त्याच्या चातुर्यामुळेंच तें गुपित टिकलं होतं. पण त्यानें ते आपल्या बायकोजवळ सांगितलं असेल, हा विचारहि त्याला

पहले कभी ऐसा नहीं हुआ। वस जब पहिली पुस्तक प्रकाशित हुई थी और उसकी चारों ओर प्रशंसा हुई तभी एक वार मन में आया था कि इस रहस्य को खोल सामने आकर उस सारे सम्मान को, प्रशस्ति को स्वीकार करूँ। लेकिन यह भाव आए केवल क्षण भर को, उसके बाद उसे अज्ञात रहने में ही आनंद आया, फिर वह प्लास्टिक के खिलौने के विज्ञापन विभाग में वैठा विज्ञापन घसीटता रहा। एक दूसरे ही वातावरण में वैठे उपन्यास के पन्ने रंगता रहा। एक ओर प्लास्टिक के खिलौने धड़ाके से विकते दूसरी ओर विभिन्न पाठक उसकी रचना पर खुश होते। और वह निरपेक्ष होकर दूर से ही यह खेल देख रहा था। स्तुति या प्रशंसा का उसे आकर्षण न रहा वैसे भी वह स्वभाव से शर्मीला था। मराठी के प्रोफ़ेसर, उसके ससुर, उससे इसलिए नाराज़ रहते कि वह साहित्य में कोई रुचि नहीं लेता। एक लेखक मित्र ने उसके द्वारा ही लिखा उपन्यास उपहार में दिया। उससे मिलने के लिए एक अस्सी साल की वीमार बुढ़िया प्रकाशक के दरवाज़े पर धरना देकर वैठी रही। विदेश गमन का भी मौका आया परंतु उसने आनंद अक्षीकर के नाम का वुरका नहीं उतारा, वह तो अपने लेखन में ही डूबा रहा।

प्रशंसा की ज्योति तीव्र हुई और उससे उसकी आँखें चौंध गईं। लेखन समाधि भंग हुई। प्रतिभा पर निखार आया और यहाँ पत्नी नाराज़ हो गई। आखिर उसने शकू को आवाज़ दी। आँचल सँभालती वह आई। उसकी आँखें अजीब नज़र आ रही थीं। उसे पता भी न था कि पति लिखने के इरादे में हैं। वह लापरवाही से वोली, "क्या काम निकाल रखा है? छुट्टी में भी आफ़िस का काम क्यों ले आते हैं? . . . . . . मैं जा रही हूँ वाज़ार। तारावाई के घर कल उत्सव है, मुझे शापिंग करने जाना है. . . . ."

निर्विकार रूप से वह उसके सामने साड़ी वदलने लगी। शकू ने असहकार चालू कर दिया था। जव दूसरे शहर में नौकरी कर उसके साथ चोरी से पत्र-व्यवहार जारी रखा था उस समय वह इसी प्रकार नाराज़ हुई थी। वह प्रेम प्रगट करने तथा विवाह के लिए उत्सुक हो उठी थी। तव शकू के सामने उसे हार माननी पड़ी थी। क्या अव भी उसे ही हार स्वीकार करनी पड़ेगी? अज्ञात रहकर लेखन का सिद्धांत उसे अव युक्तिसंगत नहीं लगता। आखिर वह अपनी जाति पर ही गई। पहले वह वच्चों को तथा अपने पिता को कह दिया करती थी कि वे आफ़िस का काम कर रहे हैं। उन्हें डिस्टर्व न करो। लेकिन अव जानते हुए भी वह अनजान वन रही है। उसके रहस्य की सहभागी वन रहना नहीं चाहती. . . . .

पत्नी के साथ वाज़ार जाने की उसकी कभी इच्छा न रहती थी। लेकिन आज वह चुपचाप उसके साथ चल दिया। वैसे भी वह चुपचाप भूत के समान घर में बैठा था। खिलौने देखते दोनों चार-पाँच दूकानें घूमे, फिर एक साड़ी की दूकान में घुस गए। शकू विभिन्न प्रकार की साड़ियाँ परखती रही और वह दरवाज़े के पास ही काँच के शो केस में रखी युवती को देखता रहा।

कुछ देर बाद उसने देखा कि शकू दूकान में कमलाबाई से गप्पें कर रही थी। दोनों एक दूसरे से परिचित थीं और इस समय अभिन्न मित्रोंके समान बातें कर रही थीं। प्रकाशक की पत्नी के साथ वह क्या बातें कर रही होगी? क्या कल की सभा के बारे में? आनंद अक्षीकर के रहस्य के बावत? तो क्या कल्याण ने अपनी पत्नी को उसके रहस्य के बारे में बता दिया है? उसका कल्याण पर पूरा विश्वास था।

10—1 C. H. D./64

आजवर सुचला नव्हता. इतर एखादे वेळेला त्याला ह्याचं कांहीं वाटलं नसतं. शकू-प्रमाणें कमळाबाईहि गुप्तता राखेल अशी खात्री वाटली असती. पण आतां शकूच उलटल्यावर.....शकू व कमळाबाई साडयांकडे पाठ फिरवून गप्पा मारतांना पाहिल्यावर........

कमळाबाईनें तेवढयांत त्याच्याकडे हंसून पाहिलं व तो दचकला. वरकरणी नमस्कार करीत म्हणाला, "मोठी खरेदी चाललेली दिसतेय. अन् कल्याण कुठाय?"

"घरींच बसल्येत. साडयांच्या दुकानांत यायला भितात—"

"हे तरी काय—" शकू मध्येंच म्हणाली, "ऑफिसचं काम सोडून यायला तयार नव्हते—"

दोघी मोठयानें हंसल्या व त्याचा चेहेरा उगाचच गोगमोरा झाला.

दोघींनीं मिळून खरेदी उरकायचं ठरविलं व त्या साडया निवडण्यांत गर्क झाल्या. तो वेडयासारखा दाराजवळची मेणाची पुतळी पाहात जरावेळ उभा राहिला. शकूनें आपलं गुपित कमळाबाईला तर नाहीं सांगितलं? दोघींनीं कट तर नाहीं केलेला? आपण आपल्याच नादांत असतांना आपलें रहस्य सगळीकडे फुटणार?

हात चोळीत तो रस्त्यावर आला. कुणीतरी आपल्याला अडवेल व कांहींतरी विचारील असं त्याला भय वाटलं. आपल्याभोंवतीं गर्दी आहे असं वाटलं. त्यानें रिक्षा केली व तो कल्याणकडे गेला.

"वसा, येतील आत्तां. जरा आंत गेले आहेत—" खतावण्या लिहित बसलेला कारकून म्हणाला व तो कल्याणच्या कचेरीतल्या एका लोडाला टेकून बसला.

हा त्याचा प्रकाशक. त्याचा एजंट्, त्याचा सगळा पत्रव्यवहार बघणारा, त्याला प्रसिद्धीचा ताण न लावू देणारा जिवलग दोस्त. कल्याणचे कितीतरी लेखक होते, पण गाढ दोस्ती कदाचित् त्याच्याशींच असेल. तो भिंतीवर लावलेले लेखकांचे फोटो पाहूं लागला. सगळे होते —फक्त आनंद अक्षीकर नव्हता.

त्याला जरा हंसू आलं. तो असाच बाजूला बसला असतांना आनंद अक्षीकरबद्दल कल्याणची व इतर साहित्यिकांची होणारी बोलणीं आठवलीं. केवढी गंमत असते असं ऐकण्यांत! खुषींतच तो कपाटांतले ग्रंथ पाहूं लागला. कोनाडयात ठेवलेला गडकऱ्यांचा अर्धपुतळा पाहूं लागला.

"जगण्यासारखं जवळ असतं तोंवर मरण्यांत मौज असते—" गडकऱ्यांचं सुभाषित त्याला अचानक आठवलं. अन् मग तो एकाएकी डोळे फाडून पाहूं लागला. 'प्रसिद्धीची परिसीमा होते तोंवर प्रकट होण्यांत प्रयोजन असतं—' अगदीं काळजांतून कुणीतरी कण्हलं. भिंतीवर लावलेले 'कल्याण प्रकाशन' च्या लेखकांचे फोटो, कपाटांत ठेवलेले ग्रंथ तो न्याहाळूं लागला व परत त्याची दृष्टि गडकऱ्यांच्या प्रतिमेवर स्थिर झाली. ऐन उमेदींत गोविंदाग्रज गेले. त्यांचा पुतळा, चिल्लर लेखकांचे फोटो. आनंद अक्षीकरचा मात्र फोटो कुठेंहि नाहीं...........पण मग केशवसुतांचं तरी चित्र कुठें आहे? केशवसुत तर अजून गात बसले आहेत....तो स्वतःशीं हंसला व परत लेखकांच्या फोटोंची रांग पाहूं लागला.

'प्रसिद्धीची परिसीमा होते तोंवरच....' उडत्या चालीचं सिनेमातलं गाणं नको म्हटलं तरी ओठावर यावं तसं स्वतःच जुळवलेलं वाक्य त्याच्या ओठाशीं घुटमळलं. तीन कादंबऱ्या व तीस लघुनिबंध. दहा एक हजारांची कमाई. चाळीशी जवळ आलेली. पत्नीहि अधीर झालेली. साहित्यिक जगांत कुतूहल शिगेला पोहोंचल.....हीच, हीच

कल्याण के कारण ही उसका रहस्य टिका हुआ था। उसने कभी यह सोचा ही न था कि कल्याण अपनी पत्नी को बता देगा। और कोई समय होता तो वह इस बात को टाल जाता और सोचता कि शकू के समान ही कमलाबाई भी रहस्य को छिपा रखेंगी परन्तु अब शकू के ही पलटने पर .... शकू और कमलाबाई को पीठ फेर गप्पें मारते देख......

कमलाबाई तभी उसकी ओर देख कर मुस्कराई और वह चौंका, औपचारिक अभिवादन करने के बाद बोला, "बड़ी खरीद फरोख्त हो रही है, कल्याण कहाँ है?"

"घर ही बैठे हैं। साड़ी के दुकान में आने से डरते हैं......"

"हमारे ये भी तो आफ़िस का काम छोड़ कर आने को तैयार न थे।" शकू ने बीच में ही कहा।

दोनों ज़ोर से हँसीं और वह शरमा गया।

दोनों ने मिल कर साड़ियाँ पसंद करने की सोची और वे दोनों उसमें जुट गईं। वह पागल की तरह शो विंडो की लड़की को देखता रहा। शकू ने कहीं रहस्य बता तो नहीं दिया? दोनों ने कहीं समझौता तो नहीं कर लिया? मैं अपने में ही खोया रहूँ और कहीं ऐसा न हो कि मेरा रहस्य चारों ओर फैल जाए।

हाथ मलता हुआ वह रास्ते पर आया। उसे आशंका होने लगी कि कहीं कोई उसे रोककर कुछ पूछने न लगे। उसने रिक्शा तय किया और कल्याण के पास चल दिया।

"बैठिए, अभी आते हैं, ज़रा अंदर गए हैं" बाहर बैठे क्लर्क ने उससे कहा और वह एक तकिए से टिककर बैठ गया।

यह है उसका प्रकाशक, उसका एजेंट, उसका सारा पत्र व्यवहार देखने वाला। उसे प्रसिद्धि के पचड़े में न डालने वाला उसका अभिन्न मित्र। कल्याण के और भी अन्य लेखक मित्र थे। लेकिन शायद आत्मीयता उसी से अधिक थी। वह दीवाल पर लगी फोटो देखने लगा। सभी की फोटो थी..केवल आनंद अक्षीकर की नहीं।

वह मन ही मन हँसा। उसे वे प्रसंग याद आए जब वह यूँ ही अलग बैठा रहता और कल्याण के पास एकत्रित साहित्यिक लोग आनंद अक्षीकर के बारे में चर्चा करते। कितना मज़ा आता है ऐसे सुनने में। खुशी में डूब वह उठकर अलमारी में रखी पुस्तकें या आले में रखा गडकरी का पुतला देखने लगता।

उसे अचानक गडकरी के शब्द याद आए.... "जब तक जीने लायक पास में हो तभी तक मरने का आनंद है...." फिर वह आँखें फाड़ देखने लगा।

"प्रसिद्धि की परिसीमा होने तक ही प्रगट होने में प्रयोजन है".... अंतर से आवाज़ आई। दीवाल पर लगी, कल्याण प्रकाशन के लेखकों की फोटो, आलमारी में रखी पुस्तकें वह देखने लगा और फिर उसकी दृष्टि गडकरी के पुतले पर आ जमी। ऐन जवानी में गोविंदाग्रज गए। उनका पुतला, अन्य लेखकों के फोटो, लेकिन आनंद अक्षीकर की फोटो कहीं न थी..... लेकिन आखिर केशवसुत की फोटो कहाँ थी? केशव सुत तो आज भी गाते बैठे हैं.....वह फिर हँसा और पुनः लेखकों के चित्र देखने लगा।

वेळ नांव जाहीर करण्याची. चवथ्या कादंबरीच्या निमित्तानें ! चवथ्या कादंबरीचा लेखक........

तो अस्वस्थ झाला. कल्याण आंतून लवकर बाहेर येईल तर बरं, असं त्याला वाटलं. पहिली कादंबरी गाजली तेव्हां गुपित जाहीर करण्यासाठीं कल्याणनें गळ घातली होती तें आठवलं. शेवटचाच आग्रह. पुन्हां त्यानें त्रास दिला नाहीं. जगाला स्नेह सांगितला. तो जुना शाळकरी दोस्त म्हणून ! त्याच नात्यानें तो इथें येई, इतर लेखक गप्पा मारीत बसले कीं कोपऱ्यांत ऐकत राही. तोंड दाबून, गालांत हंसत ! केवढा कोंडमारा. पोटच्या गोळयाचं दुसऱ्यानें कौतुक करावं नि आईला एक अक्षरहि तोंडांतून काढतां येऊं नये ! तसा एक प्रसंग त्याच्या कादंबरींतच होता. कसा तो सुचला— कसा रंगवला गेला ? त्याचंच तें दुःख होतं काय ? काळजांत कुठेंतरी आपण अज्ञात राहण्यानें जळत होतों काय ?

त्या दिवाणखान्यांत त्याला बसवेना. वाटलं, एकदम ओरडून म्हणावं, "कल्याण मी आनंद अक्षीकर आलोंय........"

तेवढयांत कल्याण आंतून आला. बरोबर दादासाहेब देखणे व दोन प्रथितयश लेखक होते. कसलीशीं प्रकाशनाची योजना आंखण्याबद्दल बोलत होते. त्याच्याकडे न बघतांच ते दाराकडे गेले अन् कधीं नाहीं तें त्याला उकीरडयांत ढकलल्यासारखं झाल.

त्यांना निरोप देऊन कल्याण आंत आला व त्याच्यासमोर बसला. पानाचं तबक पुढं ओढीत म्हणाला,

" नांवासाठीं, प्रसिद्धीसाठीं काय हपापले असतात एकेक....तूं सुखी आहेस बाबा—! मला शंभरदा वाटतं, कालच्या सभेंत तर सारखा मोह होत होता कीं जाहीर करून टाकावं तुझं नांव ! पण ह्या लेखकांच्या कारवाया पाहिल्या कीं वाटतं तुझा निश्चयच बरोबर आहे. सगळयापासून दूर राहून तूं लेखन करतोस तेंच बेस्ट आहे—"

तो वेडयासारखा कल्याणकडे पाहूं लागला. हा आपल्याला कायमचा काळोखांत ठेवणार ? उद्यां शकू कुणाजवळ बोलली तरी हा ती बातमी खोटी म्हणून जाहीर करणार ? आपण मेल्यावर सुद्धां हें रहस्य उघड करणार नाहीं ? आपल्याला दडवून, गुदमरून टाकून स्तुति प्रसिद्धीचे तुकडे आपल्या पदरांत पाडून घ्यायला बघणार. लेखकाचं गुपित दाखल्याबद्दल कौतुक, इतकं चांगलं साहित्य प्रकाशित केल्याबद्दल स्तुति, अक्षीकर समोर नाहीं म्हणून कल्याणचा सत्कार....तो कल्याणकडे विचित्र नजरेनें पाहूं लागला व प्रथमच त्याच्या मनांत कल्याणबद्दल अढी निर्माण झाली.

* * *

कल्याणच्या घरून तो निघाला तेव्हां बरीच रात्र झाली होती. कल्याणशीं गप्पा मारायची त्याला इच्छा राहिली नव्हती. नवीन कादंबरीबद्दल, परवांच्या सभेबद्दल दादासाहेब देखण्यांच्या सूचनेबद्दल कितीतरी विषय कल्याणनें काढले. पण तो खुलला नाहीं. सारखं गुदमरल्यासारखं वाटत होतं—अन् तेथून उठणंहि जिवावर आलं होतं—साहित्याच्या क्षेत्राबाहेर आपल्याला काय किंमत आहे ? कोण विचारणार ?

"प्रसिद्धि की परिसीमा होने तक ही. . . ." ये शब्द उसके ओठों पर बार-बार उसी तरह आ रहे थे जैसे कोई फ़िल्मी गीत की पंक्तियाँ न चाहने पर भी बार-बार मुँह पर आती हैं। तीन उपन्यास और तीस लघुनिबंध, करीब दस हज़ार की कमाई, चालीस के करीब उम्र होने को आई, पत्नी भी अब अधीर हो उठी है। साहित्यिक जगत में कौतूहल चरम सीमा को पहुँच रहा है. . . . .यही. . . .यही समय है नाम प्रकाश में लाने का। चौथे उपन्यास के बहाने, चौथे उपन्यास के लेखक के रूप में. . . .

उसकी मानसिक स्थिति विचित्र सी हो गई। सोचने लगा कि कल्याण जितनी जल्दी बाहर आए उतना ही अच्छा। उसे वह दिन याद आया जब पहला उपन्यास प्रकाशित होने पर कल्याण उसका नाम प्रकाश में लाने का अनुरोध कर रहा था। वह उसका अंतिम आग्रह था। उसके बाद उसने कभी नहीं कहा। लोगों से उसने यही कहा कि पुराना स्कूली दोस्त होने से स्नेह संबंध है। उसी नाते से वह यहाँ आता था, अन्य लेखक गप्पें करते और वह कोने में बैठा सुनता रहता, हँसता रहता। कैसी अजीब घुटन! पेट के बच्चे की दूसरे प्रशंसा करें और माँ को उस बारे में एक शब्द भी बोलने का अधिकार न हो। ऐसा ही एक प्रसंग उसके उपन्यास में था। वह कैसे सोचा गया? कैसे लिखा गया? क्या वह उसका स्वयं का दुख न था? अज्ञात होने से दिल में कहीं दर्द ज़रूर उठता था।

उस ड्राइंगरूम में अब उससे बैठा नहीं जा रहा था। वह सोच रहा था कि ज़ोर से चीखकर कहे, "कल्याण! मैं आनंद अक्षीकर आया हूँ. . . . ."

इतने में ही भीतर से कल्याण बाहर आया। उसके साथ दादा साहेब देखणे व दो अन्य प्रसिद्ध लेखक भी थे। वे किसी प्रकाशन योजना के बारे में बातें करते आ रहे थे। उसकी ओर देखे बगैर वे दरवाज़े की ओर बढ़ गए और ऐसे में उसे लगा मानों उसको कूड़े के ढेर पर फेंक दिया गया हो।

उन लोगों से विदा ले कल्याण वापिस आया और उसके सामने बैठ पान की तश्तरी खींचता हुआ बोला, "नाम के लिए, प्रशंसा के लिए लोग कितने उतावले रहते हैं. . . . तुम सुख में हो भैया. . . . . कल की सभा में तो बार-बार इच्छा हुई कि तुम्हारा असली नाम प्रकाश में ला दूँ। परंतु इन लेखकों की करतूतें देख लगता है कि तुम्हारा निश्चय उचित ही है। सब झंझटों से दूर रहकर तुम लेखन करते हो यही उत्तम है. . . ."

वह पागलों की तरह कल्याण की ओर देखते हुए सोचने लगा कि यह कल्याण अब मुझे हमेशा के लिए अँधेरे में ही रखेगा। कल के दिन शकू ने किसी से कह दिया तो भी यह प्रकाशित करेगा कि यह गप्प है। झूठी बात है। उस के मर जाने के बाद भी यह रहस्य छिपा रहेगा। उसे दबाकर, छोड़कर प्रशंसा के उद्गार कल्याण स्वयं ग्रहण करेगा। लेखक को सामने लाने का श्रेय, इतना अच्छा साहित्य प्रकाशित करने का श्रेय, अक्षीकर की अनुपस्थिति में कल्याण का सम्मान, सत्कार. . . . वह कल्याण की ओर विचित्र दृष्टि से देखने लगा और पहली बार उसके मन में कल्याण के प्रति वितृष्णा उत्पन्न हुई।

रस्त्यावर अकौंटट कोकीळ दिसला व तो थबकला. कोकीळला उद्यां कळलं कीं राजाभाऊ रानडे म्हणजेच आनंद अक्षीकर तर त्याची जीभ कशी वळवळेल ? "रानडे—तुम्ही ? फोटोग्राफी, सतार अन् साहित्यहि ?" 'फोटोग्राफी नि सतार फार पूर्वींचे कोकीळ छंद म्हणून. लेखन हे माझं जीवन कर्म !'—त्यानें हात आडवा करून कोकीळला थांबवलं. "काय कोकीळ—लायब्ररींतून परत कां ? पुस्तकं कसलीं हातांत ?"

"पुस्तकं ? गेल्या वर्षीचा ऑडिटचा रिपोर्ट आहे हा. अहो, वेळ कुणाला आहे वाचायला ?..."

कोकीळ आपल्या नादांत निघून गेला. लोकांचं वाङ्मयप्रेम तेवढंच असतं. झोप यावी—झोंप जावी म्हणून. कंटाळवाण्या आयुष्याला फोडणी म्हणून चर्चा नि व्याख्यानं. लेखक कसा दिसतो याचं वांझोट कुतुहल. एखादां लेखक टोपण नांव घेऊन लिहूं लागला तर खमंग बाजारगप्पा. त्याला वाटलं आपल्या गुपिताचं कौतुक शेवटीं आपल्याजवळच. उद्यां आपण प्रगट झालों कीं लोक जरा सुस्कारा टाकतील—जरा नाराज गप्पांचा विषय संपेल. नांव लपवलं काय नि न लपवलं काय...

विचारांत गुरफटून तो गुदमरून गेला. हा सगळा गुंता डोक्यांतून काढून टाकण्या साठीं कासावीस झाला. परवांपर्यंत कसलहि सुतक नव्हतं; अन् आजच हें काय सुरू झालं ? सगळं विसरून केवळ लेखन करीत रहावं हेंच खरं ! मग कल्याण कांहीं म्हणो, शकू कांहीं करो.

दमून तो घराच्या रस्त्याला लागला. शकू दारांतच आपल्या वडिलांशीं बोलत उभी होती. सासरा दिसतांच त्याला कसं तरी झालं. वळणावरच्या पानवाल्याच्या दुकानाशीं तो थांबला व पूनामसाला मागूं लागला. पानाच्या दुकानांत आरशा-भोंवती पुढाऱ्यांचे व नटनटींचे फोटो लटकत होते. आरशांत त्याचा मुखडाहि दिसू लागला. राजा रानडेचा. लेखकाचा. आनंद अक्षीकरचा. उद्यां त्याचं नांव जगजाहीर झालं कीं......पिचकारी थुंकून तो वळला तेव्हां सासरे बुवा पुढूनच चालले होते. त्याला वाटलं, त्यांनीं बघितलं व ते हंसले. म्हणजे—त्यांनाहि कळलं ? शकूनें अखेर सांगितलं ? सासऱ्याला आपला जांवई नुसतंच जाहिराती खरडीत नाहीं, तो मोटा लेखक आहे, हें कळल्यानें काय वाटेल ? त्याची छाती पुढें झाली व हंसत-मुखानें तो घरीं आला. त्याला पाहतांच शकू तोंड वळवून आंत गेली. स्वैपाकघरांत कामाला लागली. क्षणापूर्वी आलेला उत्साह तितक्याच झपाट्यानें ओसरून गेला. एकदां वाटलं, 'तुझ्या मनासारखं होऊं दे—उद्यांच पेपर्समध्यें देतो. सनसनाटी बातमी, त्यांतही माझी कला दाखवतो, नुसती खेळण्याची जाहिरात खरडीत नाहीं मी. माझी स्वतःची जाहिरात मीच लिहीतो. काय सौ. अक्षीकर ?'

कल्याण के घर से लौटते समय उसे काफ़ी रात हो गई थी। कल्याण से गप्पें करने की उसकी इच्छा न थी। कल्याण ने नए उपन्यास के बारे में, परसों की सभा के बारे में, दादा साहेब देखणे की अंतिम सूचना के बारे में तथा और भी अन्य विषय के बारे में बातें कीं, परंतु वह खुला नहीं। एक घुटन में फंसा रहा। उसे वहाँ से उठने की भी इच्छा न थी। साहित्य क्षेत्र से बाहर अपनी क्या क़ीमत है ? उसे कौन पूछेगा ?

रास्ते में एकाउटेंट कोकील दिखा और वह ठहरा। कल के दिन यदि कोकील को पता चला कि राजाभाऊ रानडे ही आनंद अक्षीकर है तो उसकी जीभ कैसी लटपटाएगी? 'रानडे––आप ? फ़ोटोग्राफ़ी, सितार और साहित्य भी?" "फ़ोटोग्राफ़ी और सितार तो पुराना शौक है लेकिन लेखन उसका जीवन कर्म है।"

उसने हाथ के इशारे से कोकील को रोका और पूछा....'क्यों भाई, लायब्रेरी से लौट रहे हो क्या ? कौन सी पुस्तक है हाथ में?'

'पुस्तक ? परसाल के ऑडिट की रिपोर्ट है यह ! अरे भाई ! पढ़ने के लिए फुर्सत ही कहाँ है ?'

कोकील इतना कह चलता बना। लोगों का साहित्य प्रेम बस इतना ही रहता है, नींद आने और जाने तक के लिए। जिंदगी की नीरसता को दूर करने के लिए, भाषण एवं चर्चाएँ। लेखक को देखने की खोखली उत्सुकता। कोई लेखक यदि छद्मनाम से लिखने लगा तो गरमागरम गप्पें। उसने सोचा कि अपने रहस्य का कौतुक अपने तक ही सीमित ! कल के रोज़ यदि मैं प्रकट भी हो गया तो लोग मुक्ति की साँस छोड़ेंगे। गरम चर्चा का बाज़ार ठंडा होगा। नाम छिपाया तो क्या और न छिपाया तो उसमें क्या ?

विचारों में वह बुरी तौर से फँस गया। उसने दिमाग से यह कचरा निकाल डालना चाहा। वर्षों तक कोई परेशानी न थी और आज ही यह क्या शुरू हो गया ? सब कुछ भूलकर केवल लेखन ही करता रहूँ फिर भले ही कल्याण कुछ कहे या शकू कुछ करे !

थककर वह घर की ओर चला। शकू दरवाज़े में ही अपने पिता के साथ बात कर रही थी। ससुर को देखते ही उसे न जाने कैसा लगने लगा। कोने की पान की दूकान पर वह ठहर गया और उससे चूना पान मसाला माँगने लगा। पान की दूकान में आइने के इर्दगिर्द नेताओं तथा अभिनेत्रियों के चित्र लगे थे। आइने में उसका भी चेहरा दिखने लगा....राजाभाऊ रानडे का ! आनंद अक्षीकर का ! कल के रोज उसका नाम प्रकट होने पर...पीक थूककर वह पलटा तो ससुर साहब आगे जाते दिखे। उसे ऐसा लगा कि उन्होंने उसे देखा और वह मुस्कराए भी। याने उन्हें भी पता चल गया ? तो शकू ने आखिर बता दिया क्या ? ससुर साहब को जब यह मालूम होगा कि उनका दामाद केवल विज्ञापन नहीं घसीटता, वह एक बड़ा लेखक भी है तो उन्हें कैसा लगेगा ? यह सोच कर उसका सीना फूल गया और

पण तो तसाच आपल्या खोलित गेला. कल्याणच्या संमतीखेरीज त्याला कांहीं करता येणार नाहीं. गुपितहि तोच फोडूं शकेल. अन् कल्याण गुपित कधींच फोडणार नव्हता...एकीकडे पत्नी, दुसरीकडे प्रकाशक—आणि तों मात्र मधल्यामध्यें खेळविला जात होता.

त्याला स्वतःचीच अनुकंपा वाटूं लागली. हें काय करून बसलों आपण ? उगाचच टोपण नांव धारण केलं. आणि आतां उगीचच प्रगट व्हावयाची स्वप्नं पहात आहोत. शकूची नि कल्याणची नुसती सबब—आपलंच मत विथरलं आहे. आपल्याला चोरटेपणाचा वीट आला आहे. लेखक टीकाकारांच्या मैफलींत सामील व्हायची ओढ लागली आहे. स्वाक्षरी, सत्कार, हार—सगळं सुख हवं आहे. आपल्या लेखनाचा दर्जा कमी होईल, नांवाचं कुतूहल कमी होईल अशी धास्ती वाटते आहे. आनंद अक्षीकर नांव राहील, पण राजा रानडे नुसताच खेळण्यांच्या जाहिराती खरडून नाहींसा होईल हें शल्य डांचत आहे.

छे-छे, त्याला नांव अजरामर व्हावं लोकांनीं बोट दाखवावं, असं अजिबात वाटत नव्हतं. नाहींतर पूर्वींच नाहीं का त्यानें गुपित फोडलं असतं ? त्याला कुणाची चोरी आहे ? ह्या स्तुति प्रसिद्धींतला फोलपणा त्याला ठाऊक नाहीं काय ? त्याची वृत्तीच तिकडे नाहीं तर......

त्याची !—त्याची म्हणजे कुणाची तेंच त्याला कळेना. स्वतःचा चेहरा त्यानें परत आरशांत न्याहाळला. कल्याणकडें लटकावलेल्या लेखकांच्या फोटो सारखा चेहेरा. शकू स्वैंपाक घरांतून हांक मारेल म्हणून वाट पाहिली. पण हांकहि येईना. चेहेराहि ओळखतां येईना. प्रकाशकाकडे जाऊन, पान खाऊन आनंद अक्षीकर घरीं आला व लिहित बसला असं समजली काय ती ? अन् आरशांत तर तो राजा रानडे-सारखा दिसत होता. लेखकाची मुद्रा इतकी असंतुष्ट, अपराधी असते ? त्याला वेड्यासारखं झालं. घरांत शांत होतं. बाहेरचे दिवे विझत होते. आणि त्याची त्यालाच ओळख पटत नव्हती. त्याच्या अस्तित्वाचं त्यालाच कोडं पडलं. लोकांना अज्ञात असलेलं रहस्य त्याला माहीत होतं. आणि त्याला पडलेलं कोडं उलग-डावं म्हणून तो खिडकींतून बाहेर पहात होता. आपल्या साहित्याचं काय होणार ? नांवाचं काय ठरणार ? आपण प्रसिद्धीच्या झगमगाटांत येणार कीं काळोखांत वितळून जाणार ? काय निर्णय घ्यायचा ? कांहीं निर्णय घेणं आपल्याला शक्य आहे काय ?

राजाभाऊ रानडेला विलक्षण थकवा आला. एखाद्या दोस्ताच्या अंथरुणाशीं हळुवारपणें बसावं तसा तो खुर्चीवर बसला व आनंद अक्षीकरानें लिहून ठेवलेल्या कादंबरीच्या कागदांकडे वेड्यासारखा पहात राहीला.

वह हँसते हुए घर आया। उसे देखते ही शकू मुंह फेर अंदर चली गई और रसोई के काम में लग गई। क्षणभर पहले उमड़ा उत्साह जल्दी ही ठंडा हो गया। एक वार उसने सोचा कि शकू से कहूँ— तुम्हारे मन की होने दो! कल ही अखबारों में देता हूँ। ज़ोरदार खवर; उसमें भी अपनी कला वताता हूँ। केवल खिलौनों के विज्ञापन नहीं लिखता हूँ, अपना स्वयं का विज्ञापन लिखूँगा। क्यों ठीक है ना, मसेज अक्षीकर ?"

उसे स्वयं पर खीझ होने लगी। यह क्या कर वैठा मैं ? वेकार में छद्मनाम रखा और अव व्यर्थ में प्रगट होने के स्वप्न देख रहा हूँ। कल्याण व शकू का केवल वहाना है मेरा ही मन डावाँडोल है। अपने को ही अव इस चोरी का ढोंग लगने लगा है। लेखक-आलोचकों की महफ़िल में शामिल होने का आकर्षण पैदा हो गया है। आटोग्राफ़-सम्मान, सत्कार, मालाएँ यह सारा सुख आकांक्षित है। लगता है मेरे लेखन का स्तर कम होगा, नाम की उत्सुकता कम होगी। केवल आनंद अक्षीकर नाम ही रहेगा और राजा रानडे केवल खिलौने के विज्ञापन ही घसीटता रहेगा।

नहीं, नहीं। उसे कतई यह नहीं लगता था कि उसका नाम अमर हो, लोग उसकी चर्चा करें। नहीं तो वह क्या पहले से ही इस रहस्य को नहीं खोलता ? उसे डर किस बात का है ? इस प्रशंसा प्रसिद्धि के खोखलेपन को क्या वह जानता नहीं ? उसकी मनोवृत्ति ही वैसी नहीं रही....

उसने दर्पण में अपना चेहरा देखा, कल्याण के घर की दीवारों पर लटके लेखकों के समान था उसका चेहरा। वह इस प्रतीक्षा में खड़ा रहा कि शकू रसोईघर से आवाज़ देगी। परंतु आवाज़ न आई। चेहरा भी पहिचाना सा लगा। क्या वह यह तो नहीं समझी कि आनंद अक्षीकर ही प्रकाशक के घर से पान खा कर वापिस आया है ? लेकिन आइने में तो वह राजा रानडे सा दिख रहा था। लेखक का चेहरा क्या इतना असंतुष्ट अपराधी-सा रहता है ? उसकी हालत पागलों जैसी हो रही थी। घर में शाँति थी। वह स्वयं को पहचान नहीं पा रहा था। उसका अस्तित्व उसके लिए एक पहेली बन गया था। लोगों को जो रहस्य मालूम नहीं था वह उसे मालूम था और उसके लिए जो पहेली वन गया था उसे सुलझाने वह वाहर देखने लगा। मेरे साहित्य का क्या होगा ? मैं प्रसिद्धि के प्रकाश में आऊँगा या अँधेरे में ही डूव जाऊँगा ? कौन सा निर्णय लूं ? कोई भी निर्णय लेना मेरे लिए संभव है क्या ?

राजाभाऊ रानडे को वेहद थकावट महसूस हुई। किसी मित्र के विस्तर पर धीरे से बैठने के समान वह कुर्सी पर बैठा और आनंद अक्षीकर द्वारा लिखकर रख उपन्यास के पन्नों की ओर पागलों की तरह देखने लगा।

———

सरकारी कामकाज में हिंदी

इस स्तंभ में सरकारी विज्ञापन, अधिसूचना
तथा आदेश के दो-दो नमूने दिए गए हैं ।
पहला अस्वाभाविक, कठिन और बनावटी है ।

*　　*

परिपत्र

विषय : प्रमाण पत्र 'ख' प्रदान किए जाने से पूर्व स्वदेशीय यात्री-पोतों के निरीक्षण के संबध में मुख्याधिकारियों तथा आपरीक्षकों के मार्ग प्रदर्शनार्थ अनुदेश ।

मुख्याधिकारियों एवं आपरीक्षकों के मार्ग प्रदर्शनार्थ निर्धारित गोपनीय अनुदेशों की प्रति के साथ उपर्युक्त विषय से संबंधित अनुदेशों की एक प्रति संलग्न है।

2. बंबई-कराची मंथर-गति मार्ग में नियोजित पोतों की नौका व अग्नि-योग्याओं का निरीक्षण कराची में संपादित किया जाना चाहिए तथा उस पत्तन के मुख्याधिकारी के साथ तदनुसार व्यवस्था कर लेनी चाहिए ।

3. यदि बर्तानवी भारत वाष्प नौ चालक समवाय सीमित ऐसी अपेक्षा करे तो नौका और अग्निशमन यात्रा के लिए मद्रास-रंगून मार्ग पर नियोजित पोत मद्रास में निरीक्षित हो सकते हैं ।

उसी अंश का दूसरा नमूना यहां दिया जा रहा है, जो हिंदी की प्रकृति के अनुकूल सीधा और सरल है।

यदि शब्दानुवाद की शैली अपनाई जाए, तो भाषा अस्वाभाविक और दुर्बोध हो जाएगी, हिंदी के मुहावरों का ध्यान रखते हुए भावानुवाद किया जाए, तो भाषा सुबोध और स्वाभाविक होगी।

प्रशासनिक कार्य के लिए हमें ऐसी भाषा का विकास करना है, जो संतुलित हो और भावों को सरलता से व्यक्त कर सके।

दूसरे उदाहरणों में ऐसी ही भाषा लिखने का प्रयत्न किया गया है।

* * *

परिपत्र

विषय : 'ख' प्रमाणपत्र दिए जाने से पहले देशी यात्री-जहाज़ों के निरीक्षण के संबंध में मुख्य-अधिकारियों और सर्वेक्षकों के मार्ग-दर्शन के लिए हिदायतें।

उपरोक्त विषय के संबंध में हिदायतों की एक प्रति, मुख्य अधिकारियों और सर्वेक्षकों के मार्गदर्शन के लिए तैयार की गई। गोपनीय हिदायतों की प्रति सहित इसके साथ संलग्न है।

2. बम्बई-करांची मंदगति-मार्ग पर चलने वाले जहाज़ों की नौका और अग्निशमन कवायदों का निरीक्षण करांची में किया जाना चाहिए और उस बंदरगाह के मुख्य अधिकारी के साथ तदनुसार व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

3. यदि 'ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेवीगेशन कंपनी, लिमिटेड' चाहे तो मद्रास-रंगून मार्ग पर चलने वाले जहाज़ों की नौका और अग्निशमन कवायदों का निरीक्षण मद्रास में किया जा सकता है।

मुख्याधिकारियों एवं आपरीक्षकों को अनुपदेश

(टिप्पणी : ये अनुदेश प्रस्थान-पत्तन पर संपादित किए जाने वाले निरीक्षणों पर ही प्रयुक्त होंगे। मध्यवर्ती पत्तनों में संपादित निरीक्षणों पर नहीं।)

स्वदेशीय यात्री पोतों का निरीक्षण

मुख्याधिकारियों द्वारा यह व्यवस्था करणीय है कि वे पोत स्वामियों द्वारा समवाय के जलयानाधीक्षक द्वारा किए जाने वाले निरीक्षण के समय, पोत के स्थित होने के लांगलस्थान पोत में आपरीक्षक की उपस्थिति के निमित्त की गई व्यवस्था के विषय में सूचित हो जाएँ।

यात्रा प्रारंभण के समय पत्तन त्यागने से पूर्व सभी स्वदेशीय यात्री पोतों की नौका व अग्निशमन योग्या का मास में एक बार निरीक्षण करना अनिवार्य है।

साधारणतया नौका अग्निशमन योग्या के निरीक्षण पोत-प्रस्थान से एक दिन पूर्व संपादित कर लिए जाने चाहिएँ। नौका व अग्निशमन योग्या समाप्त हो जाने के उपरांत प्रमाणकर्त्ता अधिकारी जलयानपति को एक निरीक्षण प्रमाण-पत्र हस्तांतरित कर देगा जो उस पोत को आगे एक महीने की अवधि के लिए किसी अन्य निरीक्षण से मुक्त कर देगा।

नौका व अग्निशमन योग्या विषयक अनुपदेश

1. यदि नौपरिवहन समवाय द्वारा अन्यथा व्यवस्था न कर ली गई हो, सामान्य नियमानुसार नौका व अग्निशमन योग्याओं के निरीक्षण पोत के यात्रारंभ से पहले दिन संपादित किए जाने चाहिएँ।

2. आपरीक्षक की उपस्थिति में नौकाओं का परीक्षण किया जाएगा उन्हें प्रेखित किया जाएगा और कर्मीदल से आग लगने की स्थिति में अपने नियत स्थान पर जाने का अभ्यास कराया जाएगा।

3. नौरोहण करने पर आपरीक्षक को चाहिए कि वह प्रधान अधिकारी द्वार तैयार की गई सेनामावली का निरीक्षण कर ले। सेनामावली से यह प्रकट होना चाहिए कि कर्मीदल के विभिन्न सदस्यों को निश्चित कार्यभार पर नियोजित कर दिया गया है :—

(क) डेविटों से संलग्न नौकाओं का जलावतरण।

(ख) अन्य नौकाओं की सज्जा।

(ग) नौकाओं की सामान्य सामग्री का प्रबंध।

(घ) व्यवधान व अग्नि-रक्षावरण द्वारों को बंद करना।

(ङ) यात्रियों का एकत्रीकरण।

मुख्य अधिकारियों और सर्वेक्षकों के लिए हिदायतें

(नोट :—ये हिदायतें प्रस्थान-बंदरगाह पर किए जाने वाले निरीक्षणों पर ही लागू होती हैं, मध्यवर्ती बंदरगाहों में किए जाने वाले निरीक्षणों पर नहीं।)

देशी यात्री जहाजों का निरीक्षण

मुख्य अधिकारियों को ऐसा प्रबंध करना है कि जहाज-मालिकों से उन्हें उस समय की जब कंपनी के नौ-अधीक्षक द्वारा निरीक्षण किया जाएगा उस घाट की जहाँ जहाज़ स्थित हो और उस व्यवस्था की जो जहाज़ में सर्वेक्षक की उपस्थिति के लिए की जाएगी—जानकारी प्राप्त हो जाए। यात्रा आरंभ करते समय पत्तन छोड़ने से पहले सभी देशी यात्री जहाजों का नौका व अग्निशमन कवायद का निरीक्षण मास में एक बार करना आवश्यक है।

साधारण रीति से नौका व अग्निशमन कवायद के निरीक्षण जहाज़ के छूटने से एक दिन पहले कर लेना चाहिए। नौका व अग्निशमन कवायद पूरी हो जाने पर प्रमाणकर्त्ता अधिकारी कप्तान को एक निरीक्षण-प्रमाणपत्र देगा जिसके फलस्वरूप जहाज़ को एक महीने की अवधि के लिए आगे किसी निरीक्षण से छूट मिल जाएगी।

नौका व अग्निशमन कवायद के लिए हिदायतें

(1) यदि नौपरिवहन कंपनी ने कोई अन्य प्रकार की व्यवस्था न की हो तो, सामान्य रीति से नौका व अग्निशमन कवायदों के निरीक्षण जहाज़ के चलने से एक दिन पहले कर लेने चाहिएँ।

(2) सर्वेक्षक की उपस्थिति में नावों की जँाच की जाएगी, उन्हें बाहर उतार दिया जाएगा और कर्मीदल से आग लगने पर अपने नियत स्थान पर जाने की कवायद कराई जाएगी।

(3) जहाज़ में जाने पर सर्वेक्षक को प्रधान अधिकारी द्वारा तैयार की गई उपस्थिति सूची का निरीक्षण करना चाहिए। उपस्थिति सूची से यह प्रकट होना चाहिए कि कर्मीदल के विभिन्न सदस्यों को निश्चित काम सौंपे गए हैं—

(क) डेविटों से संलग्न नावों को पानी में उतारना।

(ख) अन्य नावों को तैयार करना।

(ग) सामान्य रूप से नावों को सज्जित करना।

(घ) पोतभीत दरवाज़ों, आग बचाव पर्दों के दरवाज़ों को बंद करना।

(ङ) यात्रियों की हाज़िरी लेना।

4. फिर कर्मीदल के उन सदस्यों को छोड़ कर जो अपने तात्कालिक कार्यभार से मुक्त न किए जा सकें, अन्य सभी व्यक्तियों को अपने-अपने रक्षा-कवच पहने उपस्थित किया जाना चाहिए और प्रधानाधिकारी के साथ आपरीक्षक को उनका निरीक्षण करना चाहिए ।

5. पोत की नाविक मंडली, जलयान समवाय का निरीक्षण करते समय उनके रक्षा-कवचों के उपयुक्त समायोजन की दृष्टि से, आपरीक्षक को पृथक-पृथक रेटिंगों से प्रश्न पूछने चाहिएँ तथा सामान्यतया स्वयं को इस विषय में संतुष्ट कर लेना चाहिए कि जलयान समवाय को यह ज्ञान हो कि उन्हें किस संख्या की नौका पर नियोजित किया गया है ।

6. जलयान समवाय को निरीक्षण की समाप्ति पर अंतर्राष्ट्रीय आपाती संकेत दे देना चाहिए तथा जलयान समवाय को रक्षा नौकाओं को अवतरित करते समय अपने नौस्थलों पर एकत्रित करना चाहिए ।

7. आपरीक्षक को यह संतुष्टि कर लेनी चाहिए कि प्रत्येक नांव के कार्य भारी अधिकारी या नाविक को नौका के कर्मीदल की सूचि संभरित कर दी गई है ।

तदुपरांत नौकाओं के कर्मीदल निरक्षित किया जाने चाहिएँ तथा कार्यभारी अधिकारियों तथा नाविकों से उनकी नौका संबंधी विवरण, जैसे, धारिता, प्रति व्यक्ति अनुमत भोजन व जल की मात्रा आदि के विषय में प्रश्न पूछे जाने चाहिएँ । संतुष्टि हो जाने पर उसे प्रधान अधिकारी से 'सभी नौकाएँ प्रेखित करो' यह आदेश देने के लिए कहना चाहिए ।

नौकाएँ प्रेखित हो जाने पर आपरीक्षक को चाहिए कि वह यह देखे कि सुकान जमा लिए गए हैं ; कर्षक रस्से रक्षा रज्जुओं से आगे निकाल दिए गए हैं; चप्पू तथा नौका हुक रिक्त कर दिए गए हैं ; रोधनियाँ लगा दी गई हैं तथा पार्श्व-सीढ़ियाँ संनद्ध कर ली गई हैं । तब उसे उपस्करण की एक दो मदें मुख्य अधिकारी के संमुख नामित करनी चाहिएँ जिसे नौकाओं में उपस्थित व्यक्तियों को यह आदेश देना चाहिए कि वे उन उल्लिखित उपस्करण-मदों को निरीक्षणार्थ उपस्थित करें ।

यदि समय अनुमति दे तो आपरीक्षक को चाहिए कि वह नौकाओं की एक चुनी हुई संख्या को नौरोहण नौतल पर उतरवाने के लिए मुख्य अधिकारी से कहें । नौकाओं के जलावतार संकार्य के लिए प्रभासन का परीक्षण कर लिया जाना चाहिए तथा नौकाओं को यथास्थान अंदर कर लिया जाना जाहिए ।

8. तब आपरीक्षक को चाहिए कि वह मुख्य अधिकारी से यह प्रार्थना करे कि वह कर्मीदल को आग लगने की सूचना मिलने पर अपने लिए नियत स्थान पर जाने का अभ्यास कराए ।

9. जलाप्रवेश तथा अग्नि-रक्षावरण द्वार बंद कर दिए जाने चाहिएँ, अग्नि होजों को सज्जित कर देना चाहिए, धूम्रत्राणो का परीक्षण कर लिया जाना चाहिए तथा ओट-दलों का एकत्रीकरण कर लिया जाना चाहिएँ ।

एकस्व अग्निशमकों तथा धूम्रत्राणों के कार्यभारी रेटिंगों से उनके उपयोग के विषय में, एवं ओट-दल से उसके कर्तव्यों के विषय में प्रश्न किए जाने चाहिएं ।

(4) फिर कर्मीदल के उन व्यक्तियों को जो अपनी तात्कालिक ड्यूटी से मुक्त न किए जा सकें छोड़कर अपनी-अपनी रक्षा जाकटें पहने, अन्य सदस्यों की हाजिरी लेनी चाहिए और प्रधान अधिकारी के साथ सर्वेक्षक को उनका निरीक्षण करना चाहिए ।

(5) जहाज़ की नाविक-मंडली का निरीक्षण करते समय उनकी रक्षा-जाकटों के सही समायोजन की दृष्टि से, सर्वेक्षक को पृथक-पृथक रेटिंगों से प्रश्न करने चाहिएँ और सामान्य रूप से यह तसल्ली कर लेना चाहिए कि जहाज की नाविक-मंडली को उस नाव की संख्या का पता है कि जिस पर उन्हें काम सौंपा गया है ।

(6) जहाज़ की नाविक-मंडली का निरीक्षण पूरा हो जाने पर अंतर्राष्ट्रीय आपाती संकेत दे देना चाहिए और जहाज़ की नाविक-मंडली को रस्सानौकाओं को उतारते समय अपने नौ स्थलों पर इकट्ठा करना चाहिए ।

(7) सर्वेक्षक को इस विषय में तसल्ली कर लेना चाहिए कि प्रत्येक नाव के कार्यभारी अधिकारी या नाविक को नाव के कर्मीदल की सूची दे दी गई हो । तब नावों के कर्मीदल का निरीक्षण करना चाहिए और कार्यभारी अधिकारियों और नाविकों से उनकी नाव संबंधी ब्यौरे जैसे, धारण क्षमता, प्रति व्यक्ति के लिए अनुमत भोजन और जल की मात्रा आदि के विषय में प्रश्न पूछे जाने चाहिएँ । तसल्ली हो जाने पर, प्रधान अधिकारी से 'सभी नावें बाहर उतार दो' यह आदेश देने के लिए कहना चाहिए ।

जब नावें बाहर उतर जाएँ तो सर्वेक्षक को यह देखना चाहिए कि सुकान जमा लिए गए हैं, कर्षक रस्से रक्षा रस्सियों के आगे निकाल दिए गए हैं, चप्पू तथा नौका हुक साफ कर लिए गए हैं, डलग लगा दिए गए हैं तथा बगल-सीढ़ियाँ सन्नद्ध कर ली गई हैं ।

तब उसे उपस्करण की एक या दो मदों का नाम मुख्य अधिकारी को बताना चाहिए जिसको चाहिए कि नाव पर के आदमियों को आदेश दे कि वे मदों को निरीक्षण के लिए रोक रखें ।

यदि समय हो तो सर्वेक्षक को मुख्य अधिकारी से कुछ चुनी हुई नावें नौरोहण-डेक पर उतरवाने के लिए कहना चाहिए । नावों के जलावतार-कार्य के लिए प्रकाश व्यवस्था की जाँच करके अंदर चढ़वा लेना चाहिए ।

(8) तब सर्वेक्षक को मुख्य अधिकारी से कर्मीदल को आग लगने की सूचना मिलने पर अपने निश्चित स्थान पर जाने की कवायद कराने के लिए कहना चाहिए ।

(9) जलरोक और आग बचाव पर्दों के दरवाज़ों को बंद कर देना चाहिए अग्नि होज़ों को सज्जित कर देना चाहिए, धूम्र टोपों की जाँच की जानी चाहिए और ओट दलों को जमा कर लेना चाहिए ।

पेटेंट अग्निशामकों और धूम्र टोपों के कार्यभारी रेटिंगों से उनके प्रयोग के विषय में और ओट-दल से उसके कर्तव्यों के विषय में प्रश्न पूछे जाने चाहिएँ ।

आपरीक्षक को तब चाहिए कि वह मुख्य अधिकारी के संमुख जलयान का कोई ऐसा भाग नामित करे जहाँ कोई काल्पनिक अग्नि सीमत की जानी हो तथा अग्निशमन दल को नामित स्थान पर एकत्रित कराए। यदि अग्नि स्थान नौतल पर हो तो पंपों को संचालित करना चाहिए और होज़ों का परीक्षण किया जाना चाहिए ।

10. अग्नि स्थान संबंधी अभ्यास की परिणति पर नाविक-समुदाय को मुक्ति दी जा सकती है ।

11. आपरीक्षक को फिर मुख्याधिकारी या द्वितीयाधिकारी के सानिध्य में पोत के अंदर ले जाने वाले राकेटों, रज्जुक्षेत्री यंत्रों (यदि पोत में हों), विपत्ति संकेतों और घर्षण-नलियों आदि का निरीक्षण करना चाहिए ।

पोत प्रस्थान दिवस निरीक्षण

1. जलयानाधीक्षक, जलयानपति या मुख्याधिकारी के साथ जाकर आपरीक्षक को नौतल यात्रियों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले स्थानों का निरीक्षण करना चाहिए और इस विषय में स्वयं को संतुष्ट कर लेना चाहिए कि वे :—

(क) पोतभार मुक्त हैं ,
(ख) स्वच्छ व संतोषजनक स्थिति में हैं,
(ग) उनमें कृत्रिम प्रभासन की समुचित व्यवस्था है,
(घ) सवातन पंखे, यदि वे लगे हों तो, कार्यकारी स्थिति में है, और
(ङ) अंध प्रकाश खुले हुए हैं ।

2. तदुपरांत शौचालयों और धावनगृहों का निरीक्षण किया जाना चाहिए और आपरीक्षक को इस विषय में संतुष्ट हो जाना चाहिए कि वे :—

(क) स्वच्छ और संतोषजनक स्थिति में है,
(ख) डेक यात्रियों द्वारा उपयोग में लाए जाने के लिए उपलब्ध हों,
(ग) उद्धावन कार्यकारी स्थिति में हैं, और
(घ) मेहतरों की नियमानुसार व्यवस्था की गई है ।

3. रुग्णालय :—स्वच्छता, संवातन उपकरणों आदि के प्रसंग में निरीक्षण किया जाना है ।

4. स्वच्छ जल :—स्वच्छ जल के स्थानों का निरीक्षण किया जाना चाहिए एवं नल परीक्षित होने चाहिएँ ।

5. पोतभार :—नौतल पर भरित पोतभार द्वारा ग्रहण किए गए स्थान की माप कर ली जानी चाहिए तथा अनावश्यक स्थान को यात्रि-स्थान में से घटा दिया जाना चाहिए ।

यात्री स्थानों का निरीक्षण करते समय आपरीक्षक को इस विषय में संतुष्ट हो जाना चाहिए कि ऐसा कोई पोतभार नहीं लादा गया है जिसकी दुर्गंध यात्रियों को अप्रिय लगने की संभावना हो ।

6. पशु :—आपरीक्षक को पशुओं द्वारा ग्रहण किए गए स्थान पर विशेष ध्यान देना चाहिए और इस विषय में संतुष्ट हो जाना चाहिए कि यदि निकटवर्ती नौतल का यात्रियों ने ग्रहण किया हुआ हो तो वह मूत्रादि का प्रवाहसह हो ।

7. अंततः आपरीक्षक को स्वयं को इस विषय में संतोष कर लेना चाहिए कि पोत उतने यात्रियों से अधिक यात्री नहीं ले जा रहा है जितने की व्यवस्था है ।

तब सर्वेक्षक को चाहिए कि मुख्य अधिकारी को जहाज़ के किसी ऐसे हिस्से का नाम बताए जहाँ किसी काल्पनिक आग को बुझाने का कार्य किया जाना हो और अग्निशमन दल को बताए गए स्थान पर जमा कर लेना चाहिए। यदि आग लगने का स्थान डेक पर हो तो पंपों को चलाया जाना चाहिए और होज़ों की जाँच करनी चाहिए ।

(10) आग लगने पर अपने नियत स्थान पर जाने की कवायद समाप्त होने के बाद जहाज़ की नाविक-मंडली को छुट्टी दे देनी चाहिए।

(11) फिर सर्वेक्षक को मुख्य अधिकारी या द्वितीय अधिकारी के साथ जहाज़ में ले जाए जाने वाले रॉकेटों, रस्सी फेंकने के यंत्रों (यदि जहाज़ में हों) विपत्ति संकेतों और घर्षण-ट्यूबों आदि का निरीक्षण करना चाहिए ।

जहाज़ छूटने के दिन का निरीक्षण

(1) सर्वेक्षक को समुद्री-अधीक्षक, कप्तान या मुख्य अधिकारी के साथ डेक यात्रियों के बैठने के स्थानों का निरीक्षण करना चाहिए और इस विषय में संतुष्ट हो जाना चाहिए कि :—

(क) उनमें कोई माल नहीं रखा गया है,
(ख) वे स्वच्छ और संतोषजनक स्थिति में हैं,
(ग) कृत्रिम प्रकाश का प्रबंध समुचित है,
(घ) दूषित हवा निकालने वाले पंखे (यदि लगे हो) चालू स्थिति में हैं, और
(ङ) अंघौटियाँ उठी हुई है (साफ मौसम) ।

(2) तब शौचालयों और लांड्रियों गुसलखानों का निरीक्षण किया जाना चाहिए और सर्वेक्षक को तसल्ली कर लेनी चाहिए कि :—

(क) वे स्वच्छ और संतोषजनक स्थिति में हैं,
(ख) डेक-यात्रियों के उपयोग के लिए उपलब्ध हैं,
(ग) फ्लश चालू स्थिति में हैं, और
(घ) नियमानुसार भंगियों की व्यवस्था की गई है ।

(3) अस्पताल :—सफाई, संवातन, उपकरणों आदि की दृष्टि से इसका निरीक्षण किया जाना चाहिए ।

(4) ताज़ा पानी :—ताज़ा पानी रखने के स्थानों का निरीक्षण किया जाना चाहिए और नलों की जाँच की जानी चाहिए ।

(5) माल :—डेक पर लादे गए माल द्वारा घिरे हुए स्थान को मापना चाहिए और धरातलीय क्षेत्रफल को यात्री-स्थान में से कम कर देना चाहिए ।

यात्री-स्थानों का निरीक्षण करते हुए सर्वेक्षक को इस विषय में तसल्ली कर लेनी चाहिए कि ऐसा कोई माल नहीं लादा गया है कि जिसकी दुर्गंध यात्रियों को बुरी लगे ।

(6) ढोर :—सर्वेक्षक को ढोरों द्वारा घेरी गई जगह पर विशेष ध्यान देना चाहिए और निकटवर्ती डेक पर यात्री हो तो इस विषय में तसल्ली कर लेना चाहिए कि यदि वहाँ मूत्र आदि के जाने से रोकने की पूरी व्यवस्था है ।

(7) अंततः सर्वेक्षक को यह तसल्ली कर लेनी चाहिए कि जितने यात्रियों के लिए स्थान का प्रबंध किया गया है जहाज़ उससे अधिक यात्री तो नहीं ले जा रहा है ?

मुख्याधिकारियों एवं आपरीक्षकों को गोपनीय अनुदेश

निरीक्षण करते समय उपस्थित होने वाली विषम परिस्थितियों का समाधान करने में आपरीक्षकों को अधिकतम पटुता से काम लेना चाहिए। उन्हें यह बात मस्तिष्क में रखनी चाहिए कि निरीक्षण यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से संपादित किया जा रहा है कि जलयान का नाविक समवाय, जलयान जिस यात्रा पर प्रस्थान करने वाला है उस यात्रा की अवधि में, उत्पंन होनेवाली प्रत्येक आपत्कालीन स्थिति को सुलझाने के लिए समर्थ और संनद्ध है, नौतल यात्रियों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले स्थान पोतभार रहित, स्वच्छ तथा प्रकाश के समुचित प्रवंध युक्त हैं, शौचालय एवं धावनगृह स्वच्छ स्थिति में और यात्रियों द्वारा उपयोग किए जाने के लिए उपलब्ध हों, जलयान में ऐसा कोई पोतभार न हो जिसके भरण के कारण यात्रियों का स्वास्थ्य या जीवन या जलयान की सुरक्षा संकट में पड़ने की संभावना हो और पशु (यदि हो तो) नियमानुसार स्थिति में ले जाए जा रहे हैं। वे जलयान में भारत सरकार की ओर से एक दृष्टि से देखभाल करने वाले अधिकारियों के रूप में होते है तथा उन्हें किसी ऐसे नियम अथवा अनुदेश के क्रियांवित करने के लिए अनुचित वल नहीं देना चाहिए जिसे नौतल यात्रियों के स्वास्थ्य, सुविधा अथवा उनके हित पर कोई गंभीर कुप्रभाव डाले हुए अग्रिम यात्रा तक के लिए स्थगित किया जा सके।

यदि किसी स्थिति में आपरीक्षक यह पाए कि उपकरण दोषपूर्ण दशा में है तो उसे वे दोष जलयानपति के संमुख प्रकट कर देने चाहिएँ और जलयान के प्रस्थान करने से पूर्व उसे उन दोषों को दूर करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। ऐसे हर मामले को जिसके विषय में आपरीक्षक को कठिनाइयों अथवा, विशिष्ट परिस्थितियों के उपस्थित रहने का संदेह हो तो मुख्याधिकारी के संमुख प्रतिवेदित कर दिया जाना चाहिए। इस विषय में पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए कि पोत को कम से कम असुविधा और कालपात हुए आवश्यक कार्य पूर्ण हो जाने चाहिएँ।

भारत सरकार का अभिप्राय यह नहीं है कि नौका व अग्निशमन योग्या से संबंधित विस्तार के विषयों में निर्धारित क्रियाविधि को परिदृढ़तापूर्वक पालन कराया जाए। यह बात आपरीक्षक के स्वविवेक पर छोड़ दी गई है जिसे जहाँ तक संभव हो भारत सरकार दवारा प्रचारित अनुदेशों का पालन करने का प्रयास करना चाहिए किंतु उसी समय में समवाय के नियम एवं विनियमों का भी विचार करना चाहिए।

मुख्य-अधिकारियों और सर्वेक्षकों के लिए गोपनीय हिदायतें

निरीक्षण करते समय उत्पन्न होने वाली कठिन परिस्थितियों को संभालने के लिए सर्वेक्षकों को अधिकतम कुशलता से काम करना चाहिए। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि निरीक्षण यह निश्चिन करने की दृष्टि से किया जा रहा है कि जहाज़ की नाविक-मंडली, जिस यात्रा पर जहाज़ जाने वाला है उसके दरम्यान उत्पन्न होने वाली किसी संकटकालीन स्थिति को सुलझाने में समर्थ और उसके लिए तैयार हो; कि डेक-यात्रियों के बैठने के स्थानों में माल न हो और वे स्वच्छ हों तथा उनमें प्रकाश का समुचित प्रबंध हो; कि शौचालय और धुलाई-घर स्वास्थ्यकर तथा यात्रियों के उपयोग के लिए उपलब्ध हों; कि जहाज़ में ऐसा कोई सामान न हो जिसकी लदान के कारण यात्रियों का स्वास्थ्य या जीवन या जहाज़ की सुरक्षा को संकट में पड़ने की संभावना हो, और कि ढोर यदि हों तो, नियमानुसार ले जाए जा रहे है। एक दृष्टि से वे जहाज़ में भारत सरकार की ओर से देखभाल करने वाले अधिकारियों के रूप में होते हैं और उन्हें किसी ऐसे नियम लागू करने के लिए अनुचित दबाव नहीं डालना चाहिए या हिदायत को जो डेक यात्रियों के स्वास्थ्य, सुविधा या उनकी भलाई पर कोई गंभीर कुप्रभाव डाले बिना अगली यात्रा तक के लिए स्थगित किया जा सके।

यदि किसी मामले में सर्वेक्षक को यह पता चले कि सामान में कुछ वस्तुएँ खराब दशा में हैं तो उसे वह खराबी कप्तान को बता देनी चाहिएँ और जहाज़ के रवाना होने से पहले उसे उन खराबियों को ठीक करवाने का अवसर देना चाहिए। ऐसे मामले की रिपोर्ट मुख्य अधिकारी को की जानी चाहिए जिसमें सर्वेक्षक को कठिनाइयों या विशेष परिस्थितियों के होने का संदेह हो। इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि आवश्यक काम पूरे करने में जहाज़को कम से कम असुविधा और देरी लगे।

भारत सरकार का यह अभिप्राय नहीं है कि नाव और अग्निशमन कवायद संबंधी तफ़सील के विषय में निर्धारित कार्यप्रणाली का पालन कराने में कड़ाई से काम लिया जाए। यह बात सर्वेक्षक के विवेक पर छोड़ दी गई है। उसे जहाँ तक संभव हो, कंपनी के नियमों और विनियमों का विचार रखते हुए भारत सरकार द्वारा जारी की गई हिदायतों का पालन करने का प्रयत्न करना चाहिए। ●
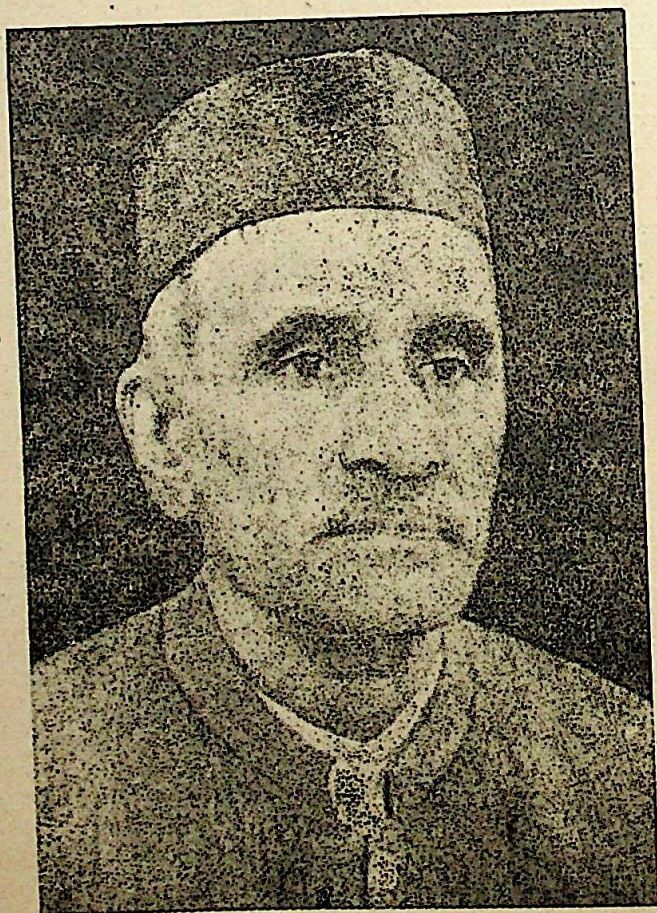
पं० कामताप्रसाद गुरु

पं० कामताप्रसाद गुरु

रामेश्वर

कामता प्रसाद गुरू की व्याकरण-साधना ने इतने विशद और विस्तृत रूप से उनके अन्य साहित्यिक स्वरूप को ढाँक लिया है कि लोग यह भूलते-से जा रहे हैं कि गुरू जी कवि, लेखक, निबंधकार और समालोचक भी थे। यह ठीक है कि उनके ये साहित्यिक चित्र भी व्याकरण के केनवस पर अंकित हैं और इसीलिए उनमें शब्दों की सच्ची शरीर-रचना कथ्य की ठोस शुद्धता और तथ्य की प्राकट्य शुष्कता है। कविता कलाप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गुरू जी के कवि को बड़े सम्मान के साथ प्रतिष्ठित किया था। व्याकरण की अथक तपस्या ने उनके इन सुंदर रूपों को वल्कल पहना दिए।

गुरूजी जीवन भर शिक्षक रहे। उनका शिक्षक जीवन सागर, रायपुर और जबलपुर में बीता। कुछ वर्षों के लिए वे उड़ीसा के ज़िलों में भी रहे। नार्मल स्कूलों में और हाई स्कूल में अध्यापन कार्य कर वे शासकीय सेना से निवृत्त हुए। प्रध्यापन-क्षेत्र के लंबे और गहरे अनुभवों ने गुरू जी को साहित्य-अभिरूचि की पृष्ठभूमि में व्याकरण-कार बनाया। 'भाषा वाक्य पृथक्करण' नाम की छोटी-सी पुस्तक लेकर वे साहित्य के शास्त्रीय क्षेत्र में उतरे। इस बीच उनके छोटे-छोटे प्रकाशन कविता और उपन्यास क्षेत्र में होते रहे। साहस के साथ इनके प्रकाशन का व्यय उन्होंने स्वयं वहन किया। 'भाषा-वाक्य पृथक्करण' का स्वागत उन दिनों की स्थिति को देखते हुए खूब हुआ। अध्यापकों, विद्वानों, समर्थ आलोचकों और हिंदी प्रेमियों ने प्रोत्साहन दिया। गुरू जी हिंदी अध्यापन की पद्धति के शिक्षक थे। हिंदी भाषा और साहित्य का अध्यापन करते थे। भाषा के सुंदर गठन को और शब्दों के स्वस्थ चयन तथा स्वाभाविक प्रवाह पर वे बल देते थे। लगातार अँग्रेज़ी में, हिंदी में उनके प्रचलित पाठ्य-पुस्तकों की त्रुटिपूर्ण भाषा पर आलोचनात्मक लेख निकलते रहते थे। भाषा के सच्चे स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन करने की दृष्टि से उन्होंने उड़िया, बँगला, मराठी और गुजराती के व्याकरणों का अध्ययन किया। अँग्रेज़ी के व्याकरण की गहरी पढ़ाई इस बीच वे कर चुके थे। हिंदी की जितनी भी व्याकरण-पुस्तकें उन दिनों उपलब्ध थीं, गुरू जी ने उनका सूक्ष्म अध्ययन किया था। कुछ वर्षों तक तो यह स्थिति रही कि अध्यापन का समय छोड़कर शेष समय वे अपने अध्ययन-कक्ष में ही बिताते थे। आधी-रात मिट्टी के तेल का लैंप, कच्चे मकान का सींड़-भरा सकरा कमरा, पुस्तकों का ढेर, कागज़, कलम और लिखने का स्टूल, और धुंधली न होने वाली अथक प्रेरणा-पढ़ने की और शास्त्रीय पुस्तकें हिंदी में लिखने की। उड़िया तो करीब-करीब उनकी मातृ-भाषा-सी बन चुकी थी और एक उपन्यास का हिंदी में अनुवाद भी कर लिया था। माधवराव सप्रे, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जगन्नाथ प्रसाद भानू, डॉक्टर हीरालाल, रघुवर प्रसाद द्विवेदी आदि प्रमुख साहित्यिक कामता प्रसाद गुरू के इस पाणिनि-रूप से अब तक प्रभावित हो चुके थे। हिंदी भाषा का प्रामाणिक और सर्व सम्मत व्याकरण निर्मित होना चाहिए, इसकी अनुभूति सभी को होने लगी थी और उसका अभाव भी सबको खटक रहा था। नागरी प्रचारिणी सभा के निश्चय पर और माधव-राव सप्रे प्रभृति सुधीजनों के प्रेरणा-सुझाव और अनुरोध पर प्रामाणिक व्याकरण

लिखने का भार गुरू जी को दिया गया। इस अविस्मरणीय वाणी-भार को उन्होंने निभाया भी बड़ी जिम्मेदारी के साथ। नौ-दस वर्ष का गहन और गंभीर अध्ययन, परिश्रम, दत्तचित्तता और लेखन इस बड़े व्याकरण के पीछे है। इस अवधि में वे करीब-करीब व्याकरणमय हो गए थे। बड़ व्याकरण के साथ-साथ उसके छात्रोपयोगी संस्करण भी साथ-साथ लिखे गए। इस अनवरत परिश्रम ने उनके शरीर को झक-झोर दिया था। फिर भी वे एक बहुत बड़े संतोष को साथ लिए हुए थे कि उत्तरदायित्व का निर्वाह अक्षरशः कर सकें। व्याकरण संशोधन समिति ने, जिसमें चंद्रधर शर्मा गुलेरी, रामचंद्र शुक्ल, श्याम सुंदर दास, जगन्नाथ दास रत्नाकर, रामनारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, गोविंद नारायण मिश्र, रामावतार शर्मा और लज्जाशंकर झा (सौभाग्य से हमारे बीच में आज हैं) थे, पूर्ण प्रसन्नता के साथ व्याकरण का समर्थन किया और पुस्तक को सर्वमान्यता दी। व्याकरण का पूर्ण होना उनके जीवन की चरम साहित्यिक उपलब्धि थी यद्यपि इसने उनके साहित्याकाशके अन्य ज्योति पुंजों को मेघाच्छन्न कर दिया।

व्याकरणाचार्य के रूप में कामताप्रसाद गुरू पर्याप्त प्रसिद्ध हुए। मध्य प्रदेश शासन के शिक्षा विभाग ने उन्हें स्वर्ण पदक देकर पुरस्कृत किया। प्रयत्न तो हुआ उन्हें राय बहादुर बनाने का पर गुरू जी के स्वभाव से यह प्रस्ताव अपनी पटरी पर नहीं बैठ सका। वे साहित्य-वाचस्पति भी हुए।

पं० कामताप्रसाद गुरू का जन्म 24 दिसंबर, 1875 को सागर शहर में हुआ था। वहीं मट्रिक तक शिक्षा हुई। रामायण के प्रसिद्ध विद्वान और हिंदी के कवि और शिक्षाशास्त्री श्री विनायकराव जी उनके अध्यापकों में थे। मैट्रिक पास कर वे शिक्षा विभाग में नौकर हो गए। निबंधकार के रूप में उनकी दो पुस्तकों को बड़ी प्रसिद्धि मिली—हिंदुस्थानी शिष्टाचार और देशोद्धार। उनकी कविताएँ सरलता के लिए, भाषा के टकसालीपन के लिए, भावों के रसात्मक उत्कर्ष के लिए उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वेदी की विदा, दुर्गावती, परशुराम, ग्रामीण-विलाप आदि हिंदी की प्रसिद्ध स्थायी कविताओं में गिनी जा सकती हैं। उनकी अनेक रचनाएँ छद्मनाम से 'सरस्वती' तथा अन्य मासिक पत्रों में निकलीं. ये रचनाएँ उत्कृष्ट व्यंग की कोटि में आती हैं और समाज के क्रूर अंगों पर प्रहार करती हैं। विद्यानाथ शर्मा के नाम से लिखी गई ये कविताएँ अपने समय की क्रांतिकारी रचनाएँ थीं। गुरू जी अपने उग्र और शुष्क स्वभाव के कारण सरकार के कृपा पात्र कभी नहीं बन सके। शिवाजी की रचना पर तो जाँच-पड़ताल भी शुरू हुई थी।

उनके अधिकांश निबंध व्याकरण विषयक हैं और इसलिए वे पाठक प्रियता नहीं पा सके। साहित्यिक निबंधों में भी उनकी व्याकरण शास्त्रीयता इतनी अधिक व्यापक हो गई है कि निबंधों की सुंदरता धूमिल दिखाई पड़ती है। वैसे उनके निबंध साहित्य के लगभग सभी विषयों पर लिखे गए हैं। गुरुजी ने पं० महावीर प्रसाद द्विवदी की प्रेरणा और आग्रह का अजस्र स्नेह पाया और 'सरस्वती' के माध्यम से वे हिंदी की सेवा में प्रमुख रूप से कार्यरत हुए। वे उन इने-गिने हिंदी लेखकों में से थे जिनकी रचनाओं में द्विवेदी जी बहुत ही कम संशोधन करते थे। उनकी भाषा की वे सराहना भी करते थे। उनके सुझाव और आग्रह पर गुरुजी ने कुछ समय के लिए इंडियन

प्रेस के संपादकीय विभाग में रह कर 'बाल सखा' और 'सरस्वती' का कार्य संभाल था। आत्मविज्ञापन से दूर रह कर गुरुजी ने साहित्य सेवा निस्पृहता के साथ की। वे द्विवेदी-युग के उन लेखकों में थे जिनका साहित्य कार्य सच्ची लगन और मिशनरी उत्साह का प्रतिविंब था।

अपने जीवन काल में उनके पास करीब-करीब नियमित रूप से भाषा संवंधी और व्याकरण विपयक शंका समाधानार्थ पत्र आते ही रहते थे। यथासंभव संतोष देने का प्रयत्न भी करते थे। जॉर्ज ग्रियर्सन और जूल्स ब्लॉच के साथ उनका नियमित पत्र व्यवहार था और व्याकरण संवंधी समस्याओं पर विचार-विनिमय होता था। वड़ा व्याकरण पढ़ने के वाद इन दोनों पाश्चात्य भाषा-विदों ने अयाचित प्रशंसा और सराहना के पत्र भेजे थे। भाषा विपयक उच्छृंखलता और अराजकता से त्रस्त अनेक अध्यापक, विद्वान और हिंदी प्रेमी गुरुजी को पत्र लिख कर आग्रह करते थे कि वे अंकुश लगाने की दृष्टि से लेखमाला प्रारंभ करें। मध्य प्रदेश के भूतपूर्व वित्तमंत्री और हिंदी लेखक स्वर्गीय दुर्गाशंकर मेहता ने कारागार से गुरुजी को लंबा पत्र लिखकर भाषा के साथ खिलवाड़ को दृढ़ता के साथ रोकने का आग्रह किया था। भाषा गतिवान् है और प्राणमय है। इसलिए उस पर व्याकरण के कृत्रिम वंधन लग ही नहीं सकते। इसलिए चालीस वर्ष पूर्व लिखे गए उनके व्याकरण-ग्रंथ निश्चय ही आज कुछ अंशों में अधूरे, एकांगी और अस्पष्ट प्रतीत हों। पर यह बात निर्विवाद है कि उनका कार्य हिंदी के व्याकरण-क्षेत्र में प्रकाशन-स्तंभ है और वर्षों तक आने वाली पीढ़ियाँ उनका व्याकरण का प्रकाश पाकर हिंदी-ज्ञान के अगाध और अपार समुद्र में बड़े विश्वास के साथ अपने अध्ययन की नाव आगे वढ़ाती चलेंगी। हिंदी के बनाव के ज़माने में गुरुजी का कार्य अविस्मरणीय समझा जाना चाहिए और उनकी समस्त साहित्य-सामग्री को एकत्रित कर तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपलब्ध किया जाना चाहिए।

गुरुजी 72 वर्ष की आयु पाकर 16 नवंबर, 1947 को संसार से विदा हुए। शरीर की अनेक व्याधियों से वे अनेक वर्षों तक घिरे रहे। मानसिक चिंताओं से वे पीड़ित थे। पारिवारिक और आर्थिक बाधाएँ भी पर्याप्त रहीं। इन दिक्कतों और वाधाओं के बीच उनका साहित्य निर्मित हुआ। नाटक (सुदर्शन) लिखा, कविता पुस्तकें संगृहीत कीं, संकलित कीं, लिखी और संपादित कीं, व्याकरण का पूरा शास्त्रीय साहित्य हिंदी में दिया, निवंध की पुस्तकें मौलिक रूप में लिखीं, बच्चों के पद्य लिखे, विशेष रूप से कई एक हिंदी रीडरों का कार्य किया, निबंध संग्रह प्रस्तुत किए, आलोचनात्मक साहित्यिक टीकाएँ बनाईं और अँग्रेज़ी, बँगाली, मराठी, गुजराती तथा उड़िया से रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया। स्फुट चीज़ें उनकी बहुतेक हैं। इतने सब विपुल साहित्य के बीच उनके व्याकरण साहित्य ने ही उन्हें यशार्जन दिया।

हिंदी का शास्त्रीय अध्ययन और अध्यापन जहाँ कहीं भी होता है, गुरुजी का व्याकरण उसका आधार अवश्य ही बनता है। हिंदी के रूसी विद्वान प्योत्र, बरान्निकोव ने गुरुजी के बड़े व्याकरण का अनुवाद दो भागों में रूसी भाषा में किया है। जापानी भाषा में भी उसका अनुवाद हुआ है। उनकी अथक साधना का वह व्याकरण हिंदी ज्ञान-पथ पर मील का पत्थर है जो जिज्ञासु को और अध्ययनार्थी को दिशा-संकेत देता है, और मंज़िल की दूरी बतलाता है।

आधुनिक पंजाबी कहानी

कुलवीर सिंह कांग

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक काल में पंजाबी साहित्य में वस्तु एवं विचार की दृष्टि से अनेक परिवर्तन हुए और आज भी हमारा साहित्य परिवर्तन काल में ही विचर रहा है। इस परिवर्तन ने ही छोटी कहानी को जन्म दिया। साधारणतया यह भी कहा जा सकता है कि छोटी पंजाबी कहानी ने बहुत उन्नति कर ली है तथा यह भारत की कई उच्च एवं विकसित भाषाओं से आगे निकल गई है। यह सब ठीक है, परंतु अभी तक भी पंजाबी कहानी उस चरम सीमा पर नहीं पहुँची, जहाँ पहुँच कर कोई साहित्य विश्व के लिए आदर्श बन जाता है।

यों हमारे बहुत से कहानीकारों ने एक ही प्रकार की सूत्र-अनुकूलता अपना ली है। उनका विचार है कि सभी सामाजिक बुराइयों तथा दुःखों का मूल कारण आर्थिक भेद अथवा धन का असमान वितरण ही है। परंतु एक ही विचारधारा को सभी स्थानों पर चरितार्थ करते जाना कला की मौलिक आत्मा से अन्याय करना होगा। वैभव-ऐश्वर्य से पूरित होने के पश्चात् भी कई लोग दुःखी हैं। अनेक लोगों की ऐसी समस्याएँ भी हैं, जिनका आर्थिक विश्लेपण के साथ कुछ संबंध नहीं। आर्थिक विश्लेपण से भी सूक्ष्म विश्लेषण है मनोवैज्ञानिक विश्लेपण। सारा कथा साहित्य ही मनुष्य की बातें करता है, जो मन के अनुकूल चलता है। मन में अनेक बार ऐसी पेचीदा गाँठ पड़ जाती है, जिसके संबंध में हमें स्वयं कुछ ज्ञान नहीं होता। हम जीवन की सभी सुविधाओं की प्राप्ति के पश्चात् भी दुःखी रहते हैं। उदाहरणार्थ एक सुंदर एवं हृष्ट-पुष्ट पति अपनी सुकुमार पत्नी से कोई प्यार नहीं रखता। घर में अर्थिक संपन्नता भी है। वाह्य रुप से कोई क्लेश दृष्टिगोचर नहीं होता, परंतु पति फिर भी एक अतृप्ति-सी अनुभव करता है। उसे जो सुख अपनी माँ की गोद में मिलता है, वह कहीं अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। दुःखी बेटे के लिए माँ और भी स्नेह प्रगट करती है। पति-पत्नी की परस्पर दूरी बढ़ती जाती है। ऐसी मानसिक अवस्था का समाधान भला आर्थिक विश्लेषण क्या करेगा? इसका समाधान तो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही कर सकता है। बचपन में वह माता अपने बच्चे के प्रति अथाह प्यार रखती थी और सदा उसे अपने अंग से लगाए रखती थी, जिस कारण उस बच्चे का माँ के अंगों से अपार स्नेह उत्पन्न हो गया था। कामरुचि मनुष्य में जन्म से ही उत्पन्न हो जाती है। अचेत अवस्था में वह बालक ऐसी ही काम भावना-तृप्ति की इच्छा करता रहता है। युवावस्था में भी उसको वैसे ही अंगों के प्रति-आकर्षण रहता है, लेकिन पत्नी का कोई भी अंग अथवा स्वभाव माता के साथ मेल नहीं खाता। इसीलिए वह संपन्न तथा सुंदर पति अपनी पत्नी से ऊब जाता है। यदि हम यहाँ आर्थिक विश्लेषण का सूत्र लागू करें, तो यह कहानी एक उलझन ही बन कर रह जाएगी। पंजाबी कहानीकारों में बहुत कम ऐसे कहानीकार हैं जो इस प्रकार का मानसिक विश्लेषण प्रस्तुत कर सके हों।

करतार सिंह दुग्गल के संबंध में कहा जाता है कि वह एक मनोवैज्ञानिक कहानीकार हैं, परंतु वह कुछ विशेष पात्रों का ही मानसिक चित्रण कर पाते हैं। हाँ, कुछ सीमित पात्रों की मानसिक उथल-पुथल का उन्हें अच्छा ज्ञान है, जैसे मध्य श्रेणी के पति-पत्नी, घर का नौकर, कोई बुजुर्ग स्त्री अथवा कोई अति वृद्धा या एक युवा लड़की। संपूर्णतौर पर वह स्त्रियों की अधिक व्याख्या करते हैं। परंतु वह पात्रों के मन की गहराइयों तक नहीं पहुँचते। उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन एक सुगंध के समान है, जो केवल क्षणिक है। वह मनोविश्लेषण धारा का अपूर्ण प्रयोग करते हैं।

कभी-कभी सुजान सिंह मनुष्य के मन का अति सुंदर विश्लेषण करते हैं। इस दृष्टि से उनकी एक प्रसिद्ध कहानी है—रास-लीला। यद्यपि यह कहानी उनकी प्रारंभिक रचनाओं में से है, फिर भी उसमें स्थाई ताजगी विद्यमान है। किसी वृद्ध पति की युवा पत्नी अपनी इच्छाओं की झूठी पूर्ति एक व्यक्ति के अबोध प्यार में ढूँढ़ती है। बहुत सादगी के साथ उन्होंने इन जवान उमंगों को मनोवज्ञानिक रूप दिया है। पर इसके बाद सुजान सिंह ऐसी विश्लेषणात्मक कहानी न दे सके। यद्यपि उनकी कहानी कला में अन्य गुण विद्यमान हैं, परंतु मन के क्षेत्र में वह साधारण मनोवैज्ञानिक चित्र ही प्रस्तुत करते रहे हैं। जब से उन्होंने समाजवादी दृष्टिकोण स्वीकार किया है, वह सामूहिक मनोविज्ञान प्रकट करने में अधिक सफल रहे हैं, क्योंकि वह जनसाधारण के कंधे से कंधा मिला कर जन-आंदोलनों में भाग लेते रहे हैं। इसलिए वह उपर्युक्त धारा के प्रमुख कथाकार माने जाते हैं। 'मनुख ते पशु' उनकी अत्यंत प्रसिद्ध कहानी है। प्रस्तुत कहानी में वर्ग-संघर्ष से उत्पन्न भावों को उन्होंने बड़ी सुंदरता से व्यक्त किया है। इस प्रकार का मानसिक अध्ययन पंजाबी के बहुत से कहानीकारों ने किया है, क्योंकि पंजाबी के अधिकतर कहानीकार प्रगतिवादी विचारधारा के अनुयायी रहे हैं और जनसंग्रामों में क्रियात्मक भाग लेते रहे हैं। जसवंत सिंह कँवल, संतोखसिंह धीर तथा अमर सिंह आदि ने इस प्रकार की बहुत सफल कहानियाँ लिखी हैं।

मनोविश्लेषण के पक्ष से मुझे नवतेज में अधिक प्रतिभा दिखाई देती है। उनका प्रथम कहानी संग्रह ही इस का प्रमाण है। कभी-कभी वह अत्यंत आकर्षक ढंग से मनोवैज्ञानिक सत्यों को उद्घाटित करते हैं। उन्होंने 'बेताल', 'औंतरी', 'चोर' तथा 'काल दे दिनां विच' नामक कहानियों में मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणात्मक धारा के तत्त्वों की व्याख्या की है। उदाहरणार्थ 'बैताल' कहानी में उन्होंने एक कुशल कलाकार की प्रशंसा-इच्छुक आत्मा की बहुत सूक्ष्मता के साथ व्याख्या की है। इस नाममात्र कला उपासक समाज में कला के लिए कोई प्यार नहीं, बल्कि कलात्मक गोष्ठियों में भी आकर्षक चेहरों तथा गुदाज़ शरीरों को मापदण्ड मानकर रचनाओं की समीक्षा की जाती है और यदि कोई सुंदर लड़की भद्दा नृत्य भी कर रही हो तो उस पर झूठी प्रशंसा की वर्षा की जाती है। एक सच्चे कलाकार की प्रशंसा न करना, उसको बेताल करना है। हाव-भाव एवं मानसिक उथल-पुथल की जो सूक्ष्मता उन्होंने उद्घाटित की है, वह एक सफल मनोवैज्ञानिक कथाकार ही कर सकता है। उनकी कई अन्य कहानियों में भी मानसिक भय, असंतोष तथा मानसिक रोगों आदि की अच्छी सूझ प्रकट होती है।

अमर सिंह की कहानियों का सूक्ष्म निरीक्षण मार्मिक है। उनके मानसिक अध्ययन का आधार आंतरिक-दर्शन है, जिसको वह अनुभवों तथा बौद्धिकता के समन्वय से अधिक प्रांजल बनाते हैं। वह अपनी तृप्ति 'तिऊड़ी' तथा 'कुझ उस दी, कुझ अपनी, नामक कहानियों में मन की गहराई तक पहुँचते हैं। उनके मानसिक अध्ययन की धुरी यौन-मनोविज्ञान है। वह चाहे व्यंगात्मक अनुभूति हो अथवा अपने ही किसी अनुभव को पेश करना, यौन-विषाद उभर कर सामने आ जाता है।

पंजाबी कहानीकारों ने पशु-मनोविज्ञान पर भी कुछ कहानियाँ लिखी हैं। दुग्गल की कहानी 'वढ विच इक सवेर', धीर की 'मंगो' पशु-प्रवृत्ति की सुंदर व्याख्या करती हैं। देवेंद्र सत्यार्थी ने 'सप्प ते मनुख' में मनुष्य और सर्प के प्यार के प्रति मनोभावों में समानता दिखाई है। दुग्गल की नवीन कृति 'गोरज' में एक दो और कहानियाँ भी पशु-मनोविज्ञान की सूझ का पता देती हैं।

पंजाबी कथा साहित्य में यौन-विश्लेषण पर भी कुछ कहानीयाँ लिखी गई हैं। चाहे हम डा० फ्रायड और उसके अनुयाइयों की सौ निंदा करें, किंतु उसके द्वारा उद्घाटित ठोस सत्यों की हम अवहेलना नहीं कर सकते। पंजाबी कहानीकारों ने छोटी कहानी के प्रारंभिक काल में यौन संबंधी विचारों पर कई प्रकार की खुली बातें कहीं, परंतु उनमें बहुत से कथाकार नग्नता प्रकट करने में इतने आगे चले जाते थे कि लगता था लेखक जान बूझ कर पाठकों की काम-रुचि को उत्तेजित कर रहा है। ऐसी कहानियों की कड़ी आलोचना हुई और पंजाबी के कहानीकारो ने इस तरफ से बिल्कुल मुँह मोड़ लिया। यौन-विचार कोई निंदनीय भावना नहीं बल्कि गल्पकारों का प्रमुख कर्तव्य है कि वे इस संबंध में अपनी विशिष्ट बुद्धि द्वारा लोगों की मानसिक उलझनों का निवारण करें। मंटो की काफ़ी बदनामी हुई परंतु उनका जो अद्वितीय स्थान भारतीय कहानीकारों में है, उस पर अब किसी को आपत्ति नहीं रही। पंजाबी कहानीकार इस क्षेत्र से विमुख होते जा रहे हैं। मनुष्य की आंतरिक प्रवृत्तियों पर चोट करना बुरी बात नहीं, परंतु यह भावना तब निंदनीय है जब लेखक ऐसी कहानियों में स्वयं रुचि लेने लगता है। भारत का अधिकतर समाज गाँवों से संबंधित है और विशेष कर पंजाब में गाँवों के लोगों का विशेष महत्त्व है, परंतु पंजाबी की छोटी कहानी शहरी जीवन के रहन-सहन से घिरी हुई है। बहुत कम कहानीकार ऐसे हैं जो अपनी कहानियों में गाँव के वातावरण को रचना का आधार बनाते हैं। संतोख सिंह धीर, जसवंत सिंह कँवल और हरी सिंह दिलबर ने गाँव की समस्याओं का बहुत सुंदर चित्रण किया है। परंतु बड़े कहानीकारों को गाँव के जीवन का बहुत कम अनुभव है। समाज के इस विशाल भाग से बिलकुल उदासीन होना, साहित्य की आत्मा को गहरा आघात पहँचाना है। यद्यपि यह ठीक है कि आजकल चतुर्दिक शहरी जीवन छाता जा रहा है, किंतु साहित्य तभी सत्यं एवं शिवं का कर्तव्य पूर्ण कर सकता है, जब उसके द्वारा समाज के सभी भागों का प्रतिनिधित्व किया जाए।

पंजाबी के कहानीकारों में बिना सोचे-समझे प्रगतिशील बनने की भावना बहुत प्रचलित है। प्रगतिवाद कुछ नारों का संग्रह नहीं, बल्कि यह तो जीवन के यथार्थवादी अनुभवों से निकली हृदय की एक तीव्र अभिलाषा है। कुछ कहानीकार इस संबंध में

ईमानदार हैं, किंतु शेष कोरी वाह-वाही के लिए अपनी लेखनी का रुख इस दिशा में उठाते हैं। यही कारण है कि अनुभवहीन होने पर, ऐसी प्रगतिशील कहानियों में कहानी के रस तथा अनुभूति का अभाव रहता है।

कुछ समालोचकों और नवोदित कहानीकारों ने साहित्य में तकनीक को यंत्र की भाँति प्रयोग करना आरंभ कर दिया है। शलियाँ साहित्य का निर्माण नहीं करतीं बल्कि मौलिक साहित्यकार ही नवीन शैलियों को जन्म देते हैं। कुछ आलोचक कहानी कला ही नहीं संपूर्ण साहित्य को ज्यामिति के चित्रों के अनुसार समझाकर कहानी कला का ज्ञान देते हैं एवं आलोचना करने की विधि बताते हैं। कुछेक अपने संमुख कुछ निर्धारित नुक्ते रख लेते हैं और उन्हीं के आधार पर आलोचना करते हैं। यही कारण है कि कुछ कहानीकार तकनीकी सिद्धांतों के आधार पर ही कहानी की रचना करते हैं। शैली पर व्यर्थ की दिमाग़पच्ची कथा साहित्य की मौलिकता को क्षति पहुँचाती है।

कथा साहित्य की मूल आत्मा में केवल विचार ही नहीं बल्कि घटना पहले प्रवेश करती है। बाद में सिद्धहस्त कलाकार उसमें कल्याणकारी विचार भरता है, परंतु कुछेक कहानीकार पहले एक विचार मस्तिष्क में लाते हैं, तत्पश्चात् घटना को उसके साथ जोड़ते हैं। फलस्वरूप कहानी का सारा ढाँचा ही कृत्रिम एवं उखड़ा-उखड़ा लगता है। संत सिंह सेखों की अधिकतर कहानियाँ इसी वर्ग से संबंधित हैं। ऐसा करने से तो उचित होगा कि कोई दर्शन संबंधी लेख ही लिख दिया जाए।

पंजाबी काव्य क्षेत्र के कुछ प्रसिद्ध कवियों ने भी कथा साहित्य की ओर कुछ ध्यान दिया है। प्रो० मोहन सिंह तथा संतोख सिंह 'धीर' ने पंजाबी कहानी को समृद्ध करने में बहुत योगदान दिया है और मेरा यह विचार है कि यदि प्रो० मोहन सिंह इस क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान दें तो वह एक अच्छे शैलीकार सिद्ध हो सकते हैं। 'धीर' ने समाजवादी विचारों को सुंदर रूप में व्यक्त किया है, किंतु अमृता प्रीतम का किया यत्न कोई इतना प्रशंसनीय नहीं। उनकी अधिकतर कहानियों में भावुकता तथा कल्पना का पुट अधिक रहता है, या वे उनकी अपनी व्यथा से निर्मित हैं।

पंजाबी कथा साहित्य में केवल दो ही शैलीकार हैं, जिनकी कहानीकला में विलक्षणता के दर्शन होते हैं—दुग्गल तथा गुरुबख्श सिंह। परंतु गुरुबख्श सिंह शैलीकार होते हुए भी आदर्श कहानीकार न बन सके क्योंकि वह छोटी कहानी नहीं बल्कि लघु उपन्यास लिखते हैं। उनकी कई कहानियों में चाहे छोटी कहानी का रंग है, परंतु उनकी प्रसिद्ध कहानियों में, जिनके कारण वह शैलीकार कहे जा सकते हैं, छोटी कहानी के तत्त्व बहुत कम हैं। वह एक पुरानी किस्म के अच्छे कथाकार ह जो भाषा सौष्ठव तथा घटना वैचित्र्य से पाठकों को प्रभावित करते हैं। वस्तुतः दुग्गल शैलीकार हैं। वह छोटी-सी बात को अत्यंत मार्मिकता से चित्रित करते हैं। संत सिंह सेखों और सुजान सिंह तो कुछ कहना चाहते हैं, परंतु दुग्गल तो जीवन की व्याख्या ही करते हैं। प्रारंभ में वह 'कला, कला के लिए' के सिद्धांत को मानते रहे और अब भी वह प्रगतिशील विचारों के पूर्ण अनुयायी नहीं हैं।

[शेष पृष्ठ 172 पर]

आधुनिक उर्दू कहानी

महमूद हाशमी

यदि मुझसे पूछा जाए कि साहित्य में कहानी का स्थान क्या है तो मैं कहूँगा कि कहानी छोटी हो या लंबी विशुद्ध साहित्य के अंतर्गत कभी नहीं आती। कथा, कहानी, किस्सा साधारण वुद्धि की स्वाभाविक और सहज उपज है। हर व्यक्ति चाहे पढ़ा लिखा हो या निपट निरक्षर, दिन भर में दो चार, दस पाँच कहानियाँ जरूर तराशता है, उन्हें वयान करता है और उसकी अभिव्यक्ति भी अपनी जगह पूर्ण होती है।

साहित्य और कला की व्याख्या करते हुए हम जिन तत्त्वों पर ध्यान देते हैं उन में अभिव्यंज़क शब्दों या प्रतीक, विंब आदि का प्रमुख स्थान है। किसी प्रतीक या विंव को परखते समय यह जान लेना ज़रूरी होता है कि यह विंब किस सीमा तक अपेक्षित है और किस सीमा तक अपने विशाल अर्थों को व्यक्त करता है।

कविता में निर्माणात्मक तत्त्वों के ये गुण तो उत्पन्न हो सकते हैं किंतु गद्य और पद्य का अंतर, गद्य में यह गुण उत्पन्न नहीं होने देता। इसलिए कि अव कविता में छंद मात्राओं इत्यादि की वहस तो खत्म हो चुकी है सिर्फ़ इन तत्त्वों से ही पद्य और गद्य का अंतर स्पष्ट होता है। यदि किसी गद्य लिखने वाले व्यक्ति के द्वारा गद्य में ये गुण उत्पन्न हो जाते हैं तो उसका गद्य, पद्य और गद्य के बीच एक विचित्र, कृत्रिम और अस्वाभाविक वस्तु वन कर रह जाता है। यदि यह गुण उत्पन्न न हो तो फिर हम कहानी को रचनात्मक साहित्य की सीमा में कैसे रख सकते हैं। यह भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि कहानी को आलोचक क्यों नहीं मिले? कहानी के प्रति मैं किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं रखता, लेकिन कहानी और रचनात्मक साहित्य के वीच एक दूरी अवश्य अनुभव होती है। इसलिए आलोचकों ने भी कहानी पर या तो विल्कुल ध्यान नहीं दिया या फिर एकाध लेख लिख कर ही संतोष कर लिया है। इस समस्या पर न केवल हम बल्कि हमारे वुजुर्ग भी उलझे रहे हैं। उन्होंने कभी खुल कर इस विरोध पर चर्चा नहीं की। आलोचना अधिकतर या तो कविता पर लिखी गई या दृष्टिकोणों तथा वादों (वाद का वहुवचन) पर। कहानी की आलोचना की कोई स्पष्ट प्रवृत्ति कहीं नज़र नहीं आती। उर्दू आलोचना में वक़ार अजीम ने यह कोशिश जरूर की थी। शेष आलोचकों में कभी मजनूं गोरखपुरी ने, कभी अल अहमद सरूर ने और कुछ जमकर एहतशाम हुसैन ने कहानी के संवंध में लिखना चाहा, लेकिन वात फुटकर लेखों से आगे न वढ़ सकी। नए आलोचकों में इंतजार हुसैन ने अपनी कहानी कला को स्पष्ट करने के लिए कहानी पर एक अच्छा लेख लिखा तो उनसे कुछ आशाएँ हुईं, लेकिन वह भी निजी व्यस्तताओं में खो गए। डाक्टर मुहम्मद हसन ने दो-एक सर्वेक्षण कहानी-साहित्य पर भी किए, परंतु कालांतर में डाक्टर मुहमद हसन

भी खामोशी से अन्वेषणात्मक तथा संपादन संबंधी कार्यों में व्यस्त हो गए। प्राय सभी भाषाओं के आलोचक कहानी संबंधी आलोचना से विमुख रहे हैं। केवल फ्रांस में कहानी के साथ किंचित न्याय किया जाता है। यों भी कहानी का विकास बहुत हद तक फ्रांस का ऋणी है। ड्यूब्ले और पियद ने सन् 1549 में जो साहित्यिक मेनी-फेस्टो, फ्रांस की जनता के सामने पेश किया था, वह आज तक उस मेनीफेस्टो की पावंद है, और कविता, कहानी चित्रकारी तथा संगीत से पूरी तरह संबंध बनाए हैं।

बीसवीं सदी में अँग्रज़ी में सिर्फ़ फोर्ड मेडोक्स ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसने गद्य अथवा कहानी पर ध्यान दिया। फोर्ड ने 'द इंग्लिश रिव्यू' के संपादन के पंद्रह महीनों में (1908–09) गद्य और कहानी के पक्ष में तथा कविता के विरुद्ध अवि-राम रूप से लिखा। किंतु फोर्ड ने स्वयं कविताएँ भी लिखीं। टी० एस० इलियट ने चेखव की कहानियों की प्रशंसा और इब्सन के ड्रामों की सराहना की तथा चेखव के गद्य में नाटकीय तत्त्वों को ढूंढ़ निकाला। सच तो यह है कि बात कहानी की बजाए कविता अथवा नाटकीय तत्त्वों की ओर चल निकली। इलियट का बयान है कि कहानी कविता की अपेक्षा नाटक के तत्त्वों के अधिक निकट है। कहानी अथवा पद्य और नाटक क्रियाशीलता (Action) की अभिव्यंजना करते हैं। कविता क्रियाशीलता से अस्थाई संबंध विच्छेद की द्योतक है। इसीलिए कविता प्रतीकात्मक संप्रेषणीयता (Symbolic Communication) है और कहानी या गद्य नाटकीय संप्रेषणीयता (Dramatic Communication), लेकिन नए कहानीकार तो प्रतीकात्मक अभिव्यंजना के दावेदार हैं। इलियट ने उनके दावों पर कोई ध्यान नहीं दिया और यहाँ भी समस्या का समाधान नहीं हुआ।

पश्चिम में गद्य लेखक या कहानीकारों ने आलोचकों के व्यवहार से विवश होकर स्वयं आलोचना पर ध्यान देना शुरू किया। डी० एच० लारेंस, हैनरी जेम्स, ई० एम० फास्टर, एडविन मोचे, जेम्स जॉयस; वर्जीनिया वुल्फ, पर्सी लुंबाक के नाम, इस संदर्भ में लिए जा सकते हैं। लेकिन हमारे कहानीकारों में यह प्रवृत्ति उत्पन्न ही न हुई। मेरा ख्याल है कि पर्सी लुंबाक की पुस्तक 'कथा-शिल्प' (Craft of fiction) कहानी आलोचना संबंधी बहुत अच्छी पुस्तक है। पुस्तक के नाम में (Craft) शब्द मुझे खटकता है। क्योंकि यह (Art) का निषेध करता है। फिर लुंबाक ने कहानी के परखने की जो मूल कसौटी बनाई वह 'प्वाइंट आफ व्यू' (दृष्टिकोण मात्र) है और आधुनिक कहानी में इसका निषेध किया जाता है। मतलब यह कि यहाँ भी कहानी संबंधी आलोचना की कोई स्पष्ट रूप रेखा उपलब्ध नहीं होती।

नए साहित्य में प्रतीकवाद के महत्त्व के हम सब पक्षपाती हैं और कई आलोचकों ने हमारे कई आधुनिक कहानीकारों की प्रतीकात्मक-अभिव्यंजना या सांकेतिक अभिव्यक्ति पर बहस भी शुरू की है। प्रतीकवादियों के समर्थक सोसन लिंगर का वक्तव्य कुछ इस तरह है :

"मेरा ख्याल है कि कहानी विशेष रूप से साहित्य नहीं है। इसका मूल स्रोत बिल्कुल भिन्न है। इसमें केवल प्रयुक्त शब्दों का यथार्थ होता है। अलबत्ता यह साहित्य

के निकट अवश्य है। इसकी अभिव्यक्ति, इसकी प्रयोगात्मक व्याख्या और ध्येय साहित्य से मिलता-जुलता है और साथ ही इसमें कुछ स्वभावगत अंतर भी है। प्रायः इसके शब्द मृत शब्दों की तरह कालप्रवाह से रहित होते हैं। यों समझिए, जिस तरह साहित्य का कुछ संबंध, चित्रकला और शिल्प कला से है, उसी तरह कहानी भी रचनात्मक साहित्य से संबंधित तो है लेकिन विशुद्ध साहित्य नहीं है।" *

इस बात से पूरी तरह सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि अपने युग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक आंदोलन भी कहानी साहित्य का निषेध कर रहा है। ऐसा आंदोलन जिससे संबंधित होकर हम नई कहानी की सीमाएँ स्थापित करते हैं।

यदि हम अब इस समस्या पर विचार करने की चेष्टा करें कि कहानी कला कब बनती है और कहाँ और किस तरह यह साहित्य की परिधि से बहिष्कृत हो जाती है तो शायद कहानी पर कलाहीन तथा निर्माणहीन होने का आरोप समाप्त हो जाए। इस संदर्भ में उर्दू कहानी पर विचार अपेक्षित है।

प्रेमचंद उर्दू-कहानी के आरंभिक आधार क्षितिज समझे जाते हैं। लेकिन उनकी कहानियों में नई और सहज भाषा के अतिरिक्त हमें और कुछ नहीं मिलता। प्रेमचंद की कहानी पुरानी दास्तानों की तरह मंगल और अमंगल की परिधि से बाहर नहीं निकलती। प्रेमचंद और उनके बाद आज़म कुरेशी, सुदर्शन और अली अब्बास हुसैनी के यहाँ कला का यही निरूपण हमें मिलता है।

'अंगारे' की कहानियों में पहली बार आधुनिक कहानी के कुछ कला संबंधी तत्त्व नज़र आते हैं और कला के सौंदर्य पक्ष की आरंभिक किरणें भी उन्हीं कहानियों के बीच ही कहीं छुपी मिलती हैं।

'अंगारे' के बाद कृशनचंदर और बेदी के यहाँ कभी-कभी कहानी की साहित्यिकता प्रकट हुई है। कृशनचंदर ने कला के सौंदर्यपक्ष को उजागर करके अपने कई बड़े अवगुण छुपा लिए हैं। लेकिन सौंदर्यवादी युग अपनी आभा खो चुका है। अब वह प्रवंचना भी शेष नहीं रही। इस दृष्टि से देखा जाए तो कृशनचंदर अब साहित्यहीन कथा का प्रतीक बन चुके हैं। बेदी के यहाँ कला की बारीकियाँ तो थी, जो 'लाजवंती' में तनिक उजागर भी हुई थी, किंतु उन्होंने कला की सूक्ष्मता का उदात्तीकरण करना नहीं सीखा। इसलिए वह भी बिखरे रहे। 'अपने दुख मुझे दे दो' में पहली बार बेदी की कला संबंधी सूक्ष्मता ज्यादा पुष्ट नज़र आती है। लेकिन इस कहानी में आरंभ से जो विशेष बिंब उभारा गया था वह अंत तक स्थिर नहीं रह पाया। इसलिए यह कहानी भी कला और साधारण मनुष्य की अभिव्यंजना के बीच की चीज़ बन कर रह गई।

लोग कहते हैं कि इस्मत की कहानियों में पहली बार नारी के पौर्वात्य रूप को देखा गया और उर्दू साहित्य में सन् 1936 के बाद की नारी को इस्मत की कहानियों

*The primary illusion and the great orders of Art—Hudson review II (1950).

से ही पहचाना गया। परंतु मुझे तो इस्मत की कहानियों में सन् 1936 के वाद की नारी कहीं नजर नहीं आती। उनकी कहानियों में नारी के कृत्रिम, अस्वाभाविक और सीमित रूप को ही देखा जा सकता है।

मंटो में कहानी कला के सर्वाधिक तत्त्व मौजूद थे। लेकिन दुर्भाग्य से मंटो की कौतूहलप्रियता ने उसे नाटक के निकट कर दिया। नाटक कला की परिधि में नहीं आता और यही कारण है कि मंटो की कहानियों में कला के विशुद्ध स्वरूप के दर्शन नहीं होते।

सन् 1936 के वाद वाली कहानीकारों की यह पीढ़ी जिसका एक तट प्रेमचंद से मिलता है और दूसरा मंटो से, यथार्थवाद के निकट रही है। यथार्थवाद के अंतर्गत इन्होंने केवल मनुष्य के सामाजिक और आर्थिक रूप का ही चित्रण किया। इस पीढ़ी के लेखकों ने जीवन के अरूपवादी और अतियथार्थवादी स्वरूप को नहीं पहचना। यही कारण है कि इस पीढ़ी की कहानियों में रचनात्मक दृष्टि का अभाव स्पष्ट लक्षित होता है। क्या यथार्थ चित्रण कला और रचना के कार्य को एकदम खत्म कर देने का नाम है? अकेले अहमद नदीम कासिमी ने इस पीढ़ी के अस्तित्व की रक्षा की है, परंपरावादी और फार्मूला-कहानी द्वारा।

कलापूर्ण और कलाहीन कहानी के भेद को समझना यहाँ जरूरी होगा। हैनरी जेम्स ने कहानी को 'Direct impression of life' कहा है, लेकिन उर्दू कहानी, इन वड़े कहानीकारों की फस्ल में मात्र 'Direct representation' तो कर सकी लेकिन 'impression' नहीं वन सका। रिप्रज़ेंटेशन तो मंच का कर्म है जिसका वास्तविक रचना अथवा निर्माण से कोई संवंध नहीं। इसलिए उर्दू कहानी की इस वड़ी पीढ़ी को जो अब भी कहीं सांस ले रही है, हम कलाहीन या निर्माणहीन कहानीकारों के वर्ग का नाम दे सकते हैं।

इस विश्लेषण के वाद कलापूर्ण और रचनात्मक कहानी की प्रथम किरणों का पता लगाना अपेक्षित है। लेकिन इससे पहले एक महत्त्वपूर्ण कृतिकार कुर्रतुल एन हैदर के नाम का ज़िक्र ज़रूरी है। इसी नाम के साथ एक और नाम भी स्मरण आता है—मुमताज़ शीरीं का नाम। 'मेघ मल्हार' वाली शीरीं, कुर्रतुल एन हैदर के बाद पहली वार संवेदना और रचनात्मक अनुभूति की विशुद्ध प्रतीकात्मक अभिव्यंजना 'मेघ मल्हार' में प्रस्तुत करती है।

कुर्रतुल एन हैदर की कहानियाँ रचनात्मक कहानी का सबसे अधिक सशक्त और प्रमुख क्षितिज हैं। उर्दू-कहानी का नगरीकरण (Urbanization) कुर्रतुल एन हैदर ने ही किया है। उनके पात्रों में हमारी नई शहरी-जिंदगी और शहरी समाज का एक विशिष्ट बौद्धिक-स्तर प्रगट होता है। 'शीशे के घर' की समस्त कहानियाँ, इनसान और विशेष रूप से आधुनिक इंसान की उन वास्तविकताओं की प्रतिनिधि हैं, जिनका प्रगटीकरण शब्दों की सीमित परिधि में संभव नहीं होता और जिनके लिए रचना की उच्च योग्यताओं की आवश्यकता होती है। कुर्रतुल एन हैदर की शैली वर्जिना वुल्फ से मिलती जुलती है, परंतु उनका कला सत्य हैनरी

जेम्स के अधिक निकट है । 'The portrait of a lady' के पात्र अज़ाबल, गिलबर्ट, ओस्मेंड इत्यादि की तरह कुर्रतुल एन हैदर ने हमें रखशिदा, मीरा, साजदा खुशवंत सिंह और फारूक जैसे चरित्र दिए हैं । अभी दो तीन वर्ष पूर्व कुर्रतुल एन हैदर ने 'पतझर की आवाज़' लिखकर अपनी कला का एक और नया मील का पत्थर क़ायम किया है । 'पतझड़ की आवाज़' के बाद 'सीताहरण' जैसा लघु उपन्यास भी हमें कुर्रतुल एन हैदर ने ही दिया है । 'पतझर की आवाज़' में कुर्रतुल एन हैदर की नायिका पहली बार बौद्धिकता से निकल कर पूरे सांस्कृतिक संस्कारों सहित भावनामय और वासनामय रूप में सामने आती है । प्रस्तुत कहानी कुर्रतुल एन पर लगाए जाने वाले उन आरोपों को भी खंडित कर देती है जिनमें उनके पात्रों की अधिकता और उनके प्रति अन्याय की चर्चा होती है । कुर्रतुल एन हैदर के शब्द निर्जीव नहीं, और उसका सबसे बड़ा गुण यह है कि उनके पात्र एक विशेष बौद्धिक धरातल से शुरू होकर रचनात्मक कला तक की मंज़िल पार करते हैं ।

मुमताज़ शीरीं ने उर्दू कहानी में प्रतीकात्मक शैली का प्रारंभ किया । अपनी कहानी के बारे में उन्होंने स्वयं लिखा है "मेघ मल्हार मैंने एक तीव्र रचनात्मक आंदोलन के अधीन लिखा था । मुझ पर सचमुच उस समय एक उन्माद सा सवार था और मैं एक आंतरिक तथा आत्मिक आनंद की अवस्था में तल्लीन थी । मैंने उन दिनों चाँदनी में वही आनंद और सुख पाया था और संगीत के जादू को अपनी आत्मा की गहराइयों में महसूस किया था । यद्यपि संगीत ज्ञान का मैं कोई झूठा दावा नहीं करती ।. . .मैंने मेघ मल्हार में कई तरह के प्रयोग किए हैं । अब यह नहीं मालूम कि यह कहानी कहाँ तक प्रयोग की सीमा से आगे बढ़कर रचना बनी ।" मुमताज़ शीरीं ने पौराणिक कथाओं को नए और जीवंत प्रतीक बना कर प्रस्तुत किया । 'दीपक राग' और 'मेघ मल्हार' जैसी रचनात्मक कहानियों से उन्होंने हमें कहानी के रचनात्मक पक्ष पर सोचने का मौन निमंत्रण दिया है ।

इन दो कहानीकारों ने कम से कम हमें यह प्रकाश तो दिया की कहानी प्रयोग की सीमा लाँघकर तथा कथा की हद पार कर कब सही रचना बनती है । और इस बात को नई पीढ़ी के जिन कहानीकारों ने पहचाना उनमें इंतज़ार हुसैन का नाम सबसे पहले लिया जाना चाहिए । इंतज़ार हुसैन ने कहानी की रचनाहीन अवस्था को भी अनुभव किया और अपनी राह भी स्वयं तलाश करने की चेष्टा की । उन्हें संभवत: दूसरे कहानीकारों की अपेक्षा इस वास्तविकता का अधिक एहसास है कि उर्दू कहानी अभी रचना-निर्माण और कला की सीमा में नहीं आई है । इसीलिए 'कंकरी' कहानियाँ इंतज़ार के अविरल प्रयासों का प्रमाण हैं । इंतज़ार ने कहानी में कई प्रयोग किए हैं । कभी वह काव्य के ऊँचे लक्ष्यों के निकट लाने के लिए कहानी को इक़बाल के जीवन दर्शन का अनुयायी बनाते हैं और कभी कहानी में सूफीवाद की प्रवृत्ति पैदा करने की कोशिश करते हैं । सूफीवाद का योग और द्वैत, रचना के लिएं प्रसव पीड़ा की अवधि बन जाता है । इसीलिए उन्होंनें सूफीवाद की भी सहायता ली है ।

इंतज़ार हुसैन के अतिरिक्त जिन लोगों में कहानी को 'रचनात्मक कला' बनाने की प्रवृत्ति मिलती है उनमें ज़मीरूद्दीन अहमद, रामलाल, देवेंद्र इस्सर, रहमान मुज़निब, सतीश बतरा, इकबाल मजीद, आबिद सुहैल इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। रामलाल ने इन सब में ज्यादा कहानियाँ लिखी हैं और उन्होंने अपनी कलात्मक सूक्ष्मता के लिए वही शैली ग्रहण की है जो कलाहीन कहानीकारों के वर्ग की थी। वही फार्मुला, वही परंपरा, लेकिन कभी-कभी नवीनता की एक लहर-सी कौंध जाती है, जो पूरी तरह उनकी कला को प्रकाश में लाने में असमर्थ है। उनके यहाँ ज़िंदगी के अदृश्य रूप को पकड़ में लाने की इच्छा नहीं मिलती और जिस विशेष बिंब को वह किसी कहानी में प्रमुखता देते हैं वह अंत तक शेष नहीं रहता। उदाहरण स्वरूप उनकी एक नई कहानी 'रिकार्ड कीपर' के कुछ भाग देखिए। कहानी के आरंभिक भाग में गुलज़ार सिंह की वह वासना जो सभ्यता, परिवार समस्याओं और यंत्र-युग की अमानुषिक प्रवृत्तियों के नीचे दबी रहती है, एकांत का अवसर पाकर जाग्रत हो जाती है और वह अपनी फटी पुरानी, अधेड़ स्त्री में भी एक बार फिर यौवन, सौंदर्य और यौन-आकर्षण महसूस करता है। यहाँ तक कहानी में एक विशेष बिंब उभरता है लेकिन इसके तुरंत बाद कहानी में एक बाहरी चरित्र उभरता है और उसके साथ-साथ बहुत-सी घटनाएँ प्रगट होती हैं। कहानी एक बिल्कुल ही भिन्न केंद्र-बिंदु पर जाकर समाप्त हो जाती है। संभव है उनके निकट यह तथ्य का तर्कसंगत निरूपण हो, लेकिन मेरे निकट तथ्य केवल वह नहीं है जिन्हें हम प्रमाणित अथवा रद्द कर सकते हैं। जो चीज़ कला और रचना के दायरे में तथ्यों के रूप में आती है वह है जीवन और सृष्टि के संबंध में एक नई अनुभूति की अभिव्यंजना। एक ऐसी अनुभूति, जिसके द्वारा हम अपने जीवन में ज़्यादा अच्छी विशेषताओं और गुणों को इच्छाओं के निर्माण का आधार बना सकें। वास्तविकता कोई साधारण कल्पना नहीं है। यह वह चीज़ है जिसको हम प्रतीकों का मूल स्रोत और आधार मानते हैं।

बिल्कुल ही नए लिखने वालों में इधर जो कहानीकार अत्यंत तीव्र रचनात्मक संवेदना के साथ सामने आए हैं, उनमें सुरेंद्र प्रकाश, अब्दुल्ला हुसैन, बलराज मेनरा और राज का नाम प्रमुख है।

सुरेंद्र प्रकाश की एक कहानी 'नए कदमों की चाप' अभी सन् 1963 में हमारे सामने आई है। अब तक नए कहानीकारों की प्रतीकात्मक संप्रेषणीयता की जो तीन-चार कहानियाँ नज़र आई हैं, उनमें 'नए कदमों की चाप' भी उल्लेखनीय है। इस कहानी में सुरेंद्र प्रकाश ने दो पीढ़ियों की भावनाएँ, उनके विरोधाभास, परंपरा की जर्जरित मर्यादाएँ और नए-पुराने मूल्यों के संबंध को प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। इतने बड़े विषय को केवल रचना के कुछ पल ही अपने अंक में समेट सकते हैं। अगर यह विषय किसी यथार्थवादी कहानीकार के हाथ लगता तो शायद वह इस पर 'अलीपुर का एली' जितनी बृहद् कहानी लिख देता और उस स्थिति में न तो रचना और कला की माँगें पूरी होतीं, न विषय-वस्तु से न्याय हो पाता। सुरेंद्र प्रकाश ने इस कहानी के संक्षिप्त से कैनवस में इस बड़े विषय को रचनात्मक योग्यताओं से बाँध लिया है।

बलराज मेनरा आत्मकथा सरीखी कहानियाँ कहने वाले कहानीकार हैं। कहानी के रचनात्मक पक्ष का विकास उनकी कहानियों में रुका हुआ मालूम होता है। संभवत: इसका कारण यह है कि उनके पात्रों में कोई नवीनता नहीं है। वह मनुष्य की आंतरिक पीड़ा को लिपिबद्ध करना चाहते हैं, लेकिन उनकी कहानियों में कथा की रचना की अपेक्षा दर्शन और चिंतन की रचना की प्रवृत्ति अधिक है। यह प्रवृत्ति अधिक उग्रता ग्रहण करे तो कलाकार साहित्य से बिल्कुल कट जाता है।

उपरोक्त कुछ उदाहरणों के अतिरिक्त समस्त उर्दू कहानी (जिसे कम से कम द्वितीय या तृतीय श्रेणी की ही रचना होना चाहिए था) कला और रचना की सीमा में बिल्कुल नहीं आती। जिन कहानीकारों को मैंने रचनात्मक कहानियों का रचयिता कहा है वह कुल मिला कर उर्दू कहानी का मिज़ाज नहीं बन सकी है, अर्थात वह एक परंपरा के रूप में प्रचलित नहीं हो सकी हैं। ●

[पृष्ठ 165 का शेष]

पंजाबी कहानीकार, कहानियाँ अवश्य लिखते हैं, किंतु अभिव्यक्ति में नए प्रयोग नहीं करते। रिपोर्ताज, लम्बी-छोटी कहानी तथा अति लघु कथा आदि कई रूप हैं, जो पंजाबी में नाममात्र ही मिलते हैं। अमर सिंह तथा लोचन बख्शी ने लम्बी-छोटी कहानी के सफल प्रयोग किए हैं। एक और कहानी रूप 'पात्र रेखा चित्र' भी पंजाबी में कम ही लिखा जाता है। कुलवंत सिंह विर्क तथा अमर सिंह की कहानियों में इस रंग की झलक है किंतु कोई भी कहानीकार स्पष्ट रूप में उपर्युक्त विधाओं का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता।

इन उपलब्धियों के बावजूद भी कुछ कहानीकारों में संभावना दिखाई देती है।
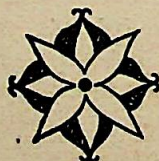
मानदंड भाग—1

लेखक : नलिनविलोचन शर्मा; प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास पटना : मूल्य 5.00: संस्करण : 1963.

हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठित समालोचक स्वर्गीय नलिन विलोचन शर्मा के साहित्यिक निबंधों का प्रस्तुत संग्रह चार खण्डों में विभाजित है जिसके साथ साथ परिशिष्ट रूप में कुछ देर से प्राप्त होने वाले निबंध भी संग्रथित कर लिए गए है। समालोच्य संग्रह मेधावी लेखक के गंभीर अध्ययन, सार-ग्राहिणी दृष्टि, श्रेष्ठ आलोचना-प्रतिभा तथा गहन शोध-प्रवृत्ति का परिचायक है।

आलोचना संबधी खण्ड में संकलित निबंधों के अंतर्गत आलोचना का स्वरूप विश्लेषण एवं वर्तमान हिंदी आलोचनाओं की समस्या का प्रांजल विवेचन प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान आलोचकों का परिचय देते हुए लेखक ने अपेक्षाकृत कुछ अपरिचित और नवोदित लेखकों का भी नामोल्लेख किया है, जिनमें अधिकांश किसी प्रांत विशेष के ही हैं। "हिंदी आलोचना की नई दिशा" तथा 'हिंदी में नव्या-लोचन' शीर्षक दोनों निबंधों में ही सामग्री की पुनरावृत्ति हो गई है। इनमें आलोचना में प्रवेश पा रही एकपक्षता और निर्भीकता का अभाव जैसी गहरी दुर्बलताओं की स्पष्ट रूप से आलोचना की गई है। आलोचकों का जो वर्गीकरण किया गया है वह थोड़ा-बहुत व्यक्तिगत असहमति के बावजूद भी स्वीकारणीय हो सकता है। 'विधेयवाद और नव्यालोचना' एवं 'एलियट की आलोचना-प्रणाली' जैसे तर्कसम्मत निबंध नलिन जी के पाश्चात्य आलोचना-शास्त्र की अधुनातन प्रगति के पर्यवेक्षण पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। साथ ही यह तथ्य भी उभरता है कि सजग लेखक की दृष्टि भारतीय और पश्चिमीय दोनों ही समीक्षादर्शों का समुचित प्रयोग करते हुए सारगर्भित एवं विश्लेषित नवीन मानदंडों के स्थापनार्थ

किस हद तक प्रयत्नशील थी। सचमुच दुर्भाग्यवश मनीषी लेखक के असामयिक निधन से यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि अधूरी रह गई। 'आलोचक निराला' नामक निबंध महाकवि निराला के समीक्षक-रूप को यथार्थतः उद्‌घाटित करता है।

शोध संबंधी खंड में नलिन जी ने शोध के अपेक्षाकृत कुछ उपेक्षित क्षेत्रों की ओर संकेत किया है। हिंदी के विवरण शास्त्र के निर्माण और माईक्रोफिल्म के द्वारा प्राचीन ग्रंथों की चित्र प्रतियाँ बनाकर विभिन्न क्षेत्रों के पुस्तकालयों में उन्हें उपलब्ध करने की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया है। प्राचीन काव्यों की प्रामाणिकता के विषय में नलिन की दृष्टि सर्वथा अछूती बन पड़ी है। हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास एवं बिहार की कहावतें-स्त्रोतान्वेषण और वर्गीकरण जैसे निबंध यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं कि नलिन जी में शोध और समीक्षा दोनों ही प्रकार की योग्यताओं का मणिकाँचन संयोग था।

कलाकार संबंधी खण्ड में विभिन्न देशी और विदेशी प्रसिद्ध साहित्यकारों पर संतुलित समीक्षाएँ रखी गई हैं। इनमें आंद्रजीद, बर्नाड शा, आर्थर कोयलस्कर, बाण भट्ट तथा निराला के 'अप्सरा' उपन्यास का आंशिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

संस्कृत संबंधी खण्ड में प्राचीन संस्कृत नाटकों में सामाजिक तत्त्व एवं सौंदर्य के कवि कालिदास आदि उच्चस्तरीय समीक्षात्मक निबंध संग्रहीत हैं। 'वेद में विष्णु' नामक निबंध नलिन जी की शोधोन्मुखी विद्‌वत्ता और गहन अध्ययनशीलता की महत्तम उपलब्धि बन पड़ी है। इन निबंधों को ध्यानपूर्वक पढ़ने के बाद ऐसा स्पष्ट आभास होता है कि लेखक को अपने पिताजी महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा से संस्कृत का बोधपूर्ण पांडित्य पैतृक उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था।

परिशिष्ट में संग्रहीत कुछ सामग्रियाँ टिप्पणी मात्र होकर भी विषय में सर्वथा मौलिक और अतिनवीन दीखती है। जैसे उन्नीसवीं शताब्दी में हिंदी पुस्तकों की समीक्षा, एवं निराला की एक कविता के अँग्रेजी अनुवाद का विश्लेषण आदि। 'कतिपय भारतीयेतर उपन्यास' संक्षेप में पश्चिम के कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यासों का क्रमबद्‌ध उल्लेख प्रस्तुत करता है तथा भारत सरकार की पारिभाषिक हिंदी शब्दावलियों में शब्दावलियों की त्रुटियों की ओर इंगित करते हुए कुछ रचनात्मक परामर्श भी दिए गए है।

समीक्षा संबंधी निबंधों में कुछ खटकनेवाली त्रुटियाँ भी हैं जैसे हिंदी आलोचना के विकास का परिचय देते हुए लेखक द्‌वारा श्री जगदीश पाण्डेय की हास्य के सिद्‌धांत और मानस में हास्य शीर्षक पुस्तक का विस्तृत परिचय दिया गया है जो इस निबंध को मूल विषय से पृथक् करता-सा दीख पड़ता है। आलोचना-विकास के परिचय में यशस्वी आलोचक श्री नंददुलारे वाजपेयी का नामोल्लेख तक न कर अन्य कितने ही अज्ञात व्यक्तियों के नाम श्रेष्ठ आलोचकों की श्रेणी में जोड़ देना लेखक की पूर्वाग्रही प्रकृति का द्‌योतक है। कुछ ऐसे स्थलों पर लेखकीय निष्पक्षता शंकित सी दीखती है। साथ ही निराला की अप्सरा पर लिखा गया निबंध इस बात का प्रमाण है कि किसी पुस्तक के प्रकाशित होते ही उसके बारे

में बड़े-बड़े फतवे देना कितना घातक और भ्रामक है और इतिहास किस प्रकार ऐसे फतवों को झुठला देता है। यों निबंध तो विचारों का दर्पण है और पाश्चात्य विचारक जे0बी0प्रीस्टले ने तो ठीक ही लिखा है।

"The real Essayist....has every subject in this world at his command for the simple reason his business is to talk about himself or to express the relations between any subject and himself."

कुल मिलाकर इस प्रकार साहित्य की लगभग सभी विद्याओं को निबंध का रूप दे देना सत्यतः सारगर्भित कार्य कहा जाएगा।

सचमुच मनदंड कुछ अपवादों के बाद भी साहित्य के राजसदन में कला, काव्य दर्शन एवं आलोचन के विभिन्न वातायन खोलने में समर्थ हो पाया है, इसमें संदेह नहीं। पर, छपाई-सफ़ाई बहुत साधारण रखकर ऐसी उपयोगी पुस्तक के साथ बहुत बड़ा अन्याय किया गया है।

—देवप्रकाश गुप्त

भीली--हिंदी कोश :-- संपादक--नैमीचंद जैन। प्रकाशक--हीरा-भैया-प्रकाशन, इंदौर, मूल्य : सजिल्द-रु० 4-00, अजिल्द रु० 5-00.

जीव-विज्ञान की ही तरह संस्कृति और सभ्यता के विकास में भी 'योग्यतम की अतिजीविता' (survival of the fittest) का सिद्धांत लागू होता है। 'विविधता में एकता' चिरस्थायी नहीं होती, विविधता का क्रमशः ह्रास होता जाता है और एकता (या अधिक सही एकरूपता) बढ़ती जाती है। भारतीय अभिनव जागरण युग भी इसका अपवाद नहीं है। भाषा संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है अतः इस पर भी उपर्युक्त सिद्धांत लागू होता है। उदाहरण के लिए भारत के एक विशाल क्षेत्र में फैले भीलों की संस्कृति और भाषाएँ आज तीव्र गति से जाने या अनजाने अपनी सबल पड़ोसी संस्कृतियों और भाषाओं से अपदस्थ होती जा रही है। हो सकता है कि समेकित संस्कृति के विकास के लिए यह अपरिहार्य हो फिर भी ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से इसकी रक्षा आवश्यक है। और यह रक्षा भीली जन-जीवन का बहुमुखी अध्ययन प्रस्तुत करके ही संभव हो सकती है। इस क्षेत्र में आज शोध-खोज की आवश्यकता इसलिए भी अधिक है कि अब तक इन विषयों पर अत्यंत अल्पमात्रा में ही काम हुआ है। भीली जीवन को हिंदी भाषी जनता के सम्मुख रखने का एक छोटा सा किंतु महत्त्वपूर्ण प्रयास श्रीनेमीचंद जैन ने भीली-हिंदी कोश के रूप में किया है।

प्रस्तुत कोश में 4,500 भीली शब्दों का संग्रह है। संपादक का यह प्रयास रहा है कि इसमें भीली के बहुविध भाषा व्यावर्तनों के प्रचलित-अप्रचलित शब्द रूपों का व्यापक समावेश हो सके।

प्राक्कथन में संपादक ने भीली शब्द की व्युत्पत्ति और भीली जीवन के ऐतिहासिक, भौगोलिक और धार्मिक पक्ष पर संक्षेप में विचार किया है। आर्यों के आगमनसे पूर्व चाहे भीली भाषाओं का संबंध मुण्ड भाषाओं से रहा हो किंतु 'अधुना भीली' संपादक के मतानुसार विशुद्ध आर्याई है तथा मध्यदेशीय श्रेणी के अंतर्गत एक उपभाषा समूह है। प्राक्कथन में संक्षेप में भीली व्याकरण का विवेचन किया गया है जो अत्यंत उपयोगी है।

शब्द-संग्रह के साथ साथ यदि उसका ध्वन्यात्मक उच्चारण भी दिया जाता तो कोश की उपयोगिता बढ़ जाती। इसके न होने पर भीली शब्दों के उच्चारण में पाठक के अपने उच्चारण के थोपे जाने की आशंका बढ़ जाती है।

यों तो कोई भी क्षेत्र कार्य (Field work) श्रम-साध्य है किंतु आड़ावला (अरावली) के दुर्गम प्रदेशों में अर्ध सभ्य लोगों के बीच लगभग एक दशक तक यथासंभव विचरण करके श्री जैन ने जो कार्य किया है वह दुष्कर था और इसीलिए सराहनीय है।

ग्रंथ की उपयोगिता संपादक के शब्दों में देखिए—यह उन सभी व्यक्तियों के काम आएगा जो शौकिया अथवा राजकीय हितों से भाषा, संस्कृति, समाज-शास्त्र, समाज-सेवा, आदिम-जाति-कल्याण, धर्म-प्रचार आदि विविध जीवन क्षेत्रों में, कार्यरत है।

कोश का आकार-प्रकार और छपाई निर्दोष है।

—नरेंद्र व्यास

प्राप्ति-स्वीकार

अलफ़ा बीटा पब्लिकेशंस

आओ खुली बयार . . . राजेंद्रप्रसाद सिंह
मूल्य चार रुपए

विश्वभारती, धनवेट चैंबर्स, नागपुर

हिततरंगिनी . . . . सुधाकर पांडेय
मूल्य 5 रुपए

केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद्, नई दिल्ली

कार्यालय सहायिका . . . संपादन समिति :
हरिबाबू कंसल, राजरूप राय,
सूर्यनारायण सक्सेना
मूल्य 3 रुपए

नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, अशोक राजपथ, पटना-4

हिंदी की समस्याएँ . . . कामेश्वर शर्मा
मूल्य 4 रुपए 50 पैसे

राजपाल एण्ड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शिक्षा संगठन . . . . के० सी० मलैया
मूल्य 6 रुपए

चौंसठ रूसी कविताएँ . . . बच्चन
मूल्य 3 रुपए

पुजारी . . . . नानक सिंह
मूल्य 4 रुपए

हिंद पाकिट बुक्स प्रा० लिमिटेड, शाहदरा (दिल्ली)

विश्व ज्ञान कोश . . . संपादक :
अवनींद्र कुमार विद्यालंकार
मूल्य 2 रुपए

विनाश के बादल . . . प्रतापनारायण श्रीवास्तव
मूल्य 2 रुपए

किताब महल प्रा० लि०, इलाहाबाद

नीम के फूल . . . . गिरिराज किशोर
मूल्य 2 रुपए

सत्साहित्य केंद्र, दलपत स्ट्रीट, मथुरा

अजेय राष्ट्रभावना . . . भगवतशरण उपाध्याय
मूल्य 3 रुपए 50 पैसे

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

भाषा और भाषिकी . . . डा० देवीशंकर द्विवेदी
मूल्य 5 रुपए

आत्मा राम एण्ड संज़, दिल्ली

भाषा शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोश . राजेंद्र द्विवेदी
मूल्य 10 रुपए

आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प . . कैलाश वाजपेयी
मूल्य 12 रुपए

हिंदी लेखिकाओं की प्रतिनिधि कहानियाँ . संपादक, योगेंद्र कुमार लल्ला
मूल्य 12 रुपए 50 पैसे

बाल साहित्य मंदिर, इलाहाबाद

प्रारंभिक पठन शिक्षण . . . व्रजभूषण शर्मा
मूल्य 2 रुपए

धारा प्रकाशन, इलाहाबाद

धरती . . . . भैरव प्रसाद गुप्त
मूल्य 12 रुपए 50 पैसे

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

एक कंठ विषपायी . . . दुष्यंत कुमार
मूल्य 5 रुपए

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

हिंदी साहित्य और बिहार . . . संपादक : अचार्य शिवपूजन सहाय
मूल्य 8 रुपए

भारतीय संस्कृति और साधना (प्रथम खंड) . महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज
मूल्य 11 रुपए 50 पैसे

भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा . . पं० बल्देव उपाध्याय
मूल्य 10 रुपए 50 पैसे

रहस्यवाद . . . . आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
मूल्य 5 रुपए

साहित्य सिद्धांत . . . डा० राम अवध द्विवेदी
मूल्य 5 रुपए

कृषि विनाशी कीट और उनका दमन . श्री शैलेंद्र कुमार निर्मल
मूल्य 5 रुपए 50 पैसे

तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि . . महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज
मूल्य 7 रुपए 50 पैसे

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

सौंदर्य तत्त्व और काव्य सिद्धांत . . डा० सुरेंद्र बारलिंगे
अनु० डा० मनोहर काले
मूल्य 6 रुपए 50 पैसे

कूट काव्य : एक अध्ययन . . डा० रामधन शर्मा
मूल्य 12 रुपए 50 पैसे

युग चारण दिनकर . . . डा० सावित्री सिनहा
मूल्य 10 रुपए

लोक संपर्क विभाग, पंजाब, चंडीगढ़

रणभेरी (कविता संग्रह) . . संपादक: मदन मोहन गोस्वामी

हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

चित्रकला का रसास्वादन . . रामचंद्र शुक्ल
मूल्य 6 रुपए

कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबंध . विष्णु कांत शास्त्री
मूल्य 4 रुपए 50 पैसे

साहित्यिक निबंध . . . डा० कृष्ण लाल हंस
मूल्य 5 रुपए 75 पैसे

हिंदुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद

साहित्य की मान्यताएँ . . . भगवती चरण वर्मा
मूय 4 रुपए 50 पैसे

हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली-6

विद्यापति और उनकी पदावलि . . संपादक: देशराज सिंह भाटी.
जीवन प्रकाश जोशी
मूल्य 18 रुपए

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

वाणी . . . . सुमित्रानंदन पंत
मूल्य 4 रुपए

सौवर्ण . . . . सुमित्रानंदन पंत
मूल्य 3 रुपए 50 पैसे

शांति रक्षा अंक

'भाषा' का शांति रक्षा अंक बहुत सुंदर रूप से प्रकाशित हुआ है। उसका बाह्य जितना सुंदर है, अभ्यंतर उतना ही सुंदर और मूल्यवान है।

—चंद्रगुप्त विद्यालंकार
संपादक, सारिका, बंबई-1।

'भाषा' त्रैमासिक का विशेषांक (शांति रक्षा अंक) निकाल कर आपने एक उपयोगी तथा सामयिक कार्य किया है। उक्त अंक में जिस प्रकार की सामग्री का चयन हुआ है उससे राष्ट्रीयता तथा भावनात्मक ऐक्य को पोषण मिलता है।

—कन्हैयालाल सहल
पिलानी (राजस्थान)।

'भाषा' का शांति रक्षा विशेषांक मिला! देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कला और कलेवर दोनों ही दृष्टियो से आपने इस विशेषांक को निकालने में बड़ास राहनीय कार्य किया है।

—राजेंद्र द्विवेदी
संपादक, संस्कृति, दिल्ली।

'भाषा' का शांति रक्षा अंक प्राप्त हुआ। सशक्त रचनाओं के चुनाव, तर्क संपादन तथा कलात्मक मुद्रण ने इस अंक को ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान किया है। इस हेतु आपका तथा आपके सहयोगियों का हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।

—दिनकर सोनवलकर
दमोह, म० प्र०

'भाषा' का विशेषांक अभी अभी मिला, धन्यवाद और बधाई! देखने में तो आकर्षक है ही, संकलित सामग्री उससे भी अधिक आकर्षक है।

—बालकृष्ण राव
9, टगार नगर,
प्रयाग।

इतने बढ़िया अंक की किस तरह प्रशंसा की जाए, कह नहीं पा रहा हूँ। 'भाषा' का हर अंक इसी रूप सज्जा के साथ प्रकाशित हो सके तो अच्छा रहे!

—प्रकाश जैन
संपादक 'लहर' अजमेर।

...मैं ठीक से निश्चित ही नहीं कर पाया कि इस खूबसूरत अंक की किन शब्दों में प्रशंसा करूँ। मैं समझता हूँ कि इधर जो युद्ध संबंधी सामग्री प्रकाशित हुई है उस सब में आपके इस अंक की रूप-सज्जा और सामग्री-चयन श्रेष्ठ है। इस अंक की काव्य सामग्री में कल्याणीसेन की कविता अत्यधिक प्रभावशाली है। उन तक मेरी प्रशंसा पहुँचाने की कृपा कीजिए।

—नंद चतुर्वेदी
विद्या भवन, उदयपुर।

'भाषा' का शांति रक्षा अंक मिला। रचनाएँ भारतीय जनमानस का प्रतिनिधित्व करती हैं। उसके विश्वासों और संकल्पों को बल पहुँचाती हैं। बौद्धिक चेतना तथा भावावेश का अपूर्व सम्मिलन शांति रक्षा अंक में द्रष्टव्य है। सुरुचिपूर्ण कलात्मक साज सज्जा में वैभव और सादगी दोनों हैं। 'भाषा' को जो आकर्षक व्यक्तित्व आपने प्रदान किया है उसके लिए आप साधुवाद की पात्री हैं।

—महेंद्र भटनागर
जीवाजीगंज, लश्कर।

चीनी हमले के प्रतिक्रिया में रचित सामग्री इसमें मुख्य रूप से प्रस्तुत की गई हैं। महाकवि निराला और वल्लतोल की श्रेष्ठ रचनाओं से इसे सजाया गया है। विषय पर लिखी गई रचनाओं में नरेंद्र शर्मा और राजीव सक्सेना की रचनाएँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। कहानियों का हिस्सा काफ़ी कमज़ोर है। लेखों में बालकृष्ण राव ने हमले की प्रतिक्रिया में रचित साहित्य के मूल्यांकन की सही दिशा प्रस्तुत करते हुए लिखा है; सामाजिक परिस्थिति विशेष से संबंधित साहित्य-रचना साहित्यकार के जागरूक नागरिक होने का प्रमाण तो निश्चयपूर्वक मानी जा सकती है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनके द्वारा और कुछ भी अनिवार्यतः प्रमाणित हो ही जाता है।

—हिंदी ब्लिट्ज, बंबई।

......साहित्यकारों के दिल में चीनी हमले ने जो विक्षोभ पैदा किया, उसके हस्ताक्षर हम उनकी रचनाओं के विविध रूपों में देख सकते हैं। कुछ ऐसी ही रचनाएँ भाषा के प्रस्तुत शांति रक्षा अंक में प्रकाशित हुई। इनमें श्री संजय भट्टाचार्य, नरेंद्र शर्मा, राजीव सक्सेना, जगदीश चतुर्वेदी आदि की कविताएँ, कमलेश्वर, सूवासिंह, शिवकुमार जोशी आदि की कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। हिंदी के श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं का विविध भाषाओं में अनुवाद, भारतीय भाषाओं का हिंदी अनुवाद आदि स्थायी स्तंभ के साथ तीन क्षेत्रों के तीन प्रमुख व्यक्तियों का इंटरव्यू-राज्य-रक्षा संबंधी है। श्री हेमबरुआ का यह कथन कि इस समय कविताओं-गीतों की नहीं जन शक्ति को संगठित करने की ज़रूरत है, शक्तिशाली कविताओं और गीतों की ज़रूरत को ही साबित करता है। क्योंकि जनशक्ति के संगठन के लिए इन दोनों से बढ़ कर और कोई शस्त्र कारगर नहीं हो सकता। विशेषांक की साज-सज्जा विशेष आकर्षक है।

—'युगप्रभात' पाक्षिक,
कालिकट (केरल)।

गत वर्ष चीनियों ने हमारे देश पर जो वर्बरतापूर्ण आक्रमण किया था, उसकी प्रतिक्रिया भारत की विभिन्न भाषाओं के माध्यम से भाषा के शांति रक्षा में मुखरित हो उठी जो राष्ट्र के साहित्यकारों के संकल्प तथा सजगता की सूचक थी। इस विशेषांक में 'भाषा' ने तत्संबंधी कुछ उदात्त रचनाओं को अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। देश की एकता की दिशा में 'भाषा' का यह प्रयत्न स्तुत्य है।

'मध्यप्रदेश संदेश' साप्ताहिक
ग्वालियर।

पत्रिका का वाह्य और अंतर, दोनों सुंदर हैं। कागज़-सफ़ाई सुंदर। 'पत्रिका सचित्र। पत्रिका का प्रारंभ कवि श्री निराला की कविता 'भारती जय विजय करे' से होता है। पहले 30 पृष्ठों में ग्यारह प्रेरणादायी काव्य हैं। वाद में 34 पृष्ठों में हिंदी, पंजावी, उर्दू और गुजराती मिलाकर विविधता भरी सात कहानियाँ हैं। वाद में श्री मैथिलीरशण गुप्त, श्री दिनकर जी, श्री वच्चन जी तथा श्री नंद चतुर्वेदी की चार कविताएँ हैं। इन कविताओं के पंजावी, वंगला, तमिल तथा गुजराती में क्रमशः उन-उन भाषाओं की लिपियों में अनुवाद किए गए हैं। कविताएँ राष्ट्रीय भावात्मक एकता के लिए वीरोचित प्रोत्साहनपूर्ण हैं। इसके वाद श्री वालकृष्ण राव, श्री वासुदेवाशरण अग्रवाल, श्री भगवतशरण उपाध्याय, श्री प्रभाकर माचवे के लेख सुंदर और पठनीय हैं।

'राष्ट्रवीणा' मासिक,
अहमदावाद।

...'भाषा' के उक्त अंक का सुरुचिपूर्ण प्रकाशन निःसंदेह स्वागतेय वन पड़ा है। अंक पलटते ही 'जय जननी जय भारती' स्तंभ के अंतर्गत महाप्राण स्वर्गीय निराला की एक अत्यतं समीचीन दिशावोधी एवं आस्थोन्मुखी गीति-रचना पढ़ने को मिलती है, '...अन्य भाषा-भाषी लेखकों में संजय भट्टाचार्य, वल्लतोल, सविता पारिजात, कोत्तमंगलम् प्रफुल्लदत्त गोस्वामी, कालोजी नारायण राव एवं प्रेमनाथ दर आदि की मूल रचनाएँ अनूदित रूप में प्रस्तुत की गई हैं, इनमें से राष्ट्रभाषा के भी कुछ श्रेष्ठ कवि हैं। जिनकी विविध रचनाएँ अन्य भाषाओं में रूपांतरित की गई हैं। हिंदी के मौलिक लेखकों में वासुदेवशरण अग्रवाल, वालकृष्ण राव, भगवतशरण उपाघ्याय, प्रभाकर माचवे एवं दिनकर कौशिक मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। भगवतशरण उपाघ्याय, वालकृष्ण राव एवं वासुदेवशरण अग्रवाल के निवंध अपने अपने आयाम में सारगर्भित एवं संभावनाओंसे युक्त हैं।......
...हिंदी काव्य-पक्ष के अंतर्गत माखनलाल चतुर्वेदी, नरेंद्र शर्मा, राजीव सक्सेना, एवं जगदीश चतुर्वेदी की रचनाएँ आस्थोन्मुखी वन पड़ी हैं, पर इसके साथ-साथ कई अनूदित कविताओं में मूल की-सी ताज़गी का अभाव भी दीखता है।

'केंद्र' मासिक,
दिल्ली।

.....यह अंक देश की सुरक्षा हेतु कृत-संकल्प साहित्यकारों की मूर्धन्य लेखनी की सशक्त रचनाएँ प्रस्तुत करता है। रचनाओं का संकलन व संपादन इतनी कुशलता से किया गया है कि उनके बारे में कोई प्रशंसा तक की जाना संभव नहीं है। अंक की एक विशेपता यह भी है कि अंक को चित्रों से भी विभूषित किया गया है।.... निश्चय ही यह अंक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

ब्रिगेडियर, साप्ताहिक
उज्जैन।

इस विशेषकां से पाठकों के हृदय में देश-रक्षा के प्रति अत्म-चेतना, कर्तव्य एवं दायित्व-वोध तथा राष्ट्रीय ऐक्य के भाव जागृत हुए विना नहीं रहेंगे। संपादन वड़ी सुंदरता एवं सुरुचि से किया गया है।

'मरुभूमि' त्रैमासिक
पिलानी।

गत जनवरी में प्रकाशित सुप्रसिद्ध हिंदी त्रैमासिक, 'भाषा', का यह विशेषांक सभी दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है। चीनी आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में देश की रक्षा करने के उद्देश्य से प्राय: सभी पत्रिकाओं ने विशेषांक तथा ऐसी ही अन्य विपुल सामग्री प्रकाशित कर अपना योगदान दिया है और इस परंपरा में वहुत देर से प्रकाशित होने पर भी प्रस्तुत अंक स्थायी महत्त्व का प्रतीत होता है। लगभग 156 पृष्ठों में विविध विभागों के अंतर्गत जो सामग्री दी गई है, वह भारत की सभी भाषाओं के मूर्धन्य साहित्यकारों द्वारा रचित है। चुनाव भी उत्तम है। कविताएँ और कहानियाँ हैं ही, लेखक और कलाकार के युद्धकालीन दायित्व पर भी चर्चा और इसी से संवंधित दो-तीन इंटरव्यू भी हैं।

विश्व-ज्योति
होशियारपुर (पंजाव)।

'भाषा' के साल भर में चार अंक मार्च, जून, सितंवर तथा दिसंवर में प्रकाशित होते हैं। प्रस्तुत अक 'शांति रक्षा अंक' के रूप में प्रकाशित किया गया है, जिसमें भारत की विभिन्न भाषाओं की देश प्रेम संवंधी उत्तम रचनाएँ संकलित हैं। ... संपूर्ण अंक सचित्र है तथा देश प्रेम की भावना उद्दीप्त करने वाले चित्रों से सुसज्जित है। हम भारत सरकार तथा 'भाषा' की संपादिका को इस अंक के प्रकाशन पर वधाई देते हैं।

प्रीतम
(पंजावी मासिक)
दिल्ली।

This issue on the India China conflict presents a bulk of tailored work written by many prominent Indian writers in order to book the patriotic fervour during the early and mid-season of the border war in the Himalayas. It has been divided in three sections-poems, short stories, and general articles. Painters and sculptors have also been represented in the magazine, Some artists have also expressed their views. Out of the poets, the contributions of Narendra Sharma, Rajeev Saksena, Jagdish Chaturvedi, Ramkishore Dwivedi, are mentionable. The same section carries eminent poets liks Maithilisharan Gupta, Dinkar, Bachchan and Nand Chaturvedi. They are outspoken and direct in their expression.

—'Century'. weekly,
New Delhi.

मीट्रिक यूनिटों के लिए संक्षिप्त हिंदी-रूपों की सूची

List of Hindi Abbreviations For Metric Units

Metric Prefixes

English		Hindi	
Term	Abbreviation	Term	Abbreviation
Micro	u	माइक्रो	मा
Milli	m	मिलि	मि
Centi	c	सेंटि	से
Deci	d	डेसि	डेसि
Deca	da	डेका	डेका
Hecto	h	हैक्टो	हे
Kilo	k	किलो	कि
Mega	M	मेगा	मेगा

Length

English		Hindi	
Term	Abbreviation	Term	Abbreviation
Micron (Micro-metre)	um	माइक्रोन	मामी
Millimetre	mm	मिलिमीटर	मिमी
Centimetre	cm	सेंटिमीटर	सेमी
Decimetre	dm	डेसिमीटर	डेसिमी
Metre	m	मीटर	मी
Decametre	dam	डेकामीटर	डेकामी
Hectometre	hm	हैक्टोमीटर	हेमी
Kilometre	km	किलोमीटर	किमी
Megametre	Mm	मेगामीटर	मेगामी

Area

English		Hindi	
Term	Abbreviation	Term	Abbreviation
Square millimetre	mm^2	वर्ग मिलिमीटर	मिमी^{2}, वर्ग मिमी
Square centimetre	cm^2	,, सेंटिमीटर	सेमी^{2}, वर्ग सेमी
Square decimetre	dm^2	,, डेसिमीटर	डेसिमी^{2},वर्ग डेसिमी
Square metre	m^2	,, मीटर	मी^{2}, वर्ग मी
Square decametre	dam^2	,, डेकामीटर	डेकामी,^{2} वग डेकामी
Square hectometre	hm^2	,, हेक्टोमीटर	हेमी^{2}, वर्ग हेमी
Square kilometre	km^2	,, किलोमीटर	किमी^{2}, वर्ग किमी
Square megametre	Mm^2	,, मेगामीटर	मेगामी^{2},वर्ग मेगामी

Volume

English		Hindi	
Term	Abbreviation	Term	Abbreviation
Cube millimetre	mm^3	घन मिलिमीटर	मिमी^{3}, घन मिमी
Cube centimetre	cm^3	,, सेंटिमीटर	सेमी^{3}, घन सेमी
Cube decimetre	dm^3	,, डेसिमीटर	डसिमी^{3},घन डेसिमी
Cube metre	m^3	,, मीटर	मी^{3}, घन मी
Cube decametre	dam^3	,, डेकामीटर	डेकामी^{3},घन डेकामी
Cube kilometre	km^3	,, किलोमीटर	किमी^{3}, घन किमी
Cube megametre	Mm^3	,, मेगामीटर	मेगामी^{3}, घन मेगामी

Weight

English		Hindi	
Term	Abbreviation	Term	Abbreviation
Microgram	ug	माईक्रोग्राम	माग्रा
Milligram	mg	मिलिग्राम	मिग्रा
Centigram	cg	सेंटिग्राम	सेग्रा
Decigram	dg	डसिग्राम	डेसिग्रा
Gram	g	ग्राम	ग्रा
Decagram	dag	डेकाग्राम	काग्रा
Hectogram	hg	हेक्टोग्राम	ग्रा
Kilogram	kg	किलोग्राम	किग्रा, किलो
Quintal	q	क्विंटल	क्वि
Megagram	Mg	मेगाग्राम	मेगाग्रा
tonne	t	टन	ट

Capacity

English		Hindi	
Term	Abbreviation	Term	Abbreviation
Millilitre	ml	मिलिलीटर	मिली
Centilitre	cl	सेंटिलीटर	सेली
Decilitre	dl	डेसिलीटर	डेसिली
Litre	l	लीटर	ली
Decalitre	dal	डकालीटर	डेकाली
Hectolitre	hl	हेक्टोलीटर	हेली
Kilolitre	kl	किलोलीटर	किली
Megalitre	Ml	मेगालीटर	मेगाली

Land Area

English		Hindi	
Term	Abbreviation	Term	Abbreviation
Centiare	ca	सेंटिआर	सेआ
Are	a	आर	आ
Hectare	ha	हैक्टार	हेआ

NOTE :—(i) The Hindi abbreviations are to be bsed only in trade, elementry education and in popular books.

(ii) For all other purposes *i.e.* in secondary and higher education, in Scientific and Technical tex books and other literature etc., only the *international abbreviations* should be used.

*   *   *   *
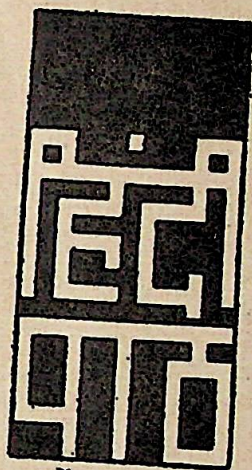
—नरेंद्र व्यास

In earlier lessons we have discussed the method of constructing simple sentences with regard to their verbal forms in various tense-formations and the structure of their constituents. These verbal forms are of Indicative nature representing themselves in the following tenses—Simple Present (मैं हिंदी पढ़ता हूँ), Present Continuous (मैं हिंदी पढ़ रहा हूँ), Future (मैं हिंदी पढ़ूंगा), Simple past (मैंने हिंदी पढ़ी), Present Perfect (मैंने हिंदी पढ़ी है) and Past Perfect (मैंने हिंदी पढ़ी थी). In this series of indicative tenses, the only residu to be discussed is the *Habitual Past*. The next paragraph deals with this tense in the same sentence pattern, Subject+Object+Verb. It is to be noted that here also, as in previous cases, the kernel sentence will be in the present indicative and we shall transform it in the habitual past.

Habitual Past

The habitual past refers to an action as habitually or repeatedly done in the past. It is neither progressive in aspect, as in present continuous, (it has a terminate aspect because it represents the act as a whole or refers to a 'statement of fact'), nor it refers to a particular act of the past, as in the simple past or the past perfect.

Let us take the following examples:—

Present	Habitual past	
मैं हिंदी पढ़ता/पढ़ती हूं	मैं हिंदी पढ़ता था/पढ़ती थी	'I used to study Hindi.'
तू हिंदी पढ़ता/पढ़ती है	तू हिंदी पढ़ता था/पढ़ती थी	'You (sg.) used to study Hindi.'

वह हिंदी पढ़ता/पढ़ती है।	वह हिंदी पढ़ता था/पढ़ती थी	'He/She used to study Hindi.'
हम हिंदी पढ़ते/पढ़ती हैं।	हम हिंदी पढ़ते थे/पढ़ती थीं	'We used to study Hindi.'
तुम हिंदी पढ़ते/पढ़ती हो।	तुम हिंदी पढ़ते थे/पढ़ती थीं	'You (Pl.) used to study Hindi.'
वे हिंदी पढ़ते/पढ़ती हैं।	वे हिंदी पढ़ते थे/पढ़ती थीं	'They used to study Hindi.'
क्या तुम हिंदी (नहीं) पढ़ते/पढ़ती हो ?	क्या तुम हिंदी (नही) पढ़ते थे/पढ़ती थीं	Used you (Pl.) not to study Hindi ?'

It is evident from the examples given above that, unlike the present perfect or simple past, or past perfect, the habitual past is similar in its structure to the present inicative (except in the use of auxiliary verb forms).

The construction of habitual past can be thus explained in the following sequence of its constitutents:—

Present particple forms of the verb affected by number and gender of the subject	followed by	*Past form of the auxiliary verb* affected by number and gender of the subject
पढ़ता/पढ़ते/पढ़ती/पढ़ती		था/थे/थी/थी

Both the present participle form and the auxillary verb are affected by number and gender of the subject, but here it is interesting to not that whereas in the case of present participle, unlike masculine singular and plural forms (पढ़ता/पढ़ते), the feminine singular and plural forms are indentical (पढ़ता/पढ़ती); in the case of auxiliary verb both masculine singular and plural (था/थे) and feminine singular and plural (थी/थीं) forms are different. It may also be noted that, unlike the auxiliary of the present indicative, the habitual past forms are not affected by the person of the subject.

The habitual past tense is restricted to the subjectival construction.

When in a sentence two or more than two verbs are used in their habitual past forms, while narrating a repeated act of the past, the required auxiliary forms may be omitted. For example राम घूमने जाता, लौट कर अपना पाठ याद करता और फिर खेलने लगता। (Ram used to go far a walk, after coming back (used to) prepare his lesson and then (used to play). समारोह में लड़कियाँ नाचतीं, गातीं श्रीर आनंद करतीं। (In the festival the girls used to dance, sing

and enjoy.) Here it is also interesting to note that where auxiliary forms may be omitted as in this type of narration) in the feminine plural the present participle has a तीं (नाचतीं/गातीं/करतीं) instead of the usual ती (नाचती थीं/गाती थीं/करती थीं)।

The negative and the interrogative are formed as usual. There is no need, however, to omit the auxiliary forms as in the present indicative. क्या तुम प्रतिदिन हिंदी पढ़ते थे ? 'Used you to study Hindi every day ?' गांधीजी कभी झूठ नहीं बोलते थे । 'Gandhiji never used to tell a lie'.

Imperative

So far we have studied the construction of simple sentences in the indicative mood. Let us now take up the formation of verb forms in the imperative mood. The imperative mood expresses command, precept or entreaty, etc.

As regards the imperative formation, we cannot speak in terms of tripartite tense-contrast or person-contrast. It means that the imperative is used only in the present tense (virtually it is future) and the future tense and only in the second person. Command and advice etc. are not possible with regard to a past action, hence there cannot be a imperative past. The so called imperative forms in the first or third person come, infact, under the subjunctive mood (which will be discussed later on).

The formation of present imperative is as follows :—

NOTE : In the imperative sentences the subject तू, तुम, आप (thou, you, you (honorific plural) respedctively)—is generally omitted, but can be easily guessed from the form of the verb.

1. When the second person singular (तू) is the subject, the bear verb-root is used. For example :—

(तू) कह — Speak (thou).
(तू) खा — Eat (thou)
(तू) भाग जा — Run away (thou)

2. When second person plural (तुम) is the subject, the ओ is suffixed to the root. For example:—

(तुम) लिखो (लिख्+ओ) — (you) write
(तुम) पढ़ो (पढ़+ओ) — (you) read
(तुम) जाओ (जा+ओ) — (you) go

The forms of दे (give) and ले (take) undergo a slight change when-ओ is appended to the root. Thus (तुम) दो (you give) and (तुम लो) (you take) instead of· तुम देओ and तुम लेओ respectively.

3. When second person honorific plural (आप) is the subject, the imperative is formed by suffixing -इएto the root :

(आप) चढ़िए (चढ़+इए) 'please, board on'
(आप) बैठिए (बैठ्+इए) 'please, sit down'
(आप) कहिए (कह+इए) 'please, speak'

The forms of कर (do), दे (give), ले (take), पी (drink) etc. undergo a slight modification when-इए is appended to the root.

(आप) कीजिए instead of करिए (कर+इए) 'please, do'
(आप) दीजिए instead of देइए (दे+इए) 'please, give'
(आप) लीजिए instead of लेइए (ले+इए) 'please, take'
(आप) पीजिए instead of पीइए (पी+इए) 'please, drink'

In common parlance, practically तू is not used unless in the case of addressing very close relations, small children (youngesters) and, God or for expressing anger or in poetical style or for animals. तुम is used for addressing one person or more, when the status of the person or persons addressed to is not conside-ed higher than the status of the person (who is) addressing. आप is more commonly used as a form of politeness (respect) for strangers and superiors etc.

The formation of future imperative is as follows:

4. When the second person singular or plural is the subject, the imperative is identical with the infinitive form of the verb.

तू कल जाना। 'thou shouldst go tomorrow.'
तुम मेरे साथ रहना। 'you should stay with me'.

5. For expressing extreme politeness or respect-गा is suffixed to the honorific imperative forms:

आप कल आइएगा (आइए+गा) (Kindly) Come tomorrow.
कल से आप मुझे हिंदी पढ़ाइएगा (पढ़ाइए+गा) (Kindly) Teach me Hindi from tomorrow.

The prohibitive (negative) imperative is formed by putting a मत or न immediately before the verb:

तू यह काम मत कर। 'Don't do this work'.

तुम ऐसा न कहो। 'Don't speak like this'.

आप रात में न पढ़ें। 'Please do not read in the night'.

तुम कल मत आना। 'Don't come tomorrow'.

आप यह बात किसी से न कहिएगा। 'Kindly do not tell this to any body'.

All imperative forms are in subjectival (construction) in which the verb agrees with the subject in number and person. The imperative forms are not affected by gender.

Neutral Construction

All types of sentence-constructions studied so far are either subjectival or objectival in construction. In the last but one lesson we have also observed the two contrastive Transitive-sentnece-pattern and the Intransitive sentence pattern. Now in the following paragraph we shall pass on to the Neutral Construction and restrict ourselves to the transitive sentence pattern of the present indicative (Active Voice). Observe carefully the following examples:

Present Indicative	*Past Indicative*	*Past Indicative*
लड़का लड़की को देखता/बुलाता है।	लड़के ने पुस्तक पढ़ी।	लड़के ने लड़की को देखा/बुलाया/
लड़की लड़के को देखती/बुलाती है।	लड़की ने फल खाया।	लड़की ने लड़के को देखा/बुलाया।
लड़के लड़की को देखते/बुलाते हैं।	लड़कों ने पुस्तक पढ़ी।	लड़कों ने लड़की को देखा/बुलाया।
लड़कियाँ लड़के को देखती/बुलाती हैं।	लड़कियों ने फल खाया।	लड़कियों ने लड़के को देखा/बुलाया।
लड़के लड़कियों को देखती/बुलाते हैं।	लड़कों ने पुस्तकें पढ़ी।	लड़कों ने लड़कियों को देखा/बुलाया।
लड़कियाँ लड़कों को देखती/बुलाती हैं।	लड़कियों ने फल खाए।	लड़कियों ने लड़कों को देखा/बुलाया।

In the sentences of the column 1, it can be observed that the gender, number and person of the verb agree with the subject; whereas in column 2, gender and number of the verb agree with the object, subject being in oblique case with the case

जन

ending ने. But in column 3 though all sentences are of past indi cativeforms (as are in column 2), the gender and number of the verbal forms remain unchanged (देखा/बुलाया) in all circumstances. Subject noun is in oblique case and has taken ने. Here the remarkable feature is presence of को after the oblique object. Hence this can be very well called the neutral construction type.

We may, therefore, conclude that in neutral constructions the verb form remains unaffected, either by the subject or by the object, and is always in the third person singular masculine form.

NOTE : In the case of transitive verbs in the past tense को must always be added to animate objects (लड़के ने लड़की को देखा)। When there is inanimate object it remains without को (लड़की ने फल खाया) unless otherwise particularised or expressed explicitly (लड़की ने इस फल को खाया), (The girls ate *this* fruit).

Exercises

1. Translate the following into English :

(1) नारायण गत वर्ष पाठशाला में हिंदी पढ़ता था। (2) गर्मी की छुट्टियों में हम सुबह-शाम घूमने जाते थे। (3) क्या वह उन दिनों दिल्ली में नहीं रहता था ? (4) राम सुबह उठते ही अपने माता-पिता को प्रणाम करता और पढ़ने बैठ जाता। (5) मेरे घर (चले) जाओ और कहो कि (that) मैं आज घर देर से लौटूंगा। (6) आप कुर्सी पर बैठिए। (7) अध्यापक ने छात्र को अपने घर बुलाया। (8) घोड़ा इस घास को खाता है, उस घास को नहीं (खाता)। (9) मैंने खाँसा (10) तुमने अपने छोटे भाई को क्यों पीटा ?

12. Translate the following into Hindi:—

(1) My younger son used to play in the garden. (2) Where used you to live ? (3) He used to take food four times a day. (4) Those boys saw me in the school. (5) Those girls used to quarrel every morning and soothe themselves in the evening. (6) (Please) Read this lesson loudly. (7) (Kindly) Show me your exercise-book. (8) The Indians regarded Mahatma Gandhi as Father of the Nation. (9) The patient sneezed. (10) Why did you beat the children ?

अब एक और विशेषांक

द्विवेदी स्मृति अंक

त्रैमासिक

भाषा की गौरवपूर्ण परंपरा में एक नूतन अध्याय

- हिंदी तथा हिंदीतर भाषाओं के विद्वानों की रचनाएँ।
- द्विवेदी जी के अंतरंग जीवन की झांकियाँ।
- द्विवेदी जी के दुर्लभ चित्र।
- द्विवेदी जी के संस्मरण।
- द्विवेदी युगीन साहित्य पर सारगर्भित लेख।
- द्विवेदी जी के संपादक, भाषा सुधारक, काव्य समीक्षक, निबंध लेखक, आलोचक तथा कवि रूपका अधिकारी विद्वानों द्वारा विषद तथा तुलनात्मक अध्ययन।
- द्विवेदी जी के एक गद्यांश का चौदह भारतीय भाषाओं में अनुवाद।
- द्विवेदी जी के हाथ से संशोधित की गई प्रसिद्ध रचनाओं की पांडुलिपियों और द्विवेदी जी के पत्रों के चित्र।
- द्विवेदी शताब्दी समारोह का विस्तृत एवं सचित्र विवरण

तथा

श्रद्धांजलियाँ

जून

14—1 C; H. D. '64

'भाषा' त्रैमासिक का महत्त्वपूर्ण विशेषांक

शांति-रक्षा अंक

- **जय जननी, जय भारती**

सर्वश्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', संजय भट्टाचार्य, नरेंद्र शर्मा, राजीव सक्सेना, सदानंद रेगे, जगदीश चतुर्वेदी, राजकमल चौधरी, स्वदेशरंजन दत्त, जगदीश गुप्त, शांतिलाल आहुजा तथा दिनकर सोनवलकर की कविताएँ।

- **सात कहानियाँ**

कहानीकार : सर्वश्री कमलेश्वर, संतोखसिंह धीर, स्टीपेन ज़ोरयान्, शक्तिपाल केवल, नरेंद्रपाल सिंह, शिवकुमार जोशी तथा सूबासिंह।

- **द्वाभा**

सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', हरिवंशराय 'बच्चन' तथा नंद चतुर्वेदी की कविताएँ (अनुवाद सहित)।

- **लेखक का दायित्व**

सर्वश्री बालकृष्ण राव, जनार्दन वाघमारे, भगवतशरण उपाध्याय, प्रभाकर माचवे, वासुदेवशरण अग्रवाल तथा प्रफुल्लदत्त गोस्वामी के सारगर्भित लेख।

- सुमित्रानंदन पंत का गीतिनाट्य 'ध्वंस-शेष'—गुजराती अनुवाद सहित।
- श्री दिनकर कौशिक का 'आपत्कालीन स्थिति तथा कलाकार' शीर्षक लेख।
- भारतीय कविता के अतंर्गत समस्त भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कविताएँ।
- सुनीतिकुमार चटर्जी, हेम बरुआ तथा प्रेमनाथ धीर के इंटरव्यू।

सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि त्रैमासिक पत्रिका

संस्कृति

(ग्रीष्म, पावस, शरद् और हेमंत में प्रकाशित)

संपादकीय मंडल

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

डा० नगेंद्र

श्री दु० क०

राजेंद्र द्विवेदी (संपादक और पदेनसचिव)

संपादक 'संस्कृति',

शिक्षा मंत्रालय,

1 ई-3, करज़न रोड 'ए' बैरक्स, नई दिल्ली ।

वार्षिक चंदा : चार रुपए

एक प्रति : एक रुपया

भारत-विद्या विशेषांक के मुख्य आकर्षण

विश्व एकता में प्राच्य विद्या का स्थान (हुमायुन कविर), भारत विद्या की समस्याएँ और आवश्यकताएँ : एक संगोष्ठी (के० एम० पनिकर, ज्यों फिलियोज़ा, आर० सी० मजूमदार, वें० राघवन्, रमाप्रसन्न नायक, प्रभाकर माचवे), भारतीय तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान (सी० पी० रामस्वामी अय्यर) भारत में पुरातत्व और इतिहास (के० ए० नीलकंठ शास्त्री), राजकीय शासनलेख (बहादुरचंद्र छावड़ा), प्राचीन भारतीय नाटक (इंदुशेखर) नृत्य, (कपिला वात्स्यायन), संगीत (पी० साम्बमूर्ति), मूर्तिकला (सी० शिव-राममूर्ति), चित्रकला का इतिहास (मोतीचंद्र), प्राचीन भारतीय स्थापत्य (द्विजेंद्रनाथ शुक्ल), कला का इतिहास (चार्ल्स फाबरी), संस्कृत साहित्य (रसिक बिहारी जोशी) । राष्ट्रीय पक्षी (ए० के० भट्टाचार्य), संस्कृत और तमिल व्याकरण (डब्ल्यू० नोज़े) प्राचीन भारत में प्रजातंत्र (सी० एन० जुत्शी) ।

स्तंभ : संपादकीय, समीक्षा, चित्रमय समाचार ।

पारिभाषिक शब्द-संग्रह
(अँग्रेज़ी-हिंदी)

यह शब्द-संग्रह दस वर्ष के अनुसंधान-कार्य का परिणाम है। इसमें विभिन्न विषयों और शास्त्रों के विशेषज्ञों और विद्वानों की सहायता से वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड के तत्वावधान में निर्मित शब्दावली संकलित की गई है।

भारत के संविधान के अनुसार हिंदी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत तथा गौणतः भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करने का दायित्व भारत सरकार को सौंपा गया है।

स्ट्रॉबोर्ड कवर

पृष्ठ संख्या : 1370

मूल्य: 12 रुपए

भारत सरकारने 1950 में हिंदी और प्रमुख भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली तैयार करने के लिए एक वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की थी।

बोर्ड का यही दृष्टिकोण रहा कि जहाँ तक हो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग किया जाए और जहाँ राष्ट्रीय शब्दावली उपलब्ध न हो सके वहाँ भारतीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया जाए।

कृपया अपना ऑर्डर नीचे लिखे पते पर भेजें :—

प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, भारत सरकार, सिविल लाइंस, दिल्ली-6।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।

जून
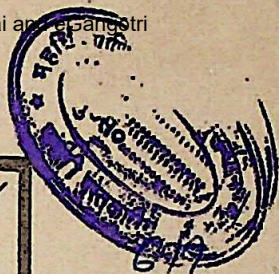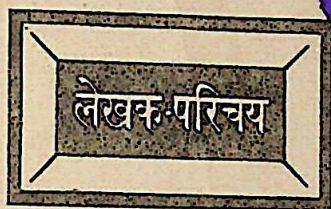
0 रमेश कुंतल मेघ (डॉ०), हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़–3.

0 गार्गी गुप्त (डॉ०), हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

0 रामनरेश शर्मा, हिंदी विभाग, आर० आर० एस० कॉलेज, मोकामा (पटना) ।

0 आनंदस्वरूप गुप्त, संपादक 'पुराणम्', पुराण-विभाग, दुर्ग रामनगर, वाराणसी ।

0 अंबाप्रसाद सुमन (डॉ०), हिंदी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।

0 नरेंद्र धीर, 15/8, ईस्ट पटेलनगर, नई दिल्ली–12.

0 गोपाल शर्मा (डॉ०), उपनिदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मथुरा रोड़, नई दिल्ली ।

0 नेमिचंद जैन (डॉ०), अध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, नीमच (म० प्र०)

0 केशवदत्त मिश्र, द्वारा, श्री बेनीप्रसाद मिश्र, गढ़ी मलहरा, छतरपुर (म० प्र०)

0 घनश्यामदास व्यास, सराफ़ा बाज़ार, इतवारी, नागपुर–2.

0 सुमित्रानंदन पंत, 18 बी०, स्टेनली रोड, इलाहाबाद ।

0 नवारुढ़, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुहाटी (असम) ।

0 रजनीकांत दास, पत्रकार, उदितनगर, राउरकेला ।

0 के० कुमार, एम० पी० टी० 427, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली ।

0 कमल नारायण (श्रीमती), 15ए/125, वेस्टर्न एक्सटेंशन एरिया, करोलबाग, नई दिल्ली-5.

0 मक्खन लाल, कश्मीरी यूनिट, आकाशवाणी, नई दिल्ली ।

0 वर्षा देसाई, द्वारा रामचंद्र देसाई, खड़की स्ट्रीट, देलाडवा (वाया सूरत) ।

15—1 CHD/64

0 जमुना (कु०), 38, फैज़बाजार रोड़, दरियागंज, दिल्ली ।

0 हनुमच्छास्त्री अयाचित, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।

0 कृष्ण 'अशांत', 2/2, ईस्ट पटेलनगर, नई दिल्ली ।

0 कंचन कुमार, संपादक 'मराल', युरेका पब्लिकेशंस, 37/49 गौदोलिया, वाराणसी ।

0 प्रभाकर माचवे, सहायक सचिव, साहित्य अकादमी, रवींद्रभवन, नई दिल्ली ।

0 रवि वर्मा, युगप्रभात कार्यालय, मातृभूमि बिल्डिंग्स, कालीकट (केरल) ।

0 बिहारीलाल व्यास, दांता भैरूँ, उदयपुर (राजस्थान) ।

0 अरविंद गोखले, 537, सदाशिव पेठ, पूना–2.

0 शरद मोझरकर, सिविल वार्ड, दमोह (म० प्र०) ।

0 रामेश्वर गुरु, दीक्षितपुरा, जबलपुर ।

0 कुलवीर सिंह कांग, एफ 9/21, कृष्णनगर, दिल्ली ।

0 महमूद हाशमी, द्वारा, उर्दू सरिता, झंड़ेवालान, रानी झांसीरोड, नई दिल्ली ।

0 नरेंद्र व्यास, II जी/61–62, लाजपतनगर, नई दिल्ली–14.

0 देवप्रकाश गुप्त, 18/317, लोधीरोड, नई दिल्ली–3.

नियम

* 'भाषा' में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध भाषा में होनी चाहिए ।

* लेख आदि सामान्यत: फुलस्केप आकार के पाँच टाइप पृष्ठों से अधिक न होने चाहिएँ और हाशिया छोड़कर कागज़ के एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए ।

* साधारणतया हस्तलिखित सामग्री स्वीकार करने का नियम नहीं है ।

* अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना आवश्यक है ।

* सामग्री के प्रकाशन के विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा ।

* लेखों की स्वीकृति की सूचना पंद्रह दिन के भीतर दे दी जाती है; अस्वीकृत रचनाओं के संबंध में सूचना देने का नियम नहीं है ।

* अस्वीकृत सामग्री लौटाने का नियम नहीं है ।

* समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजनी चाहिएँ ।

* पत्रिका की बिक्री की व्यवस्था प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, सिविल लाइंस, दिल्ली–6 द्वारा की जाती है । सदस्य बनने, विज्ञापन देने और वार्षिक चंदा जमा करने के लिए उन्हीं से पत्र-व्यवहार करना चाहिए ।

भाषा में प्रकाशित विचारों के लिए संपादन-मंडल उत्तरदायी नहीं है